Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

सामाजिक रूपान्तरण एवं शिक्षक : राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 के विशेष संदर्भ में

रवि दास
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी
प्रोफेसर रीना सिंह
केशव प्रसाद मिश्र राजकीय महिला महाविद्यालय, औराई

सारांश :

शिक्षक समाज का आधार स्तम्भ होते हैं जिसका समाज के निर्माण और सामाजिक रूपान्तरण में अहम् योगदान निभाते हैं। जो सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करते हैं, वे समाज में जागरूकता, समानता और प्रगतिशील सोच को बढ़ावा देते हैं जिससे एक सशक्त, समान और समावेशी समाज का निर्माण सम्भव हो पाता है। लेकिन वर्तमान समय में वैश्वीकरण, डिजिटल शिक्षा के कारण नैतिक मूल्यों में गिरावट, सामाजिक असमानता और मानसिक तनाव जैसी चुनौतियाँ शिक्षकों के सामने जन्म ली हैं। नई शिक्षा नीति 2020 आने के बाद शिक्षा में तकनीकी भूमिका बढ़ी है। जिसके कारण शिक्षकों को अपने शिक्षण तरीकों को आधुनिक बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा ग्रामीण और शहरी शिक्षा में असमानता, संसाधनों की कमी और शिक्षकों के प्रति सम्मान की कमी एक बड़ी चुनौती है। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए शिक्षकों को आधुनिक तकनीकों से सशक्त बनाना, अनुसन्धान और विकास पर अधिक बल देना, उन्हें उचित संसाधन और प्रशिक्षण प्रदान करना तथा उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को मजबूत करना आवश्यक है। जिससे वैश्विक नागरिकता को बल मिल सकता है।

मुख्य शब्द– सामाजिक रूपान्तरण, नई शिक्षा नीति, नैतिक मूल्य, डिजिटल शिक्षा, वैश्वीकरण, राष्ट्र निर्माण, चुनौतियाँ, अनुसंधान।

प्रस्तावना :

सामाजिक रूपान्तरण (Social Transformation) समाज में उन बदलावों की ओर संकेत करता है जो समाज की संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों, मान्यताओं और सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि शिक्षक न केवल छात्रों को शैक्षिक ज्ञान प्रदान करते हैं, बल्कि वे समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में भी योगदान के साथ प्राथमिक समाजीकरण में अहम् भूमिका का निर्वहन करते हैं। सामाजिक रूपान्तरण में शिक्षक समाज का महत्वपूर्ण स्तंभ है, एक शिक्षक की भूमिका समाज में सिर्फ शैक्षिक दृष्टिकोण तक सीमित सीमित नहीं है वह सामाजिक न्याय, मानवता, समानता और समावेशिता को भी बढ़ावा देने का भी कार्य करते हैं।

भारत जैसे विविधतापूर्ण और सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से विषमताओं से भरे समाज में शिक्षक की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। भारतीय समाज में जातिवाद, भेदभाव, सांस्कृतिक मतभेद और अन्य सामाजिक समस्याएँ व्याप्त हैं। इन समस्याओं से निपटने और समाज में समानता लाने के लिए शिक्षा एक शक्तिशाली माध्यम साबित हो सकती है और इसमें शिक्षक की भूमिका अत्यंत अहम् है। शिक्षक

बच्चों को शिक्षा के माध्यम से न केवल ज्ञान प्रदान करते हैं बल्कि उन्हें एक बेहतर और समतामूलक नागरिक बनने के लिए प्रेरित करते हैं। जिससे समाज में समानता, न्याय व समृद्धि का विकास होता है, एक निरन्तर चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया है जो समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न रूपों में होती है।

सामाजिक रूपान्तरण का उद्देश्य समाज में व्याप्त असमानताओं, भेदभाव और अन्याय को समाप्त करना और प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करना है। यह समाज के प्रत्येक सदस्य की जीवन स्थिति को सुधारने, उनके अधिकारों की रक्षा करने और उन्हे एक समृद्ध और समान समाज में जीने का अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है। सामाजिक रूपान्तरण में शैक्षिक सुधार, राजनीतिक बदलाव, आर्थिक अवसरों का सृजन और सांस्कृतिक संवेदनाओं का नवीनीकरण जैसे तत्व सम्मिलित होते हैं। यह प्रक्रिया सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक स्तर पर व्यापक बदलावों के द्वारा समाज के प्रगति और उन्नति की दिशा में होता है। उदाहरण के तौर पर भारत में स्वतंत्रता संग्राम के बाद कई सामाजिक और राजनीतिक दलाव हुए थे जैसे कि अस्पृश्यता उन्मूलन, बाल विवाह, सती प्रथा पर प्रतिबन्ध और महिला शिक्षा का प्रचार, जिसमें आधुनिक शिक्षा की अहम् भूमिका थी।

सामाजिक रूपान्तरण में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक समाज में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरणास्रोत होते हैं उन्हें ज्ञान का प्रसार तक सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि समाज में व्याप्त बुराइयों और असमानताओं के खिलाफ जागरूकता भी फैलाते हैं, शिक्षक अपने विद्यार्थियों का समानता न्याय और समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध कराकर समाज में परिवर्तन लाने की दिशा में योगदान देते हैं। समाज में बदलाव के कई स्वरूप होते हैं– व्यक्तिगत, सामूहिक और संरचनात्मक आदि। इन बदलावों के द्वारा समाज में नवीनता लायी जाती है और समाज विकास की ओर अग्रसर होता है।

प्राचीन भारतीय समाज में तक्षशिला और नालंदा जैसे शिक्षा केन्द्रों का अस्तित्व था जहाँ शिक्षक न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक शिक्षा देते थे वे समाज के विभिन्न पहलुओं पर भी चर्चा करते थे। शिक्षकों को समाज के विचारक, विचारधारा के निर्माता और नैतिक शिक्षा के प्रदाता के रूप में देखा जाता था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत विकास करना नहीं था सम्पूर्ण समाज में सकारात्मक बदलाव लाना था। प्राचीन समाज में शिक्षक की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। उस समय शिक्षा का उद्देश्य न केवल बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना था बल्कि यह व्यक्ति के नैतिक और सामाजिक मूल्यों को मजबूत करने के लिए थी। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जीवन आदर्शों को समझाना, समाज के कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना और एक आदर्श नागरिक बनाना था। शिक्षक को समाज में सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। उसे 'गुरु' के रूप में पूजा जाता था। गुरुकुलों की व्यवस्था प्राचीन भारत का प्रमुख शिक्षा मॉडल था जहाँ गुरु अपने शिष्यों को जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराते थे। यह शिक्षा केवल वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों तक सीमित नहीं था यह समाज के मूल्यों, संस्कृति, धर्म, खगोल, चिकित्सा, समानता और न्याय का भी ज्ञान दिया जाता था। इसके साथ–साथ समाज सुधार का भी कार्य करते थे। उदाहरण के लिए कौटिल्य, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी के योगदान को देखा जा सकता है। जिन्होंने समाज में व्याप्त असमानता, भेदभाव और अन्याय के खिलाफ आन्दोलन चलाया। उनके उपदेशों के माध्यम से समाज में जागरूकता और परिवर्तन की नींव रखी गई।

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षकों की स्थिति :

प्राचीन भारत मे गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से शिक्षक समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। शिक्षा केवल ज्ञान का केन्द्र नहीं था बल्कि सामाजिक जीवन, नैतिक मूल्यों तथा व्यक्तित्व का निर्माण भी

करते थे। वे धर्म और समाज के प्रति जिम्मे दारियों को भी सिखाते थे। उदाहरण के रूप में कृष्ण और कौटिल्य जैसे महान शिक्षक समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किये, इस समय की शिक्षा उपनयन संस्कार के बाद गुरुकुल पद्धति से प्रारम्भ होती थी तथा गुरु की पूजा की जाती थी।

मध्यकाल में शिक्षक की भूमिका :

मध्यकाल में विशेष रूप से भारत में शिक्षा का क्षेत्र धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से प्रभावित था। शिक्षा का उद्देश्य लोगों को धर्म के प्रति जागरूक करना और उन्हें धार्मिक मान्यताओं के अनुसार जीवन जीने की शिक्षा देना था। इस समय शिक्षक का प्रमुख कार्य सामाजिक जीवन के मूल्य और परम्पराओं को सिखाना था लेकिन सामाजिक रूपान्तरण में शिक्षक की भूमिका सीमित थी क्योंकि समाज में बदलाव और सुधार की बात कम हो रही थी और शिक्षा का मुख्य रूप धार्मिक मान्यताओं पर आधारित था।

आधुनिक काल में शिक्षकों की भूमिका :

ब्रिटिश शासन और औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली ने भारतीय समाज में बड़े बदलाव किए। इस समय शिक्षा का उद्देश्य भारतीय समाज को पश्चिमी सोच और तर्कशक्ति से परिचित कराना था। शिक्षक ने विद्यार्थियों को औपनिवेशिक शासन के तहत एक निश्चित प्रकार की शिक्षा दी, जिससे भारतीय समाज की सोच में एक नया मोड़ आया।

ईस्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेजी शिक्षा 1835 में लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने का प्रस्ताव दिया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत हुई। इस शिक्षा नीति ने भारतीय शिक्षा को पश्चिमी दृष्टिकोण से प्रभावित किया और भारतीयों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से आधुनिक ज्ञान से परिचित कराया।

राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, सर सैय्यद अहमद खान, ज्योतिबा फूले, स्वामी दयानन्द सरस्वती, जी0जी0 अंगरकर, केशवचन्द्र सेन और महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों ने शिक्षा को समाज में सुधार लाने के एक उपकरण के रूप में उपयोग किया। उन्होंने यह देखा कि शिक्षक समाज में विचारों और मूल्यों के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

20वीं सदी में शिक्षा में बदलाव आया। पारंपरिक शिक्षा से आधुनिक शिक्षा की ओर संक्रमण हुआ। शिक्षक अब विद्यार्थियों को केवल शास्त्रों का ज्ञान नहीं देते थे, बल्कि उन्हें सोचने–समझने और सामाजिक मुद्दों पर जागरूक करने का कार्य भी करते थे।

जान ड्युई जैसे शिक्षा शास्त्री ने यह बताया कि शिक्षा ज्ञान का प्रसार नहीं है बल्कि यह छात्रों को लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूक कर उन्हें समाज में बदलाव लाने के लिए तैयार करते हैं। उनका मानना था कि शिक्षा में बदलाव समाज के व्यापक सुधार के लिए आवश्यक है। इनकी पुस्तक Democracy and Education) में दिया।

महात्मा गांधी (Hind Swaaj-1909) शिक्षक केवल पढ़ाई से नहीं बल्कि अपने आचरण और नैतिकता के द्वारा समाज में सुधार ला सकते हैं।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर (The problem of the Rupee) शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में देखा। उनका मानना था कि केवल शिक्षा के माध्यम से समाज में जातिवाद, भेदभाव और शोषण के खिलाफ जागरूकता फैल सकती है। शिक्षक समाज में परिवर्तन की दिशा में प्रेरक भूमिका निभाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में कई सुधारों का प्रस्ताव रखा है, जिनका उद्देश्य समाज में सकारात्मक बदलाव लाना और हर वर्ग तथा शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करना है।

इस नीति के तहत शिक्षक को समाज में एक केन्द्रीय भूमिका दी गई है। NEP 2020 के तहत शिक्षक केवल ज्ञान देने तक सीमित नहीं रखा है बल्कि विद्यार्थियों के मानसिक और सामाजिक विकास में सहायक बनने के रूप में देखे जाते हैं उन्हें समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक रूपान्तरण के कारक के रूप में प्रेरित किया गया है। इस नीति में शिक्षक प्रशिक्षण और विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है ताकि वे नई शैक्षिक पद्धतियों और तकनीकी संसाधनों से लैस हो सके तथा वे सामाजिक समानता, पर्यावरणीय जागरूकता, समरसता, सकारात्मक विचार, समावेशिता को बढ़ावा देने का प्रयास करती है।

उपरोक्त बिन्दुओं से पता चलता है कि शिक्षक समाज का आधार स्तम्भ हैं जो सामाजिक रूपान्तरण में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

शिक्षक समाज का एक बुद्धिजीवी वर्ग है। वह शैक्षिक क्षेत्र तक सीमित नहीं होता बल्कि वे सामाजिक सांस्कृतिक और मानसिक दृष्टिकोण से विद्यार्थियों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। शिक्षक समाज के भविष्य को आकार देने वाले शिल्पकार होते हैं, और उनके कार्यों से समाज में बदलाव सम्भव हो पाता है। सामाजिक रूपान्तरण में शिक्षक की भूमिका को प्रभावी बनाने वाले प्रमुख कारक निम्न हैं–

(1) शिक्षा के माध्यम से सामाजिक जागरूकता का प्रसार : शिक्षक समाज के विभिन्न मुद्दों के प्रति विद्यार्थियों में जागरूकता पैदा करने का कार्य करते हैं। वे विद्यार्थियों को न केवल पाठ्यक्रम के विषयों में शिक्षत करते हैं बल्कि उन्हें समाज की समस्याओं जैसे जातिवाद, भेदभाव, लैंगिक असमानता, पर्यावरणीय संकट और मानवाधिकार के विषय में भी जागरूक करते हैं। शिक्षक यह सुनिश्चित करते हैं कि विद्यार्थी सामाजिक रूप से जागरूक नागरिक बने जो समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में सक्षम हो। एक शिक्षक ही समाज में लोकतांत्रिक विचारों को जन्म देता है।

(2) समानता और सामाजिक न्याय की भावना : शिक्षक विद्यार्थियों में समानता और सामाजिक न्याय की भावना विकसित करते हैं। वे जातिवाद, लिंग, भेदभाव, धार्मिक असहिष्णुता और अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जागरूक करते हैं व विद्यार्थी में समाज के प्रति सकारात्मक विचारों का सृजन करते हैं जिससे विद्यार्थी तथा देश का विकास हो सके।

महिला शिक्षा एवं लैंगिक समानता : हमारा समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है और भारतीय समाज में सबसे बड़ी प्रथा और मान्यता लैंगिक असमानता है। लड़के व लड़की में भेद–भाव व्याप्त है। शिक्षक समाज में लैंगिक समानता लाने के लिए लोगों को जागरूक कर बालिकाओं को भी शिक्षा प्रदान करने पर जोर देता है। यूनीसेफ की प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार विश्व में बच्चों की सर्वाधिक संख्या भारत में है। विश्वभर में लगभग 12 करोड़ बच्चे आज भी स्कूल नहीं जाते हैं, जिनमें से आधी से अधिक बालिकाएँ हैं जो शिक्षा से वंचित हैं। ये गरीबी, भुखमरी, हिंसा, शोषण और अवैध व्यापार के दुष्चक्र में फंस कर रह जाती है। देश की प्रथम शिक्षा नीति 1968 में सामाजिक पुनर्निर्माण की गति को तीव्र करने के लिए लड़कियों की शिक्षा के महत्व एवं आवश्यकता को स्वीकार कर लड़के और लड़कियों के लिए समान शैक्षिक अवसर पद बल दिया। परन्तु शिक्षा में लैंगिक असमानता की समस्या को हल कर पाना आसान नहीं है। भारत को आजाद हुए 75 वर्ष हो गया लेकिन अभी तक इसे दूर नहीं किया जा सका। हालांकि पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है। लेकिन अभी भी इसमें सुधार और अध्ययन की आवश्यकता है।

वैज्ञानिक सोच व तर्कशीलता– आधुनिक युग में शिक्षक को डिजिटल साक्षरता प्रदान करते हैं जिसमें वे सूचना प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिल सके। तार्किक एवं आलोचनात्मक सोच का विकास हो सके। किसी भी घटना का विवेकपूर्ण विश्लेषण कर सकें। कौशल विकास, आत्मनिर्भरता,

स्वरोजगार आदि क्षेत्रों में उन्नति हो, सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक प्रतिमान आदि का संरक्षण भी किया जा सके।

उद्देश्य–

- शिक्षक विद्यार्थियों में सामाजिक समानता और न्याय की भावना को प्रोत्साहित करना।
- शिक्षक समाज के प्रति नैतिक जिम्मेदारी का अहसास कराना।
- छात्रों में सकारात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना।
- समाज में लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना।
- समाज में बदलाव और सुधार के प्रति शिक्षार्थियों को प्रेरित करना।

उपकल्पना–

- समाज में व्यापक परिवर्तन लाना है तो इसके लिए शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना होगा।
- शिक्षक केवल पाठ्यक्रम आधारित शिक्षा न दे वे छात्रों में नैतिकता, लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक दायित्व की भावना विकसित करना होगा।
- डिजिटल शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वैश्वीकरण और आधुनिक तकनीकों के बारे में सही जानकारी देना।
- शिक्षक सभी वर्गों को समान शिक्षा प्रदान करे जिससे आर्थिक असमानता व सामाजिक भेदभाव कम किया जा सके।
- शिक्षक समाज में लैंगिक समानता और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देना।

सकारात्मक प्रभाव–

- शिक्षक समाज में सामाजिक रूपान्तरण लाने में महत्वपूर्ण प्रेरक होते हैं। हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति शिक्षक और विद्यार्थी के मध्य समायोजन स्थापित नहीं करती बल्कि व्यक्ति और समाज के बीच समायोजन करती है। सामाजिक समायोजन जीविकोपार्जन के दृष्टि से सभी की परिस्थितियाँ और आकांक्षाएँ क्षमता एक जैसी नहीं होती। उसी प्रकार सभी बालक–बालिका एक जैसी नहीं होते हैं। कुछ बालक कुशाग्र बुद्धि के, कुछ मंद बुद्धि के होते हैं। सभी को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षक प्रोत्साहित करता है और उन्हें सकारात्मक विचारों की ओर अग्रसर करता है जिससे उनमें वैज्ञानिक तार्किक विचारों का समावेश हो सके।
- विद्यार्थियों में समानता, सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, नैतिक मूल्य जैसे विचारों को विकसित करना जिससे विकास राष्ट्र का निर्माण हो सके। शैक्षणिक क्षेत्र में विकस हेतु सरकार समय–समय पर विभिन्न योजनाओं का संचालन किया सब बढ़े, सब पढ़े, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, सर्व शिक्षा अभियान आदि।

वर्तमान स्थिति :

वर्तमान समय में शिक्षा सामाजिक रूपान्तरण को महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में कार्य कर रहे हैं। डिजिटल क्रान्ति, वैश्वीकरण और नई शिक्षा नीति (NEP 2020) के प्रभाव से शिक्षकों की भूमिका लगातार

बदल रही है, वे न केवल ज्ञान प्रदाता है, बल्कि समाज सुधारक, मार्गदर्शक और नैतिकता के संवाहक भी है।

(1) **डिजिटल युग में शिक्षकों की भूमिका–** आज तकनीकी शिक्षा समाज का अभिन्न अंग बन चुका है। ऑनलाइन कक्षाओं, स्मार्ट कक्षाएँ और ई–लर्निंग संसाधनों के बढ़ते उपयोग से शिक्षकों की जिम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं वे अब डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा और आर्टिफिशियल (AI) जैसी नई तकनीकों से छात्रों को परिचित करा रहे हैं।

(2) **वैश्वीकरण और सामाजिक समरसता–** वैश्वीकरण के कारण विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क में आने से शिक्षकों की भूमिका बहुआयामी हो गई है। वे छात्रों के विभिन्न संस्कृतियों और परम्पराओं को समझने के लिए प्रेरित कर रहे हैं और वैश्विक नागरिकता की भावना विकसित करने में योगदान कर रहे हैं।

(3) **नैतिक और मूल्य–आधारित शिक्षा–** समाज में नैतिकता, सहिष्णुता और सामाजिक सद्भाव बनाए रखने में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे छात्रों को संवैधानिक मूल्यों, लोकतंत्र समानता तथा समावेशिता को बढ़ावा देकर एक न्यायसंगत समाज के निर्माण में योगदान दे रहे हैं तथा वर्तमान में लैंगिक समानता, बालिग शिक्षा, वंचित वर्गों के उत्थान और विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा में अहम् भूमिका निभा रहे हैं।

चुनौतियाँ :

- डिजिटल शिक्षा के विस्तार के बावजूद भी सभी शिक्षकों के पास उचित तकनीकी संसाधन और प्रशिक्षण की कमी, ग्रामीण क्षेत्रों में इन्टरनेट कनेक्टिविटी की समस्या के कारण ऑनलाइन शिक्षा प्रभावी नहीं हो पा रहा है।
- सरकारी और ग्रामीण स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं जैसे पुस्तकालय के स्मार्ट क्लासरूम व छात्र के अनुपात में शिक्षकों की कमी।
- वैश्विक स्तर पर बदलती शिक्षा प्रणाली के अनुरूप शिक्षकों को स्वयं अध्ययन की आवश्यकता तथा पारम्परिक और आधुनिक शिक्षा के बीच संतुलन बनाने में चुनौती।
- उपभोक्तावाद और आधुनिक जीवनशैली के कारण छात्रों में नैतिक मूल्यों और अनुशासन की कमी देखी जा रही है। शिक्षकों पर छात्रों को नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारियों को सिखाने के लिए अतिरिक्त दबाव बढ़ रहा है।
- ग्रामीण–शहरी विभाजन, जाति, लिंग तथा आर्थिक असमानता के कारण समान रूप से सभी को शिक्षा देने में समस्या।
- नई शिक्षा नीति 2020 को जमीनी स्तर पर प्रभावी रूप से लागू करने के लिए शिक्षकों को अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

समाधान :

- शिक्षकों को डिजिटल शिक्षा का प्रशिक्षण और आवश्यक संसाधन प्रदान किए जाए।
- सभी विद्यालयों में बुनियादी सुविधाएँ, स्मार्ट कक्षाएँ और पुस्तकालय का प्रबन्ध किया जाए।
- नई शिक्षा नीति (NEP 2020) के अनुसार शिक्षकों को अपडेटेड ट्रेनिंग दी जाए।
- युवाओं को रोजगार सक्षम बनाने के लिए व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक बल।

- शिक्षा में जाति, लिंग और आर्थिक भेदभाव को समाप्त कर समावेशी शिक्षा लागू की जाए तथा ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षक की उपलब्धता हो।
- छात्रों को पारम्परिक और आधुनिक शिक्षा के साथ नैतिक मूल्यों, आदर्शों और सकारात्मक विचारों को बढ़ावा दिया जाए।
- अनुसंधान और विकास पर आधारित शिक्षा पर अधिक बल।

निष्कर्ष :

शिक्षक समाज का निर्माता होता है जो न केवल शिक्षा प्रदान करते हैं वे सामाजिक मूल्यों, नैतिकता और जागरूकता का संचार भी करते हैं। सामाजिक रूपान्तरण में उसकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि वे ज्ञान संस्कार और आधुनिक विचारधारा के माध्यम से समाज को सही दिशा में आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। शिक्षकों के प्रयास से ही समाज में सकारात्मक परिवर्तन सम्भव हो पाता है। वर्तमान समय में डिजिटल शिक्षा, वैश्वीकरण, नई शिक्षा नीति (NEP 2020) और सामाजिक असमानता जैसी चुनौतियाँ शिक्षकों के समक्ष है। तकनीकी क्रान्ति ने शिक्षा के स्वरूप को बदल दिया है जिससे शिक्षकों को निरन्तर नए कौशल सीखने की आवश्यकता है साथ ही नैतिक मूल्यों में गिरावट सामाजिक भेदभाव और मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ भी शिक्षक के लिए बड़ी चुनौतियाँ बनकर उभरी है। इन सभी बाधाओं के बावजूद शिक्षक अपने ज्ञान और मार्गदर्शन से छात्रों को सशक्त बना रहे हैं जिससे समाज में समावेशिता, समानता और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा मिल रहा है।

समाज में व्यापक बदलाव लाने के लिए शिक्षकों को उचित संसाधन प्रशिक्षण और सम्मान प्रदान करना अनिवार्य है। सरकार और समाज को शिक्षकों के सशक्तिकरण की दिशा में ठोस प्रयास करना होगा जिससे वे अपनी भूमिका को और अधिक प्रभावशाली बना सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. कुमार, के0 (1991). शिक्षा का राजनीतिक एजेंडा : उपनिवेशवादी और राष्ट्रवादी विचारों का अध्ययन, SAGE प्रकाशन
2. अग्रवाल, जे0सी0 (2010). विकासशील समाज में शिक्षक और शिक्षा, विकास पब्लिशिंग हाउस
3. NCERT (2021) भारत में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
4. S.K. Murty, Vinod Publications, Ludhiana, Education in Indian Society.
5. Dr. A. Antony, Teacher and Education in Indian Society.
6. Sunanda Ghosh : Education in Emerging Indian Society : The Challenges issues.
7. शर्मा, आर0 (2018). शिक्षक नेतृत्व और सामाजिक परिवर्तन, पियर्सन शिक्षा।
8. UNESO (2025) शिक्षा पर पुनर्विचार : वैश्विक साझा कल्याण की ओर संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन
9. भारत सरकार (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय
10. मिश्रा, आर0सी0 (2005). सामाजिक परिवर्तन में शिक्षकों की भूमिका, एपीएच पब्लिशिंग कार्पोरेशन

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

ग्रामीण समाज का सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

रवि दास
शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ जयप्रकाश यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश

ग्रामीण समाज का सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण एक व्यापक प्रक्रिया है, जो शिक्षा, औद्योगीकरण, तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और सरकारी नीतियों के प्रभाव से निरंतर विकसित हो रही है। पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली में बदलाव आ रहा है, एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ रहा है, और विवाह प्रथाओं में लचीलापन देखने को मिल रहा है। संचार माध्यमों और डिजिटल क्रांति ने ग्रामीण समाज की सोच और जीवनशैली को प्रभावित किया है, जिससे युवा अधिक जागरूक और महत्वाकांक्षी बन रहे हैं। हालाँकि, इस बदलाव के कारण ग्रामीण समाज में कई सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हो रही हैं।आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, जातिगत और लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याएँ अब भी बनी हुई हैं। कृषि पर निर्भरता घट रही है, लेकिन वैकल्पिक रोजगार के अवसर सीमित हैं, जिससे पलायन की समस्या बढ़ रही है। वहीं, पारंपरिक लोकसंस्कृति, भाषा और त्योहारों पर आधुनिकता और वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ा है, जिससे ग्रामीण संस्कृति के क्षरण का खतरा बना हुआ है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए शिक्षा और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना, स्वरोजगार और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करना, महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाना और सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करना आवश्यक है।सरकार द्वारा मनरेगा, डिजिटल इंडिया, उज्ज्वला योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसी योजनाएँ चलाई जा रही हैं, लेकिन इनका वास्तविक लाभ तभी मिलेगा जब जागरूकता और जनभागीदारी बढ़ेगा, परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाकर, सामाजिक समरसता को बढ़ावा देकर और आधारभूत सुविधाओं में सुधार करके ही ग्रामीण समाज को समावेशी और आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है, जिससे वह सतत विकास की दिशा में आगे बढ़ सके।

मुख्य शब्द: सामाजिक रूपांतरण, सांस्कृतिक परिवर्तन, आधुनिकीकरण, शिक्षा और डिजिटल साक्षरता, आर्थिक विकास, महिला सशक्तिकरण, संवैधानिक प्रयास , सामाजिक समरसता

प्रस्तावना:

ग्रामीण समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण एक निरंतर प्रक्रिया है, जो समय, परिस्थितियों और बाहरी प्रभावों के साथ विकसित होती रहती है। परंपरागत रूप से, भारतीय ग्रामीण समाज सामूहिकता, पारिवारिक मूल्यों और सांस्कृतिक परंपराओं पर आधारित रहा है। किंतु औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण, शिक्षा के प्रसार और संचार माध्यमों की प्रगति ने ग्रामीण समाज की संरचना और सांस्कृतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। जाति प्रथा, सामुदायिक संबंध, विवाह एवं पारिवारिक संरचना, परंपरागत व्यवसाय तथा जीवनशैली जैसी प्रमुख सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आधुनिकता और तकनीकी विकास के प्रभाव से ग्रामीण समाज में एक नया सामाजिक ढांचा उभर रहा है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता के बीच

सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया जारी है।सांस्कृतिक रूपांतरण के संदर्भ में, ग्रामीण समाज में सांस्कृतिक मूल्यों, रीति-रिवाजों, जीवनशैली और सामाजिक व्यवहार में बदलाव परिलक्षित हो रहा है। टेलीविजन, मोबाइल, इंटरनेट और सामाजिक मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने न केवल ग्रामीण जनता की सोच और दृष्टिकोण को बदला है, बल्कि उनके दैनिक जीवन में भी व्यापक परिवर्तन किए हैं। शिक्षा के विस्तार और आर्थिक अवसरों की वृद्धि ने युवा पीढ़ी को पारंपरिक रोजगार से अलग आधुनिक नौकरियों और व्यवसायों की ओर आकर्षित किया है। इसके साथ ही, महिलाओं की भूमिका में भी परिवर्तन आया है, जिससे वे शिक्षा, रोजगार और सामाजिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय भागीदारी करने लगी हैं। यह अध्ययन ग्रामीण समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरण की प्रक्रिया को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषित करने का प्रयास करेगा, जिससे परंपरा और आधुनिकता के बीच के संबंध को समझा जा सके।

ग्रामीण समाज में पारिवारिक संरचना परंपरागत रूप से संयुक्त परिवार प्रणाली पर आधारित रही है, जहाँ एक ही छत के नीचे कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं। किंतु औद्योगीकरण, शहरीकरण और शिक्षा के प्रसार ने परिवारिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन किए हैं। अब एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है, विशेष रूप से युवाओं के नौकरी और बेहतर जीवनशैली की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने के कारण। पारिवारिक संबंधों में भावनात्मक जुड़ाव तो बना हुआ है, लेकिन आर्थिक स्वायत्तता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति झुकाव अधिक हो गया है।वैवाहिक प्रथा में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। पहले विवाह पारिवारिक और सामाजिक संबंधों को मजबूत करने का माध्यम होते थे, जिसमें माता-पिता की सहमति ही सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती थी। किन्तु अब प्रेम विवाह और अंतरजातीय विवाह की स्वीकृति बढ़ रही है, जिससे विवाह के पारंपरिक स्वरूप में बदलाव आया है। साथ ही, दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी कुरीतियों में भी कमी आई है, हालांकि कुछ क्षेत्रों में यह अभी भी विद्यमान हैं।परंपराओं की बात करें तो धार्मिक और सांस्कृतिक उत्सवों का स्वरूप बदला है। जहाँ पहले रीति-रिवाजों का पालन कठोरता से किया जाता था, वहीं अब इनका अधिक लचीला रूप देखने को मिलता है। शिक्षा और संचार माध्यमों के प्रभाव से अंधविश्वासों में कमी आई है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। हालाँकि, पारंपरिक त्योहारों और सांस्कृतिक आयोजनों को संरक्षित रखने की प्रवृत्ति अभी भी बनी हुई है, जिससे आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित हो रहा है।

साहित्य सर्वेक्षण:

ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण को समझने के लिए विभिन्न समाजशास्त्रियों और विद्वानों द्वारा विस्तृत अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों में पारिवारिक संरचना, वैवाहिक प्रथाएँ, परंपराएँ और सामाजिक बदलावों का विश्लेषण किया गया है। निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों के माध्यम से इस विषय को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है:

1. "भारतीय ग्रामीण समाज" – एस. एल. दोषी (2012) ,इस पुस्तक में ग्रामीण समाज की पारंपरिक संरचना, जाति व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकता के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया गया है। लेखक ने विशेष रूप से औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण ग्रामीण जीवन में आए बदलावों पर चर्चा की है।

2. "ग्रामीण समाजशास्त्र" – योगेंद्र सिंह (2015),यह पुस्तक ग्रामीण समाज के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर केंद्रित है। इसमें समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ग्रामीण जीवन, सामुदायिक संबंधों, कृषि व्यवस्था और सामाजिक गतिशीलता का विश्लेषण किया गया है।

3. "भारत में सामाजिक परिवर्तन" – एम. एन. श्रीनिवास (2018),इस पुस्तक में भारतीय समाज, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है। लेखक ने 'संस्कृतिकरण' और 'पश्चिमीकरण' की अवधारणाओं के माध्यम से ग्रामीण समाज में बदलाव को स्पष्ट किया है।

ये पुस्तकें ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण को समझने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती हैं और समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री के रूप में उपयोगी हैं।

अर्थ :

सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण का अर्थ किसी समाज की संरचना, मूल्यों, मान्यताओं, परंपराओं और व्यवहार में समय के साथ होने वाले परिवर्तन से है। यह परिवर्तन शिक्षा, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं।ग्रामीण समाज के संदर्भ में, सामाजिक रूपांतरण का अर्थ परिवार, जाति व्यवस्था, विवाह प्रथा, आर्थिक गतिविधियों और सामाजिक संबंधों में बदलाव से है, जबकि सांस्कृतिक रूपांतरण का अर्थ रीति-रिवाजों, परंपराओं, भाषा, कला और धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन से है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे होती है और परंपरा तथा आधुनिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करती है।

विद्वानों के कथन :

1. एम. एन. श्रीनिवास – "संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन के दो महत्वपूर्ण कारक हैं, जो परंपरागत संरचनाओं को प्रभावित करते हैं।"

2. योगेंद्र सिंह – "ग्रामीण समाज में बदलाव केवल आर्थिक कारणों से नहीं, बल्कि शिक्षा, संचार और औद्योगीकरण के प्रभाव से भी हो रहा है, जिससे सामाजिक गतिशीलता बढ़ी है।"

3. जी. एस. घुर्ये – "भारतीय ग्रामीण समाज जाति और पारिवारिक संरचना पर आधारित रहा है, लेकिन आधुनिकीकरण ने इन पारंपरिक संस्थाओं में परिवर्तन लाने का कार्य किया है।"

4. रॉबर्ट रेडफील्ड – "ग्रामीण और शहरी समाज के बीच निरंतर संपर्क के कारण लोकसंस्कृति और महानगरीय संस्कृति के बीच एक नई सामाजिक संरचना विकसित हो रही है।"

इन विद्वानों के विचारों से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण विभिन्न कारकों—जैसे आधुनिकीकरण, शिक्षा, औद्योगीकरण, संचार माध्यम और शहरीकरण—के प्रभाव से हो रहा है। परंपरागत संरचनाएँ धीरे-धीरे परिवर्तित हो रही हैं, जिससे ग्रामीण समाज में नई सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण – पारिवारिक संरचना, वैवाहिक प्रथाओं और सामाजिक संबंधों में हुए बदलावों को समझना।

2. सांस्कृतिक रूपांतरण के कारकों का अध्ययन – शिक्षा, वैश्वीकरण, संचार माध्यमों और औद्योगीकरण के प्रभावों का मूल्यांकन करना।

3. परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन का निरीक्षण – ग्रामीण समाज में परंपरागत मूल्यों और आधुनिक परिवर्तनों के समायोजन की प्रक्रिया को समझना।

महत्त्व:

ग्रामीण समाज का सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरण केवल समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। समाज में हो रहे बदलावों को समझने से न केवल सामाजिक नीतियों और विकास

योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है, बल्कि ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाने की दिशा में भी ठोस कदम उठाए जा सकते हैं।

1. सामाजिक संरचना में परिवर्तन की समझ:

ग्रामीण समाज में पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली धीरे-धीरे एकल परिवारों में परिवर्तित हो रही है। विवाह व्यवस्था में भी बदलाव आ रहे हैं, जैसे प्रेम विवाह और अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति बढ़ रही है। इस अध्ययन से यह समझने में सहायता मिलती है कि पारिवारिक और विवाह संबंधी संस्थाएँ कैसे बदल रही हैं और इससे सामाजिक संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

2. सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं का संरक्षण:

ग्रामीण समाज अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं के लिए जाना जाता है। हालाँकि, आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से कई पारंपरिक रीति-रिवाज और लोकसंस्कृति धीरे-धीरे बदल रहे हैं। यह अध्ययन परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक हो सकता है, जिससे सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखते हुए समाज को विकास की ओर अग्रसर किया जा सके।

3. आर्थिक एवं तकनीकी विकास के प्रभावों का मूल्यांकन:

तकनीकी विकास, शिक्षा के प्रसार और औद्योगीकरण ने ग्रामीण समाज की अर्थव्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया है। कृषि पर निर्भरता घट रही है, और लोग वैकल्पिक रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इस अध्ययन के माध्यम से यह समझने में सहायता मिलेगी कि आर्थिक बदलावों के कारण ग्रामीण जीवनशैली में क्या-क्या परिवर्तन आ रहे हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कैसे सुदृढ़ किया जा सकता है।

4. नीति निर्माण और सामाजिक योजनाओं में उपयोगिता :

ग्रामीण विकास से संबंधित सरकारी नीतियाँ और योजनाएँ तभी प्रभावी हो सकती हैं, जब वे समाज के वास्तविक परिवर्तन और आवश्यकताओं के अनुरूप बनाई जाएँ। यह अध्ययन नीति निर्माताओं को सही दिशा में कार्य करने के लिए महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकता है, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण और रोजगार संबंधी कार्यक्रमों को बेहतर बनाया जा सके।

5. परंपरा और आधुनिकता के बीच सामंजस्य: ग्रामीण समाज में तेजी से बदलाव हो रहे हैं, लेकिन परंपरागत मूल्यों और आधुनिग्रामीण समाज की वर्तमान स्थिति के जीवनशैली के बीच संघर्ष भी देखने को मिलता है। यह अध्ययन उन प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जिनके माध्यम से ग्रामीण समाज पारंपरिक संरचनाओं को बनाए रखते हुए आधुनिकता को अपना रहा है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि ग्रामीण समाज में कैसे संतुलित विकास किया जा सकता है।

ग्रामीण समाज का सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरण एक व्यापक प्रक्रिया है, जो शिक्षा, संचार, औद्योगीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से निरंतर विकसित हो रही है। इस अध्ययन का महत्त्व केवल शैक्षणिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीति निर्माण और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में भी बहुत अधिक है। इससे न केवल ग्रामीण समाज में हो रहे बदलावों को समझने में सहायता मिलेगी, बल्कि इनके आधार पर विकास नीतियों को अधिक प्रभावी और संवेदनशील बनाया जा सकेगा।

ग्रामीण समाज की वर्तमान स्थिति :

आज के दौर में ग्रामीण समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण तेज़ी से हो रहा है। शिक्षा, औद्योगीकरण, तकनीकी विकास और संचार माध्यमों के प्रभाव से ग्रामीण जीवनशैली में बदलाव देखा जा रहा है। संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ा है, और वैवाहिक प्रथाओं में भी लचीलापन आया है। अब प्रेम विवाह और अंतरजातीय विवाह को पहले की तुलना में अधिक स्वीकार्यता मिल रही है।सांस्कृतिक स्तर पर परंपरागत त्योहार, रीति-रिवाज और लोककला अभी भी विद्यमान हैं, लेकिन उनके स्वरूप में आधुनिकता का समावेश हो रहा है। मोबाइल, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने ग्रामीण समाज की सोच और जीवनशैली को बदला

है, जिससे युवा पीढ़ी अधिक जागरूक और महत्वाकांक्षी बन रही है। हालाँकि, शहरीकरण और पलायन के कारण कई क्षेत्रों में पारंपरिक संस्कृति और सामुदायिक भावना कमजोर हो रही है।आर्थिक दृष्टि से भी परिवर्तन देखा जा सकता है। कृषि पर निर्भरता घट रही है, और लोग वैकल्पिक रोजगार, स्वरोजगार तथा डिजिटल कार्यों की ओर बढ़ रहे हैं। सरकार की ग्रामीण विकास योजनाएँ जैसे डिजिटल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया और ग्रामीण कौशल विकास कार्यक्रम इस बदलाव को तेज़ कर रहे हैं। कुल मिलाकर, ग्रामीण समाज परंपरा और आधुनिकता के मेल से एक नए स्वरूप में ढल रहा है।

चुनौतियाँ :

ग्रामीण समाज में हो रहे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन कई अवसर प्रदान कर रहे हैं, लेकिन इसके साथ ही कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हो रही हैं। आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित करना, आर्थिक असमानता, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता जैसी समस्याएँ इस रूपांतरण की प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

1. परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष:

ग्रामीण समाज में आधुनिकता का प्रभाव बढ़ने से पारंपरिक मूल्यों और रीति-रिवाजों के साथ संघर्ष उत्पन्न हो रहा है। युवा पीढ़ी आधुनिक जीवनशैली और स्वतंत्रता की ओर बढ़ रही है, जबकि बुजुर्ग अब भी परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं। इससे पीढ़ियों के बीच वैचारिक मतभेद बढ़ रहे हैं।

2. आर्थिक असमानता और बेरोजगारी:

ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण और शहरीकरण के प्रभाव से कई लोगों को नए अवसर मिले हैं, लेकिन इसके बावजूद बेरोजगारी और आर्थिक असमानता बनी हुई है। कृषि पर निर्भरता कम हो रही है, लेकिन वैकल्पिक रोजगार के अवसर सीमित हैं। इससे पलायन की समस्या बढ़ रही है, जिससे ग्रामीण सामाजिक संरचना प्रभावित हो रही है।

3. शिक्षा और तकनीकी जागरूकता की कमी:

हालाँकि शिक्षा का प्रसार हो रहा है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी गुणवत्ता युक्त शिक्षा और तकनीकी कौशल की कमी एक बड़ी समस्या है। डिजिटल साक्षरता और उच्च शिक्षा तक सीमित पहुंच के कारण ग्रामीण युवा प्रतिस्पर्धा में पीछे रह जाते हैं। इससे उनके सामाजिक और आर्थिक विकास में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

4. जाति और लैंगिक भेदभाव:

हालाँकि आधुनिकता और शिक्षा के प्रसार से जातिगत और लैंगिक भेदभाव में कमी आई है, लेकिन यह समस्या अभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को अब भी शिक्षा, रोजगार और सामाजिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता सीमित रूप से प्राप्त है।

5. पारंपरिक संस्कृति का क्षरण:

ग्लोबलाइजेशन और डिजिटल संचार के कारण पारंपरिक लोकसंस्कृति, भाषा, त्योहारों और रीति-रिवाजों पर प्रभाव पड़ रहा है। युवा पीढ़ी तेजी से शहरी जीवनशैली और पश्चिमी संस्कृति को अपनाने की ओर बढ़ रही है, जिससे पारंपरिक ग्रामीण संस्कृति कमजोर हो रही है।

ग्रामीण समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरण से विकास की नई संभावनाएँ खुल रही हैं, लेकिन इसके साथ ही कई चुनौतियाँ भी सामने आ रही हैं। इन चुनौतियों का समाधान शिक्षा, रोजगार, डिजिटल साक्षरता और जागरूकता के माध्यम से किया जा सकता है, जिससे ग्रामीण समाज परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करते हुए समग्र विकास की ओर अग्रसर हो सके।

समाधान:

1. शिक्षा और डिजिटल साक्षरता का प्रसार – ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान कर युवाओं को सशक्त बनाना आवश्यक है। डिजिटल साक्षरता बढ़ाने से रोजगार के नए अवसर मिल सकते हैं।

2. स्वरोजगार और आर्थिक विकास – ग्रामीण क्षेत्रों में स्टार्टअप, कृषि-आधारित उद्योग, हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर आर्थिक असमानता को कम किया जा सकता है। सरकार की योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन भी आवश्यक है।

3. परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन – लोकसंस्कृति, भाषा और पारंपरिक त्योहारों को संरक्षित करने के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाएँ, जिससे युवा आधुनिकता अपनाने के साथ अपनी जड़ों से जुड़े रहें।

4. सामाजिक भेदभाव का उन्मूलन – जाति और लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने के लिए कानूनों को प्रभावी रूप से लागू किया जाए और सामाजिक जागरूकता अभियान चलाए जाएँ। महिलाओं की शिक्षा और रोजगार में भागीदारी को बढ़ावा दिया जाए।

5. बेहतर आधारभूत संरचना और सरकारी योजनाएँ – स्वास्थ्य, परिवहन, संचार और पेयजल जैसी बुनियादी सुविधाओं को मजबूत किया जाए, जिससे ग्रामीण समाज का समग्र विकास संभव हो सके।

सरकार और संवैधानिक प्रयास:

ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण को सुचारु रूप से आगे बढ़ाने और चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकार ने कई नीतियाँ और संवैधानिक प्रावधान लागू किए हैं। ये प्रयास शिक्षा, रोजगार, सामाजिक समानता, डिजिटल साक्षरता और महिलाओं के सशक्तिकरण जैसे विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित हैं।

1. शिक्षा और जागरूकता के प्रयास

मिड-डे मील योजना और समग्र शिक्षा अभियान जैसी योजनाओं के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है।नई शिक्षा नीति 2020 के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक शिक्षा और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा दिया गया है।

2. आर्थिक और रोजगार संबंधी पहल:महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA) के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराया जाता है।स्टार्टअप इंडिया और मुद्रा योजना जैसी पहल ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार और छोटे व्यवसायों के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं। दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (DDU-GKY) ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण और कौशल विकास का अवसर प्रदान कर रही है।

3. महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के लिए प्रयास:बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना और सुकन्या समृद्धि योजना के माध्यम से महिलाओं की शिक्षा और वित्तीय सुरक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है।अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण संवैधानिक स्तर पर सामाजिक न्याय सुनिश्चित करता है।प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के तहत ग्रामीण महिलाओं को मुफ्त गैस कनेक्शन देकर उनके जीवन स्तर में सुधार किया गया है।

4. डिजिटल और आधारभूत संरचना विकास:डिजिटल इंडिया अभियान के तहत इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाया जा रहा है।प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत गाँवों को शहरों से जोड़ने के लिए सड़कों का निर्माण किया जा रहा है।स्वच्छ भारत मिशन के तहत ग्रामीण स्वच्छता को बढ़ावा देकर स्वास्थ्य और सामाजिक स्थिति में सुधार किया गया है।सरकार और संविधान के विभिन्न प्रयासों से ग्रामीण समाज में सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। हालाँकि, इन योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन और जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि ग्रामीण समाज सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से अधिक सशक्त और आत्मनिर्भर बन सके।

निष्कर्ष एवं सुझाव:

ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण को संतुलित और समावेशी बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता है। सबसे पहले, शिक्षा और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देकर ग्रामीण युवाओं को सशक्त बनाया जाना चाहिए। व्यावसायिक प्रशिक्षण और स्वरोजगार के अवसर बढ़ाने से बेरोजगारी की समस्या को कम किया जा सकता है। महिलाओं की शिक्षा,

स्वास्थ्य और आर्थिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिससे लैंगिक समानता सुनिश्चित हो सके। साथ ही, जातिगत भेदभाव को समाप्त करने और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए।इसके अलावा, परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है ताकि लोकसंस्कृति और पारंपरिक रीति-रिवाज संरक्षित रह सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं जैसे सड़क, बिजली, स्वच्छ पेयजल, स्वास्थ्य सेवाएँ और इंटरनेट कनेक्टिविटी का विस्तार किया जाना चाहिए। सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन और जनभागीदारी से ग्रामीण समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है। , इन प्रयासों से ग्रामीण समाज अधिक आत्मनिर्भर, आर्थिक रूप से सक्षम और सामाजिक रूप से समावेशी बन सकेगा, जिससे वह सतत विकास की ओर अग्रसर होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. Gandhi, M. K. (1910). Hind Swaraj. Navajivan Publishing House.
2. Dumont, L. (1966). Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications. University of Chicago Press.
3. Srinivas, M. N. (1966). Social Change in Modern India. University of California Press.
4. Deshmukh, C. D. (1989). Bharatiya Gramin Samaj. Rawat Publications.
5. Prasad, M. (2001). Bharat Mein Samajik Sanrachna. Sage Publications.
6. Singh, Y. (2005). Modernization of Indian Tradition: A Systematic Study of Social Change. Rawat Publications.
7. Sharma, K. L. (2007). Indian Social Structure and Change. Rawat Publications.
8. Ravi, S. P. (2010). Gramin Bharat: Chunautiyan Aur Sambhavanayein. Concept Publishing.
9. Das, V. (2012). Bhartiya Gramin Samajshastra. Rawat Publications.
10. Mishra, R. P. (2015). Gramin Vikas aur Samajik Parivartan. Orient BlackSwan.
11. Kumar, A. (2017). Cultural Globalization and Rural Society in India. Sage Publications.
12. Varun, A. K. (2019). Social Justice and Development in India. Oxford University Press.
13. Choudhary, S. (2021). Neo-liberalism and Indian Society. Springer.

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

ग्रामीण रूपांतरण में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की भूमिका : विश्लेषण

रचित कुमार यादव
शोध छात्र
समाजशास्त्र विभाग,
सी0एस0जे0एम0 विश्वविद्यालय,
कानपुर

सारांश : *ग्रामीण विकास एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसमें ग्रामीण विकास के द्वारा कृषि, आर्थिक तथा सामाजिक विकास की आधार शिला तैयार की जाती है। भूमिहीनों के लिए उचित मजदूरी, मकान बनाने के लिए भूमि, ग्राम नियोजन, जनस्वास्थ्य, शिक्षा, साक्षरता तथा संचार शामिल है। उसके दो महत्त्वपूर्ण पहलू है– विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर निकट समन्वय द्वारा आर्थिक विकास तथा देहाती गरीब जनों का उत्थान। भारत देश की अधिकतर लोग आज भी अपनी जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है भारत की लगभग आधी से ज्यादा राष्ट्रीय आय कृषि से प्राप्त होती है। यदि भारत के गाँव अविकसित रह गये तो शहरों में कितना ही विकास क्यों न हुआ हो उसका कोई अर्थ नहीं है। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण भारत में पंचवर्षीय योजनाओं से ग्रामीण भारत का विकास हुआ है। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कई योजनाएँ चलाई गई उन योजनाओं से ग्रामीण भारत का विकास हुआ इसमें कोई दो राय नहीं है। ग्रामीण विकास की प्रक्रिया रूपातंरण के दौर से होकर गुजरती है। ग्रामीण रूपातंरण एक सर्वव्यापी प्रक्रिया है ग्रामीण रूपांतरण नवीन सामाजिक नियमों एवं व्यवस्था के प्रेषण करने की एक प्रक्रिया है। रूपातंरण को हम सामाजिक घटनाओं के गुणात्मक से परिमाणात्मक प्रक्रिया के परिवर्तनों की अंतक्रिया रूप में समझ सकते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों द्वारा हो रहे ग्रामीण क्षेत्र में रूपांतरण पर प्रकाश डालने का कार्य करने का प्रयास किया गया है।*

ग्रामीण विकास की अवधारणा :

भारत की अधिकांश जनता गाँवों में रहती है। अतः जब तक इन गाँवों का सुधार, विकास तथा पुननिर्माण नहीं होगा तब तक भारत का विकास नहीं हो सकता। ग्रामीण विकास का महत्त्व इस बात में निहित है कि गरीबी का स्रोत ग्रामीण क्षेत्रों में हैं यह वहीं व्यापक रूप से फैली है हमारे विकास कार्यक्रमों में चरम लक्ष्य गरीबी की समाप्ति है। ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक ही देश में गरीबों का सबसे बड़ा वर्ग है। शहरी गरीबी के मूल में भी यही लोग है। पिछले कुछ दशकों के दौरान औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप गाँवों से शहरों के पलायन के कारण निःसंदेह समस्याएँ पैदा हुई है।

स्वतंत्र भारत में सर्वप्रथम 02 अक्टूबर, 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की शुरूआत की गयी। इसके पश्चात् ग्रामीण विकास को गति देने हेतु पंचवर्षीय योजनाओं को के माध्यम से क्रियान्वयन का प्रयास किया गया। सर्वप्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र को मजबूत करने का कार्य किया गया। 1956 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना को शुरू किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य समस्त प्रकार के विकास के साथ ही मूल रूप औद्योगिक विकास पर केन्द्रित था। इस दौरान 02 अक्टूबर, 1959 का नागौर राजस्थान में बलवंत राय मेहता जी के सिफारिश पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू करने का निर्णय लिया गया।

ग्रामीण विकास से आशय है कि ग्रामीण लोगों के भौतिक स्तर में परिवर्तन करने से है जिसमें बेहतर स्वास्थ, शिक्षा, आवास और कल्याण द्वारा ग्रामीण जीवन के स्तर में सुधार करने से है।

ग्रामीण विकास के मूल तत्त्व है–

1. ग्रामीण असमानता व निर्धनता को खत्म करना।
2. ग्रामीण समुदाय के भौतिक स्तरों में वृद्धि।
3. सामाजिक स्तर, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और कल्याण सेवाओं में सुधार करने से है।
4. विभिन्न समूहों के बीच विकास के लाभों का न्यायोचित वितरण से है।
5. ग्रामीण प्रौद्योगिकी में प्रगति से है।

ग्रामीण विकास का अर्थ है ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले गरीबों के सम्पूर्ण विकास से। ग्रामीण विकास से अभिप्राय न केवल कृषि विकास से है वरन् इसमें सामाजिक सुविधाएँ एवं मानव संसाधनों का विकास शामिल है। किसी देश के भौतिक, पर्यावरणीय, प्रौद्योगिकी, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और संस्थागत कारकों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में अन्तःक्रियात्मक परिणाम के क्रम ग्रामीण विकास को समझा जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन विशेष रूप से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन वाले अस्त्र के रूप में ग्रामीण विकास को परिभाषित किया जा सकता है।

विश्व बैक के अनुसार[1], ग्रामीण विकास गरीबी और असमानता समाप्त करने वाला अस्त्र है, जिसमें विशेष समूह के लोगों के लिए मुख्यतः गरीबों के लिए योजनाबद्ध तरीके से उनके आर्थिक और सामाजिक जीवन को ऊपर उठाने का प्रयास किया जाता है। ग्रामीण विकास एक ऐसी अवधारणा है जिसे समझना सहज है पर परिभाषित कर पाना उतना ही कठिन है, ग्रामीण विकास दो शब्दों का योग है ग्रामीण एवं विकास जिसका आशय गाँवों के समग्र विकास करता। एक ऐसा समुदाय जो निश्चित संख्या में ग्रामीण क्षेत्र में रहता है, गाँव कहलाता है। ग्रामीण विकास को मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग करके गाँवों का सर्वांगीण विकास करने के अवधारणा के रूप में हम समझ सकते हैं।

पी0सी0 माथुर के अनुसार[2], ''ग्रामीण'' एक प्रकार की गुणवत्ता अथवा एक प्रकार की संस्कृति है, जबकि ''विकास'' एक प्रक्रिया है, जिसके विभिन्न बदलते आयाम अलग से चिह्नित किये जा सकते हैं एवं इसके आर्थिक प्रयास अंतर्विषयात्मक योग्य हो सकते हैं।

वर्ल्ड बैंक ने ग्रामीण विकास को परिभाषित करते हुए लिखा है कि– ग्रामीण विकास ग्रामीण क्षेत्रों का निवास करने वाले गरीब लोगों विशेषतः छोटे एवं सीमांत कृषक, भूमिहीनों एवं मजदूर वर्ग की आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने की एक व्यूह रचना है।

राबर्ट चेम्बर्स[3], ''एक विशेष समूह को विशेषतः ग्रामीण गरीब महिलाओं, कमजोर एवं पिछड़े वर्गों को सामर्थ्यवान एवं सबल बनाने हेतु जो सामयिकी अपनाई जाती है, जिसमें जीवन के लिए आवश्यक साधन एवं लाभ पहुँचाने हेतु ग्रामीण विकास प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

एन्समिंगर के अनुसार[4], ''ग्रामीण विकास एक प्रक्रिया के रूप में परम्परागत अभिमुखित सांस्कृतिक बदलाव से विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता एवं अनुकूलन से आने वाला परिवर्तन है।''

लेले के अनुसार[5], ''ग्रामीण विकास ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले जनसंख्या के जीवन स्तर प्रतिमानों में अपेक्षित बदलाव विशेषतः गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों को इस प्रक्रिया से सामर्थ्यवान बनाता है।

एम0एस0शाह के अनुसार[6], ''शहरी क्षेत्रों से बाहर रहने वाली जनता अर्थात् ग्रामीणों के जीवन स्तर में अच्छी तरह से सुधार लाना और उनके सामाजिक ढ़ाँचे का विकास करना ही पूर्णरूपेण ग्रामीण विकास प्रक्रिया है।

जी0पार्थ सारथी के अनुसार[7], ''ग्रामीण विकास से आशय गरीबों के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग से उनके जीवन स्तर में सुधार करने से है। इसके पूँजी एवं तकनीक का अच्छा उपयोग एवं गरीबों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

उपयुक्त परिभाषाओं से हम ग्रामीण विकास को एक ऐसी सुव्यवस्थित प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं। ग्रामीण लोगों की आय स्तर को उच्च करके उनके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक व्यवहार में मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तन लाना है।

ग्रामीण विकास की अपरिहार्यता :

ग्रामीण से ही भारत का विकास सम्भव हो सकता है। क्योंकि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है एवं भारत की 70 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर है। कृषि के विकास हेतु ग्रामीण विकास सहायक है ग्रामीण विकास के माध्यम से ही ग्रामीणों में सहायक रोजगार जैसे– पशुपालन, दुग्ध, व्यवसाय, ऊन उद्योग, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन, मत्सय पालन, सामाजिक वानिकी का विकास करके बेरोजगारी को कम किया जा सकता है। ग्रामीण विकास के द्वारा ही ग्रामीण लोगों में व्याप्त बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा, स्वास्थ एवं चिकित्सा जैसे मूलभूत सुविधाओं में वृद्धि की जा सकती है।

ग्रामीण विकास का एक राजनीतिक पहलू भी है। ग्रामीण विकास के द्वारा ही ग्रामीण क्षेत्रों में फैली उदासीनता को कम करके राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया जा सकता है। राष्ट्रीय चेतना की भावना उत्पन्न हो जाती है तो वहाँ के लोग राजनीति में रूचि लेने लगते हैं। राजनीतिक परिपक्वता के लिए वातावरण तैयार होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे लोग अपनी हक एवं जरूरतों के प्रति सजग होते है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में हर वर्ग के लोगों को विकास होता है।

ग्राम्य रूपांतरण की अवधारणा :

'रूपांतरण' शब्द का आशय है 'स्वरूप परिवर्तन' से है। हम इसको किसी स्थान के भौगोलिक तत्त्वों के स्वरूप, गुण, संरचना, संगठन एवं कार्यविधि में आने वाले अंतरतत्त्व में परिवर्तन के रूप में समझ सकते हैं। 'रूपांतरण' शब्द के अर्थ में ही 'परिवर्तन' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। किन्तु दोनों शब्दों के अन्तर्निहित भावों में सूक्ष्म अंतर है। वस्तुतः गोचर–अगोचर तत्त्वों के गुण एवं स्वभाव इत्यादि में बदलाव आकर उनके स्थान पर भिन्न गुणों को स्थानापन्न होना तो 'परिवर्तन' कहलायेगा जबकि 'रूपांतरण' के तत्त्वों में समग्र स्थानापन्नता का भाव न होकर उसमें सातत्य या गत्यात्मक प्रक्रिया का भाव समाहित होता है। काल की क्रमिक गति के साथ तत्त्वों में रूपान्तरण होता रहता है जिसकी परिणति तत्त्वों में 'परिवर्तन' के रूप में होती है। इस प्रकार हम 'रूपांतरण' एवं 'परिवर्तन' परस्पर एक–दूसरे के पूरक के रूप में हम समझ सकते हैं। रूपातंरण एवं परिवर्तन को एक–दूसरे से भिन्न नहीं किया जा सकता परिवर्तन में भी रूपांतरण के समान भाव अन्तर्निविष्ट है। 'रूपांतरण' को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में माना जा सकता है, जिसमें पूर्व स्थापित संरचनाओं, स्वरूपों, गुणों, संगठनों, संस्थाओं, क्रियाकलापों एवं जीवन मूल्यों इत्यादि में अनवरत परिवर्तन भौतिक–सांस्कृतिक परिदृश्यों का अभ्युदय होता रहता है।

रूपांतरण शब्द का शाब्दिक अर्थ 'रूप परिवर्तन' है। अर्थात् रूपांतरण का अभिप्राय किसी मूर्त–अमूर्त तत्व के रूप एवं धर्म बदलकर भिन्न–भिन्न गुणों की स्थापना या एक तत्त्व के स्थान पर दूसरे तत्त्व को स्थानापन्न करना है। इसमें निरन्तरता अथवा गत्यात्मकता सन्निहित है।

ग्राम्य रूपांतरण एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है, जिसमें कोई भी ग्राम्य–अधिष्ठान तद्स्थापित तकनीकी तंत्र एवं मानव समुदाय के मध्य होने वाली पारस्परिक अंतक्रियाओं द्वारा सर्वांगीण परिवर्तन की विविध अवस्थाओं से होकर गुजरती है। रूपांतरण की दर स्थान, काल सापेक्ष होती है। जिस पर गत्यात्मकता,

भौतिक दशाओं एवं सरचनाओं का प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः विकासपूर्ण निर्धारित लक्ष्यों तथा मानवीय कल्याण एवं सुख–समृद्धि की दिशा में हुए सकारात्मक वृद्धि एवं परिवर्तन से ही परिभाषित होता है। संकल्पनात्मक रूप से रूपांतरण को विकास को एक प्रक्रिया माना जा सकता है। विकास अपने व्यापक रूप में एक ओर जहाँ भौतिक सुख–सुविधाओं एवं समृद्धि से युक्त होता है। वही दूसरी ओर मानव के शारीरिक एवं मानसिक सुख एवं स्वास्थ मनोवैज्ञानिक स्तरोन्नयन, चिंतन के स्तर, पर्यावरण परिज्ञान तथा स्वास्थ्य समाज एवं संस्कृत के भाव से परिपूर्ण होता है। अतः गाँवों के विकास के स्तर दिशा एवं गति को समझने के लिए तथा भावी योजना निर्माण हेतु यह परमावश्यक है कि 'रूपांतरण' की प्रक्रिया, प्रकृति एंव दिशा को भली–भाँति समझकर यथोचित नियंत्रण किया जाए।

प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य सरकार द्वारा 2014 के बाद संचालित की गई योजनाओं के सन्दर्भ में रूपांतरण को देखने का प्रयास किया गया है–

- 25 सितंबर, 2014 को प्रधानमंत्री जी द्वारा सहज बिजली हर घर योजना की शुरूआत की गयी। इसका उद्देश्य ग्रामीण के साथ–साथ शहरी क्षेत्रों में भी देश के सभी घरों के विद्युतीकरण सुनिश्चित करना है।

- मिशन इंद्र धनुष योजना दिसंबर 2014 में प्रारम्भ किया गया। इसका उद्देश्य वर्ष 2024 तक कम से कम 90 प्रतिशत बच्चों का सम्पूर्ण टीकाकरण करना है। जानलेवा बीमारियों से बचाव के लिए नियमित टीकाकरण चरणों के दौरान छूट गए और टीकाकरण से वंचित रह गए उन बच्चों एवं महिलाओं का पूर्ण टीकाकरण करना है।

- 28 अगस्त, 2014 को भारत में बैकिंग समावेशन के उद्देश्य से प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय राजधानी में प्रधानमंत्री जन–धन योजना का प्रारम्भ किया गया। योजना का व्यवहारिक उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के बैंक खाते खोलना एवं उनको सीधे जन योजनाओं से जोड़कर बिचौलियों की भूमिका का पूर्णतः समाप्त करना।

- भारत के विनिर्माण उद्योग को बढ़ाने के उद्देश्य और भारत के एक निवेश स्थल के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से 25 सितंबर 2014 को मेक इन इंडिया का शुरूआत किया गया।

- राष्ट्रीय गोकुल मिशन की शुरूआत 28 जुलाई 2014 को हुई। इसका उद्देश्य स्वदेशी पशु नस्लों का विकास और संरक्षण करना है।

- 28 अगस्त 2014 को भारत में बैंकिग समावेशन के उद्देश्य से प्रधामनंत्री द्वारा राष्ट्रीय राजधानी में प्रधानमंत्री जन धन योजना का प्रारम्भ किया गया।

- माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा 22 जनवरी, 2015 को हरियाणा के पानीपत नामक स्थान में बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं योजना का प्रारम्भ किया गया। इस योजना का परम उद्देश्य बालिकाओं को शिक्षा और सुरक्षा को निश्चित करते हुए विद्यार्थी चयन में लैंगिक भेद को पूर्णतया समाप्त करना है।

- मेरा गाँव मेरा गौरव योजना का प्रारम्भ 2015 एक नई योजना प्रारम्भ की गई जिससे गाँव तक वैज्ञानिक खेती की प्रभावी एवं गहरी पहुँच के लिए कृषि विश्वविद्यालयों एवं आई0सी0ए0आर0 के सभी संस्थानों के कृषि विशेषताओं को शामिल किया जा रहा है।

- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का प्रारम्भ 01 जुलाई, 2015 को किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्रति बंद अधिक फल इसके तहत सूक्ष्म (Micro Irrigation) को बढ़ावा दिया जा रहा है। अन्य उद्देश्य में सिंचाई में निवेश एकरूपता लाना, हर खेत को पानी के तहत कृषि योग्य बनाना है।

- प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना का प्रारम्भ 01 मई, 2016 को श्रमिक दिवस के अवसर पर उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में इस योजना का शुभारंभ किया गया। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को रोकते हुए गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं को निःशुल्क गैस कनेक्शन उपलब्ध कराना है।

- स्टार्ट–अप–इंडिया का प्रारम्भ 16 जनवरी, 2016 को एकल लाइसेंसी विंडो सिस्टम को प्रारम्भ किया गया। इसका उद्देश्य व्यापारिक अनुभूतियाँ जल्दी और एक ही खिड़की पर प्रदान की जा सके। बिचौलियों की भूमिका का पूर्णतः समाप्त किया जा सके और सरकार की भूमिका केवल नीति निर्माण तक ही सीमित रहे।

- प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) योजना का प्रारम्भ 20 नवंबर 2016 को आगरा में हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य बेघर और कच्चे मकानों में रह रहें, ग्रामीण लोगों को पक्का मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का प्रारम्भ 13 जनवरी 2016 को किया गया इसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक आपदाओं, कीट और वेगों के परिणामस्वरूप अधिसूचित फसल में से किसी की विफलता की स्थिति में किसानों को बीमा कवरेज और वित्तीय सहायता प्रदान करना है। कृषि में किसानों की सबल प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए उनकी आय को स्थायित्व देना है।

- उदय योजना का प्रारम्भ 05 नवंबर 2017 को किया गया। जिसका उद्देश्य राज्यों में सस्ती और सुलभ 24X7 उपलब्ध कराने में डिस्कॉम कम्पनियों की वित्तीय सहायता करने का ध्येय है।

- आजीविका ग्रामीण एक्सप्रेस योजना का प्रारम्भ 2017 में किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्वयं सहायता समूह पिछड़े इलाकों में सड़क परिवहन सुविधाओं का विकास करना है। इस योजना का दीन–दयाल अन्त्योदय योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के हिस्से के रूप में एक उपयोजना है।

- कृषक समृद्धि योजना का प्रारम्भ 27 मार्च, 2018 को मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के नेतृत्व वाली उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य के किसानों की आय वर्ष 2022 तक दो गुनी करन के लिए कृषक समृद्धि योजना का गठन किया है। 'कृषक समृद्धि आयोग' के अध्यक्ष स्वयं मुख्यमंत्री होंगे जबकि प्रदेश के कृषि मंत्री नीति आयोग के सदस्य इसके उपाध्यक्ष होंगे।

- आयुष्मान योजना का प्रारम्भ 23 सितम्बर 2018 को शुरू किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य 05 लाख प्रतिवर्ष चिकित्सा बीमा कवर है। आयुष्मान योजना के अंतर्गत मरीज को अस्पताल में भर्ती होने के बाद अपने बीमा का दस्तावेज देना होगा। इसके आधार पर अस्पताल उपचार के व्यय के बारे में बीमा कम्पनी को सूचित कर देगा और बीमार व्यक्ति के दस्तावेज के पुष्टि होते ही बिना पैसा दिये जा सकेगा।

- मुख्यमंत्री व्यापारी दुर्घटना बीमा योजना का प्रारम्भ 23 मई, 2018 को उत्तर प्रदेश द्वारा वाणिज्य कर विभाग में पंजीकृत व्यापारियों के लिए लागू मुख्यमंत्री व्यापार दुर्घटना बीमा योजना के अंतर्गत प्रदत्त राशि के 5 लाख रूपये से बढ़ाकर 10 लाख रूपये किये जाने के कार्योत्तर स्वीकृति प्रदान की गयी है। बढ़ी हुई बीमा की राशि 29 अक्टूबर 2017 से प्रभावी है।

- सम्पूर्ण योग ग्राम के तहत हर परिवार के एक सदस्य नियमित रूप से योग करने वाला होगा।

केन्द्रीय आयुष मंत्रालय ने अंतराष्ट्रीय योग दिवस 21 जून से पहले देश भर के 500 गाँवों को 'संपूर्ण योग ग्राम' बनाने का अभियान शुरू किया है।

प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान (PMSMA) इस योजना की शुरूआत 04 नवम्बर, 2019 को आयोजित की गई। इसका उद्देश्य हर महीने की 09 तारीख को सभी गर्भवती महिलाओं को प्रसव पूर्व देखभाल निःशुल्क पैसा प्रदान करना है।

- किसान सम्मान निधि योजना का प्रारम्भ 24 फरवरी, 2019 के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने गोरखपुर स्थित फर्टिलाइजर फैक्ट्री मैदान में आयोजित जनसभा में किसान सम्मान निधि योजना का शुभारम्भ किया गया। किसानों के बैंक खाते में योजना की पहली किस्त रूप में 2–2 हजार रूपये डिजिटल स्थानान्तरित किया। इस योजना के अंतर्गत 02 हेक्टेयर तक को भूमि वाले किसानों को प्रति किसान प्रतिवर्ष 06 हजार रूपये 2–2 हजार रूपये 03 किश्तों में मिलेंगे।

- मुख्यमंत्री जन–आरोग्य अभियान 01 मार्च 2019 को उत्तर प्रदेश मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा मुख्यमंत्री जन आरोग्य अभियान का शुभारम्भ किया। इस अभियान के अंतर्गत गरीबी रेखा के नीचे जीवन याजन करने वाले (BPL) ऐसे लोग लाभान्वित होंगे जो आयुष्मान भारत योजना से लाभान्वित नहीं है।

- वृद्धावस्था पेंशन योजना की शुरूआत 11 जून, 2019 को किया गया। उत्तर प्रदेश द्वारा वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत 60–70 वर्ष की आयु के लाभार्थियों को प्रदत्त राशि का प्रति लाभार्थी 400 रूपये प्रतिमाह से बढ़ाकर 500 रूपये करने का निर्णय किया गया। यह व्यवस्था 01 जनवरी, 2019 से ही लागू है। यह योजना राष्ट्रीय सामाजिक सहायता के अंतर्गत संचालित है। इस 500 रूपये की राशि में 300 रूपये राज्यांश और 200 रूपये केद्रांश शामिल है।

- मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजना की शुरूआत उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री कन्या–सुमंगला योजना की शुरूआत की। इस योजना का उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या पर अंकुश व उनके विकास के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना है। यह सहायता बालिका के जन्म से लेकर उसकी उच्च शिक्षा तक समय–समय पर दी जायेगी।

- प्रधानमंत्री फलस बीमा योजना – 09 मार्च, 2019 को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना प्रारंभ किया गया तथा पुनर्गठित मौसम आधारित फसल बीमा योजना को वर्ष 2019–20 एवं आगामी वर्षों के लिए खरीफ एवं रबी के मौसम में लागू किया गया था।

- बाबा साहब अम्बेडकर रोजगार प्रोत्साहन योजना की शुरूआत 11 नवंबर, 2019 को शुरू किया गया एवं उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ग्राम विकास विभाग द्वारा संचालित अंबेडकर विशेष रोजगार योजना का नाम परिवर्तित कर बाबा साहब अंबेडकर रोजगार प्रोत्साहन योजना रखे जाने हेतु मंजूरी प्रदान की गई।

- आत्मनिर्भर कृषक समन्वित विकास योजना 02 सितंबर, 2021 को इस योजना की शुरूआत की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य कृषि एवं सहवर्ती क्षेत्रों में रोजगार अवसरों मं वृद्धि तथा राज्य के प्रत्येक विकास खण्ड में कृषक उत्पादक संगठनों के गठन की प्रक्रिया में तेजी लाना है।

निष्कर्ष एवं प्रभाव :

प्रस्तुत शोध पत्र ''ग्रामीण रूपांतरण में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की भूमिका : एक विश्लेषण'' तथ्यात्मक विश्लेषण से पता चलता है कि केन्द्र या राज्य सरकारों द्वारा विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से गाँवों में निवासरत लोगों की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से रूपातंरण दृष्टिगत हो रहे हैं। केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा संचालित योजनाओं के क्रियान्वयन से ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले विशेषकर गरीब तबकों के जीवन में गुणात्मक रूपांतरण घटित होते प्रतीत हो रहे हैं। रोजगारपरक कार्यक्रमों के संचालन से अब ग्रामीण तबका शहरों की तरफ प्रवास कम कर रहे हैं अब उन्हें गाँवों में ही अपने श्रम का उचित मूल्य मिल पा रहा है। स्वास्थ्य, शिक्षा, देखभाल, स्वच्छ, पानी और आर्थिक अवसरों आदि जैसी बुनियादी सेवाओं का लाभ राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा संचालित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों द्वारा ग्रामीण जनता को भरपूर रूप से प्राप्त हो रहा है।

सन्दर्भ सूची :

1. वर्ल्ड बैंक : पावर्टी, रिडक्शन हैण्डबुक, वांशिगटन, 1992
2. माथुर, पी0सी0, ''रूरल डवलपमेंट इन इण्डिया'', द फस्ट फोर्टी इमर्स एण्ड बिमीण्ड, उद्धृत सी0एम0जैन एवं टी0 कामन पृ0 33
3. एन्समिंगर, डी0 : ''रूरल डवलपमेंट : व्हाट इप इट, प्रेजेन्टेड इन ईस्ट : वेस्ट सेन्टर्स कान्फ्रेंस आन इन्टीग्रेटेड कम्युनिकेशन फार रूरल डवलपमेंट, होनोलुलु, 1974
4. उमा लेले : ''द डिजाइन ऑफ रूरली डवलपमेंट'', लेसन्स फ्राम अमेरिका, जान हापकिन्स, बालरीमार, 1975
5. चितलगी, बी0एम0 : ''ग्रामीण विकास का सैद्धांतिक पक्ष'', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, मार्च 1991, पृ0 27
6. पार्थ सारथी जी0 : ''कान्सेप्ट थ्योरिटिकल बेस एण्ड कॉन्ट्रडिक्शन'',उद्धृत सी0एम0चौधरी, पृ0सं0 3

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

कथा साहित्य में शिवमूर्ति

अवनीश राय,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज आजमगढ़।

सारांश

समकालीन कथाकारों में शिवमूर्ति एक ऐसे कथाकार हैं, जिसने उत्तर भारतीय समाज के जनजीवन की समग्रता को अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में समेटा है। उनका साहित्य अमूर्त सत्ता से जोड़ने वाला है। उनकी रचनाओं का परिवेश जमीनी वातावरण से जुड़ा है। उनका साहित्य ग्रामीण जीवनशैली से ओत–प्रोत है।

शब्द कुंजीः– ग्रामीण, स्त्री, कहानी, मानवीयता, भौतिकवादी, साम्प्रदायिकता, परिवर्तन।

प्रस्तावनाः–

सामाजिक उत्थान को स्वर देना किसी लेखक या कलाकार के लिए सबसे आवश्यक तत्व है। लेखन का सारा मर्म उत्थान के लिए ही होना चाहिए। वह लेखन कैसा होगा जिससे किसी समाज का पतन हो, हम सोच भी नहीं सकते। लेखक का मूल मकसद यथार्थ को चित्रित करते जाना ही नहीं बल्कि जो किसी समाज की पीड़ा है वहां का दुःख–दर्द है, उसे पाठको के बीच ले जाकर उससे परिचित कराना भी है। परिचय की इस कड़ी में पाठक उस दर्द को महसूस करता है। किसी कृति को पढ़ने से सर्वप्रथम पाठक का हृदय द्रवित होता है। उसके भीतर से एक बदलाव की चिनगारी फूटती है। पाठक उसी समाज का हिस्सा होता है जहाँ की परिस्थितियां किसी रचना की मूल होती हैं। पाठक अपने संवेदनात्मक स्तर से भी सामाजिक उत्थान में सहयोग करता है।

शिवमूर्ति ने ग्रामीण समाज के उत्थान को लेकर ही अपना सम्पूर्ण लेखन किया है। वह सामाजिक न्याय की बात करते हैं, वह एक समतामूलक समाज का सपना देखते हैं, जिसमें स्त्रियां भी मनुष्य समझी जाती हों, जहां दलितों से कोई भेदभाव न होता हो, जहां दो मज़हबों में आपसी भाईचारा बना रहे, वह किसानों, मजदूरों, श्रमिकों की मानवीय गरिमा को कायम रखने का स्वप्न देखते हैं। वह लेखन में समाज देखते हैं, हमेशा उसके उत्थान की बात करते हैं।

वह अपनी हर कहानी में स्त्रियों के उत्थान की बात जबरदस्त तरीके से उठाते हैं। उनके कथा के केन्द्र में स्त्रियों का दुख–दर्द समाया हुआ है। अपने एक लेख में वह लिखते हैं कि ''**ग्रामीण परिवेश में स्त्रियों की दशा हमेशा दयनीय रही है। दमन और शोषण झेलने में तो उनकी स्थिति घर में ही दलितों जैसी है। मजदूर या श्रमजीवी जातियों की स्त्रियों की तो पूरे परिवार में थोड़ी बहुत हैसियत भी रहती थी लेकिन सवर्णों के घरों की स्त्रियों को तो बाहर निकलने तक की मनाही रहती थी। उन्हें दिशा मैदान के लिए बाहर जाना हो तो अंधेरा होने का इंतजार करना पड़ता। गर्मी के महीने में भी घूंघट निकाल चादर ओढ़कर निकलने का विधान था। छोटे से आंगन में हांथ का पंखा झालते हुए, छोटे बच्चों की देख संभाल के बीच रात काटनी पड़ती थी। उसी के बीच में कभी कभार पति सुख के लिए भी मौका निकालना पड़ता था। आज भी स्थिति में बहुत परिवर्तन नहीं आया।**

शिवमूर्ति की चिंता इसी बदलाव को लाने की है। वह स्त्रियों के नारकीय जीवन की विडम्बनाओं को कथा के माध्यम से पाठकों के बीच लाते हैं। वह अनेक उत्थान की कल्पना करते हैं, ऐसे अमानवीय जीवन पर चिंता जाहिर करते हैं और वर्षों से आ रही इस तरह की सामंती परिपाटी का तख्ता पलट करना चाहते हैं। शिवमूर्ति ने स्त्री पक्षों पर हर तरह से कलम चलाई है। वह स्त्री विमर्श के चलताऊ मुहावरों में नहीं उलझते। वह अपने कथा को विमर्शों के खांचे में नहीं फिट करते। उनके यहाँ स्त्री मुक्ति की एक जरूरी छटपटाहत दिखाई देती है। जो कहीं से थोपी या काल्पनिक नहीं लगती है। उनके यहाँ स्त्री कारूणिक, मार्मिक बनकर ही नहीं रह जाती है बल्कि वह बहुत प्रमाणिकता से उनके प्रतिरोधी स्वर को अपनी कहानियों में दर्ज करते हैं।

शिवमूर्ति यथार्थ की परत दर परत पकड़कर उसका बहुत बारीक और दिलचस्प चित्रण करते हैं। वैसे उनकी कहानियों में कोई संदेश मूलक या निष्कर्ष नहीं होते पर ग्रामीण जीवन के दुःख–सुख और उनके जीवन के अनेक रंगो को घोलकर एक कोलाज प्रस्तुत करते हैं। स्त्री, दलित, गरीब, वंचित, अल्पसंख्यक आदि यथार्थ को आधार बनाकर उनके दुःख–सुख को कथा का अंग बनाते हैं। वह मानवीयता के पक्ष में खड़े होकर सामाजिक उत्थान की बात करते हैं। अनेको विपरीत परिस्थितियों के बीच जीवन में रस और उमंग तलाश लेना यह उनके कथा साहित्य की एक खास विशेषता है।[1]

उदात्त मनुष्यता की तलाश

शिवमूर्ति किसी खास वर्ग या पात्र के प्रति कोई खास सहानुभूति नहीं दिखाते हैं। वह अपने लेखन में हर वर्ग की क्षुद्रताओं को देखते हैं, वह बिना यह जाने की कौन पात्र किस वर्ग, जाति या विचारधारा से आता है, उसकी गरिमा को बचाए रखने का हर संभव यत्न करते हैं। शिवमूर्ति के पात्रों में उदात्त मनुष्यता असाधारण तरीके से आती है। शिवमूर्ति अपने पात्रों को सत्य के ठोस धरातल पर खड़ा करते हैं जहां मनुष्यता और मानवीयता होती है। यह पात्रों की उदात्तता ही है, जो रचनाओं को महान बनाती है। कोई भी रचना यदि प्रतिशोध, प्रतिक्रिया या घृणा का प्रचार–प्रसार करती दिखाई पड़े तो वह महान रचना नहीं हो सकती है। शिवमूर्ति के दलित पात्रों में भी प्रतिशोध का यह रूप नहीं दिखाई देता है। यदि वह किसी अपराध में शामिल हो तो उन्हें उसको स्वीकार करना भी आता है, जो उनकी उदात्तता को अभिव्यक्त करता है, ऐसी जगह पर उदात्तता यहां प्रकट होती है। यह शिवमूर्ति की एक रचना में नहीं है, बल्कि अलग–अलग कहानियाँ और उपन्यासों में यह कई बार देखने को मिल जाती है।

शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों और उपन्यासों के पात्रों की उदात्तता से हमारा परिचय कराया है। वह एकबारगी देखने में बहुत कमजोर, लाचार, हताश दिखते हैं पर अपने संवादों और साहस के चलते पाठकों के मन में खुद–ब–खुद संवेदना का भाव उत्पन्न कर जाते हैं। चाहे वह 'तिरिया चरित्तर' की 'विमली' हो, 'केशर–कस्तूरी' की 'केशर', 'ख्वाजा ओ मेरे पीर' की 'मामी', कसाईबाड़ा' की 'शनिचरी' 'अकालदण्ड' की 'सुरजी' या 'आखरी छलांग' के 'पहलवान' ये सभी पाठक के मन में हमेशा के लिए दर्ज हो जाते हैं। यह दर्ज इसलिए हो जाते हैं क्योंकि यह न्याय की बात करते हैं, यह भले रही अभावों, संघर्षों में जीवन काट लें लेकिन इनका आत्मसम्मान इनकी मनुष्यता को सहेजे रखता है। ''चरित्रों की खूबियां उजागर करना उसे जीवंत बनाए रखना इनके कथा क्षेत्र की प्रमुख विशेषता है।[2]

भौतिकवाद, आंतरिक चेतना और सामाजिक परिवर्तनः–

भौतिकवाद एक ऐसा दार्शनिक सिद्धान्त है जिसमें जड़ को मूल सत्ता और भौतिक सुखों को जीवन का आत्यांतिक लक्ष्म मानता है। पारिभाषिक रूप में भौतिकवाद का अर्थ इस रूप में माना जाता ाहै– **'वह दार्शनिक सिद्धान्त जो भौतिक पदार्थ को किसी रूप में प्राथमिक माने। भौतिकवाद मानसिक व आस्तिक**

सत्ताओं को तो बिल्कुल ही अस्वीकार करता है या उन्हें भौतिक पदार्थ के ही सूक्ष्म रूप स्वरूप समझता है।[3] दुनिया के निर्माण में दार्शनिक मतों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दार्शनिक सिद्धान्तों की ही कसौटी पर हम वर्तमान जीवन–शैली, आपसी सम्बन्धों, मनुष्य–प्राणियों और प्रकृति के बीच के आये अंतर्सबन्धों को कसते हैं। हम जीवन पद्धति की मूल प्रवृत्तियों को पकड़कर इस तरह की पड़ताल करते हैं।

वर्तमान समय और समाज पूरी तरह से बाजार की जकड़ में है। साम्राज्यवाद, बाजारवाद और उपभोक्तावाद की अतियों के कारण आज दुनियां की अधिकांश जनसंख्या विनाश के चौराहे पर खड़ी है। इन सब के केन्द्र में भौतिकवाद ही है, भौतिकवाद दर्शन का यही सिद्धान्त है कि यही जीवन एकमात्र जीवन है, मृत्यु के साथ सभी कुछ नष्ट हो जाना है इसलिए इसी जीवन में अधिक से अधिक भौतिक सुखों का उपभोग कर लेना चाहिए। राजीव बोरा कहते हैंः– **''विश्व की भौतिकवादी व्याख्या और समाज तथा भौतिक जीवन की व्यवस्था और प्रगति हिंसा के विविध रूपों में विस्फोट द्वारा अपनी सीमा रेखा खींच रही है।**[4]

भौतिकवाद ने आज त्रासदी का रूप ले लिया है। अर्थ, लोलुपता, पद–प्रतिष्ठा, सत्ता, विकास इन्हीं के इर्द–गिर्द आज का मनुष्य नाच रहा है। भौतिकवाद में अपने भौतिक सुखों को सर्वोपरि माना जाता है। आज ध्यान से देखें तो स्वार्थ सिद्ध ही जीवन का चरम आदर्श बनता चला जा रहा है।

भौतिकवादी तत्व मीमांसा वर्तमान त्रासदियों की सबसे ठोस वजह है। इस सिद्धान्त में भूत को मूल तत्व माना जाता है। चेतना उसी के साथ उत्पन्न और समाप्त हो जाती है। जब चेतना को गौण माना जाने लगता है। तब शरीर प्रधान हो जाता है। आज के समय में यही हो रहा है। शरीर के सुख के लिए प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन हो रहा है। भौतिकवादी तत्वमीमांसा का यह तार्किक प्रतिफल है। आज जो भौतिकवादी तत्तमीमांसा के दुष्परिणाम सामने हैं उन्हें इस रूप तक लाने के लिए विज्ञान भी कम जिम्मेदार नहीं है। प्रकृति पर विजय पाने के लिए पर्यावरण को ताक पर रख दिया गया। आज मनुष्यों के सामने जीवन का संकट सबसे बड़े संकट के रूप में विद्यमान है।

मौजूदा संकट के कई तार भौतिकवाद से जुड़े हैं। भौतिकवाद सिर्फ भौतिक सुखों को सत्य मानता है इसके चलते विकास का एकमात्र आधार भौतिक समृद्धि को जाना जाने लगता है। शरीर के सुख को ही हर तरह की सफलता से जोड़ दिया जाता है। आत्मिक उपलब्धि, आंतरिक चेतना की कहीं कोई बात ही नहीं होती है। भौतिकवादी समय और समाज में जो आत्मबोध, आत्मिक आनन्द की बात करता है उसे अंधविश्वासी और पिछड़ा मान लिया जाता है। वर्तमान समय में इसी दौड़ में आगे बढ़ रहा है। हर व्यक्ति अपनी इच्छाओं को बढ़ाता चला जा रहा है। सुख–सुविधा और विलासिता को जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग मान लिया गया है। ऐसे समय में चेतना हाशिए पर चली जाती है। लोगों को अपने भीतर झांकने का समय नहीं मिलता। मानवीय मूल्यों का दिन–प्रतिदिन क्षरण हो रहा है। लोलुपता और अर्थ–पिपाशा ने मानवीय मूल्यों की अनिवार्य चीजों को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया है।

शिवमूर्ति के लेखन का समय वही है जो दौर भूमंडलीकरण का है। उदारीकरण, निजीकरण और उपभोक्तावाद ने मनुष्य को अपनी जड़ों से उखाड़ने का काम किया है। इन्होंने ऐसे कहानियां और उपन्यास लिखे हैं जिसमें इक्कीसवीं सदी के भयानक संकट और चुनौतियों की तरफ इशारा है। वह ग्रामीण परिवेश को विशेषतः उसके अन्तर्सम्बन्धों को, जीवन की विवशता के साथ टूट जाने वाली चीजों को व्यक्त करते हैं।[5]

धार्मिक अन्धविश्वास और जागरूकता :–

साम्प्रदायिकता एक विकृत मानसिकता है जो राजनीति के चलते ज़हर की तरह फैलती है। साम्प्रदायिक दलों एवं संगठनों का इसके विस्तार में बहुत योगदान होता है। ऐसे संगठनों की सांगठनिक

क्षमता बहुत मजबूत होती है, वह कम पढ़े–लिखे लोगों को अपने संगठन में शामिल करते हैं उन्हें अपने हिसाब से मोड़ते हैं। धार्मिक अंधविश्वासों को ये लोग हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। एक धार्मिक समुदाय के सदस्य अपने विचारों को स्वच्छ और दूसरों के विचारों को लगातार गलत सिद्ध करने में लगे रहते हैं। इसमें एक–दूसरे की निन्दा से लेकर तमाम गलतफहमियों और अंधविश्वासों को माध्यम बनाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज के भीतर अमन–चैन की जगह वैमनस्यता का विस्तार होता है। इस तरह से साम्प्रदायिक तनाव को भड़काने के लिए पहले वह अपने हिस्से के लोगों का ध्यान इस ओर खींचते हैं फिर धर्म–जाति के नाम पर उन्हें लगातार उकसाया जाता है। इस तरह से इसका नेतृत्व गलत हाथों में चला जाता है–त्रिशूल उपन्यास के शास्त्री जी ऐसे अनुयायी के रूप में सबके सामने आते हैं। वह हिन्दुओं के अनुयायी बन जाते हैं। धार्मिक अंधविश्वासों को बढ़ा–चढ़ाकर प्रचार–प्रसार करते हैं। प्रचार–प्रसार भी ऐसा कि एक समय के लिए तो लगता है कि यही सच है।

शिवमूर्ति ने साम्प्रदायिकता के पैर पसारने की पूरी कथा अपने उपन्यास त्रिशूल में कही है। उत्तर भारत की राजनीति ने किस तरह से साम्प्रदायिकता की पीठ पर अपने सवारी की और कितने समय से इसकी तैयारी की जा रही थी, वह उसे बहुत ही यथार्थ और विश्वसनीय रूप से कथा के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं साम्प्रदायिकता और धार्मिक कटुता को फैलाने का सबसे कारगर तरीका है अनजानापन, अफवाह और अंधविश्वास। शिवमूर्ति ने समाज की इन घातक स्थितियों को बहुत साफ–साफ और विश्वसनीय तरीके से कथा में विस्तार दिया है।[6]

बदलते ग्राम की छवियाँ

बहुसंख्य भारत गांवो में बसता है। आजादी के बाद के भारतीय ग्रामीण समाज में जो परिवर्तन हो रहा है, वह परिवर्तन हिंदी कथा साहित्य में भी दिखाई पड़ता है। हिंदी कथाकारों ने अपने कथानक के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बदलावों को भरपूर दिखाने का प्रयत्न किया है। उदारीकरण, बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के बाद गांव का दृश्य अचानक से बदला, इन बदले हुए दृश्यों का चित्रण समय–समय पर हिंदी कथाकारों ने अपने–अपने ढंग से किया है।

समकालीन ग्रामीण समाज भी विभिन्न तरह की अपसंस्कृतियों की गिरफ्त में है। इन सबके चलते गांव का सामाजिक परिदृश्य अचानक से बदला है। इन सबके चलते गांव की कई अच्छी चीजों का विघटन हो रहा है। संवेदनाएं क्षीण हो रही हैं। नैतिकता दिन प्रतिदिन ध्वस्त होती दिखाई दे रही है। **''भूमण्डलीकरण एवं बाजारीकरण है पारिवारिक सम्बन्ध को भी बदल दिया हैं शिक्षित और सभ्य लोगों के लिए माता–पिता और अपने बच्चों की देखभाल के लिए समय नहीं है।**[7]

शिवमूर्ति बदलते ग्राम की मनोदशा दिखाते हैं। वह ग्रामीण समाज की सिर्फ वही सादगी और आदर्शों वाली मूर्ति नहीं प्रस्तुत करते हैं, बल्कि इस उपभोक्तावादी दौर में ग्रामीण समाज की बदलती मनोदशा को बहुत मनोयोग से दिखाते हैं। अपने कथा साहित्य के माध्यम से शिवमूर्ति ने बदले हुए समाज की मनोदशा को चित्रित किया है। एक सेवा समाज जिसके अपने आदर्श और मूल्य हुआ करते थे। वह अपने सम्पूर्ण लेखन में ही इन बदलावों को पकड़ लेने के लिए आतुर दिखते हैं।

शिवमूर्ति अपने कथा साहित्य में ग्रामीण परिवर्तनों को परत–दर–परत खोला है। इनके कथा साहित्य की नारी पात्र बहुत सबल रूप में सामने आई है। 'सिरी उपमा जोग' कि 'सिरी' जो अपने पति को अधिकारी बनाने में हर संभव मदद करती है, लेकिन वही पति सफलता पाने के बाद उसके त्याग को भूलकर दूसरी शादी कर लेता है। शिवमूर्ति ने इस बदली हुई मनोदशा को दिखाया है। एक समय था जब

ग्रामीण समाज के अपने कुछ आदर्श होते थे, जिनमें मानवीयता होती थी। वह आज जिस रूप में बदल रहा है उन्हीं बदली हुई ध्वनियों को शिवमूर्ति पकड़ते हैं।

शिवमूर्ति अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज के इन बदलते रूपों को प्रदर्शित करते हैं। उन्हीं को अपने कथा का विषयवस्तु बनाते हैं। शिवमूर्ति की 'बनाना रिपब्लिक' 'ग्राम पंचायत' को विषय वस्तु बनाकर लिखी गई कहानी है। पंचायतों के चुनाव में किस तरह की अवसरवादिता, छल–छद्म हावी हो रहे हैं, इस प्रवृत्ति को इन्होंने बहुत निर्मम तरीके से दर्शाया है। यह कहानी उस सामंती समाज की हकीकत कहती है जो स्वतंत्रता के बाद से ही, भारतीय राजनीति में अपने वर्चस्व को बनाए रखने की कोशिश में लगी हुई है।

शिवमूर्ति ने इस कहानी से पूरे उत्तर भारत के पंचायती चुनाव के गुण–गणित और समीकरणों का पर्दाफाश किया है। ऊँची जातियों के लोग सत्ता अपने हाथों से खिसकने नहीं देना चाहते। संविधान चाहता है हर वर्ग का प्रतिनिधित्व हो। इन्होंने यह दिखाने की कोशिश की है कि बदलाव ऐसे ही शुरू होते हैं अब दलित भी अपने अधिकारों को समझने लगे हैं। दलितों के भीतर भी एक कुलीन वर्ग तैयार हो गया है। वह भी सवर्णों जैसी शैली अपनाना चाहता है। सवर्ण लोगों ने भले ही अपने मातहतों को चुनाव में खड़ा किया हो पर जैसे ही वह चुनाव जीतते हैं, वह उन कुचक्रों से निकल भागते हैं।[7]

शिवमूर्ति अपने कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन को सिर्फ उस रूप में प्रस्तुत नहीं करते जिस रूप में ग्रामीण जीवन अब तक कथा में आता रहा है। अधिकतम कथाकार ग्रामीण जीवन की मोहकता और सादगी को अपने कथा का हिस्सा बनाते रहे हैं। शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं को पाठकों के सामने लाये और बदलते परिदृश्य में ग्रामीण जीवन की बदलती छवियों को भी बहुत यथार्थ रूप में वह पाठकों के सामने लाने का यत्न करते हैं।

वर्तमान ग्रामीण जनजीवन का चित्रण

शिवमूर्ति का सम्पूर्ण रचना कर्म गंवई संवेदना पर आधारित है। उन्होंने अपनी रचनाओं का केन्द्र गांव को बनाया है। वह गंवई संस्कृति, वहां की भाषा, परिवेश और वहां के संवाद को बहुत ठसक के साथ अपनी कथा में भी पिरोते हैं। न केवल मनुष्य बल्कि जीव–जन्तु, पशु–पक्षी, खेत–खलिहान, बाग, पोखर, नदी–नाले आज भी उसी जीवंतता के साथ उनकी कथा का हिस्सा हो जाते हैं। उनके पास ग्रामीण यथार्थ को पकड़ने की बहुत सूक्ष्म दृष्टि है।

आधुनिक संदर्भो में ग्रामीण परिवेश पर नजर डालने पर पता चलता है कि वहां भी बहुत तरह का बदलाव आया है। व्यक्ति, परिवार और सामाजिक सम्बन्धों में भी बहुत तरह का ह्रास देखने को मिलता है। भूमण्डलीकरण और बाजारवादी दौर की कमियां गांव में भी अपना पांव पसार रही है। शिवमूर्ति सिर्फ ग्रामीण वातावरण और संकटों का अंकन भर नहीं करते वरन अपने लेखन के माध्यम से इस नए–नए विघटन को भी बराबर रेखांकित करते रहते हैं। ये ग्रामीण समाज में व्याप्त दुखों–तकलीफों, शोषण, अन्याय और अभावों को गहराई से महसूस करते हैं। संवेदनात्मक रूप से इनका सारा लेखन इसी की प्रतिक्रिया है। वह अपने लेखन से शोषित–पीड़ित आम जन की चिंता और सरोकारों से स्वयं को जोड़ लेते हैं।

शिवमूर्ति की सारी कहानियाँ ग्रामीण समाज से सीधे जुड़ी हैं। वह ग्रामीण जीवन की विडंबना, भुखमरी, अभाव और अभिशाप के रूप में हमारे सामने आती हैं। वह ग्रामीण जीवन की जटिलताओं पर भी ठहर कर सोचते हैं उसके ज्यों का त्यों लिखने में जरा सा गुरेज नहीं करते। 'कसाईबाड़ा' कहानी ग्राम पंचायत के भ्रष्टनीति को बहुत बेबाकी से उजागर करती है। इस कहानी की मुख्य पात्र 'शनिचरी' है। वह प्रधान और भ्रष्ट तंत्र से लड़ने के लिए सामने आती है। यह कहानी उस समय की है जब राजनीतिक रूप से भी दलितों के भीतर सुगबुगाहट हो रही थी। यह वही समय है जब उत्तर भारत के दलित राजनीति में

मायावती और कांशीराम जैसे नेताओं का उदय होता है। एक तरफ यह कहानी दलितों में आ रही प्रतिरोधी चेतना को रेखांकित करती है तो दूसरी ओर दलित राजनीति की महत्वाकांक्षाओं पर भी सवाल खड़ी करती है।

'कसाईबाड़ा' से लेकर 'कुच्ची के कानून' तक जो परिदृश्य शिवमूर्ति के यहां दिखाई देता है, वह समकालीन भारतीय ग्रामीण जीवन का यथार्थ रूप है। इन्होंने अपनी रचना में ग्रामीण जीवन के परिदृश्य को पिरो दिया है। भाषा उनके यहां अपने लोकरंग में दिखाई देती है। उन्होंने हिंदी वाक्य संरचना को पात्रों, उनकी मनःस्थितियों, स्थान और वातावरण आदि के रूप में व्यक्त किया है। बीच–बीच में कोई लोकगीत या मुहावरा, भाषा के संवेदना और उनकी गंवई पृष्ठभूमि को और मजबूत बनाता है।

उनके यहां ग्रामीण जीवन का प्रमाणिक चित्र है। चालीस वर्षों के उनके रचना संसार को पढ़कर हम ग्रामीण समाज की मुकम्मल हकीकत का सामना कर सकते हैं। उन्होंने ग्रामीण समाज के ऐसी–ऐसी कथाओं को उठाया है कि जिसमें उनका समय दिखता है। शिवमूर्ति ने अपने समय और समाज को दर्ज किया है। केवल दस कहानियां और तीन उपन्यास लिख कर वह हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। शिवमूर्ति हमारे समय के उन कहानीकारों में से एक हैं जिन्हें अपनी कहानियों के कथ्य के लिए नहीं भटकना पड़ता। गंवई जीवन से अटूट रूप से जुड़े शिवमूर्ति के पास कथक्कड़ी का अकूत भंडार है। जिन्होंने भी अपने जीवन में कभी ना कभी गांव का जीवन जिया है, उसका आस्वाद लिया है, वे इस बात को अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

शिवमूर्ति की कहानियां और उनके उपन्यास गांव और शहर के बढ़ते अंतराल की कहानी भी है। अस्सी के दशक से लेकर वर्तमान ग्रामीण समाज का समय उनके समूचे रचना संसार में दर्ज है। जब गांव में बहुत कुछ तेजी से बदल रहा है तब शिवमूर्ति की रचनाएं और महत्वपूर्ण हो जाती है। वह अपने कथा लेखन के माध्यम से ग्रामीण समाज के स्याह पक्षों पर कलम चलाते हैं। इसमें सरकारी स्तर पर सिर्फ आभासी विकास दिखाया जाता है पर इनका लेखन जमीनी स्तर की बात उठाता है, और वह बताता है कि इस चमचमाहट की सच्चाई कुछ और ही है। उनका लेखन परिदृश्य और विकास के पैमाने की सही से जाँच करता है और उन समस्याओं संघर्षों तक हमें लेकर जाता है। जिसका रास्ता हमारे लिए जानबूझकर बंद कर दिया जाता है। उनका सम्पूर्ण लेखन ग्रामीण समाज की वास्तविक समस्याओं से टकराता है।[8]

निष्कर्ष

शिवमूर्ति महान कथाकार प्रेमचन्द के बाद गाँव, गरीबी, स्त्री, दलित और कृषक जीवन का चित्रण करने वाले कथाकार हैं। इनका व्यक्तित्व, कृतित्व तथा इनकी साहित्य लेखन वर्तमान समय में महत्वपूर्ण स्थान रखता है इनकी नौ–दस कहानियां जो विशिष्ट पहचान बनाती है। कम लिख कर अधिक ख्याति प्राप्त करने वाले शिवमूर्ति अवध क्षेत्र के महान कथाकार हैं इनकी कहानियां पाठक वर्ग को आकर्षिक करनें के साथ–साथ कई बहसों को भी जन्म देती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. लताः ग्लोबल युग का किसान लेख, संवेद पत्रिका, सं. पंकज शर्मा, फरवरी–अप्रैल 2014 अंक, दिल्ली, पृष्ठ 189
2. चन्द्रकला त्रिपाठीः दाम्पत्य के अद्भुत और जीवट पूर्ण की लय लेख, संवेद पत्रिका, सं. पंकज शर्मा, फरवरी–अप्रैल 2014 अंक, दिल्ली, पृष्ठ 51
3. मानविकी पारिभाषिक कोशः दर्शन खण्ड, संस्करण ई–पुस्तकालय, पृष्ठ 113
4. सच्चिदानन्द सिन्हाः इक्कीसवी सदी का समाजः संभावना व चुनौती, वागर्थ पत्रिका, भारतीय भाषा परिषद कोलकाता, अंक–74, सितम्बर–2001, पृष्ठ 74
5. राणा प्रतापः ग्रामीण यथार्थ का दस्तावेज लेख, इंडिया इनसाइड, साहित्यिक वार्षिकी 2016, पृष्ठ 18
6. दुर्गा प्रसाद गुप्तः प्रतिरोध का परिप्रेक्ष्य और मिथकीय चेतना का प्रश्न लेख, लमही पत्रिका, सं. विजय राय, अक्टूबर–दिसंबर 2012, लखनऊ, पृष्ठ 12
7. अरूण होताः नारी, दलित और सत्ता, संवेद पत्रिका, सं. पंकज शर्मा, फरवरी–अप्रैल 2014 अंक 73–75, दिल्ली, पृष्ठ 18
8. संजीवः कबिरा तेरा झोपड़ा गलकटन के बीच लेख, लमही पत्रिका, सं. विजय राय, अक्टूबर–दिसंबर 2012 अंक, लखनऊ, पृष्ठ 138

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम पर शोध अध्ययन का महत्व

नीतू सिंह
शोध छात्रा – समाजशास्त्र
राजा श्रीकृष्ण दत्त पी.जी. कॉलेज जौनपुर।

सारांश – *''जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम पर आधारित यह शोध अध्ययन दर्शाता है कि योजना ने मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में सुधार लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संस्थागत प्रसव, प्रसव पूर्व देखभाल, और नवजात सेवाओं की पहुँच में वृद्धि हुई है, विशेषकर ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में। इससे मातृ और शिशु मृत्यु दर में कमी आई है। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि योजना की सफलता के बावजूद जागरूकता की कमी, संसाधनों की अनुपलब्धता और स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता जैसी कई चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं। शोध से प्राप्त निष्कर्ष नीतिगत सुधारों, सेवा वितरण की रणनीतियों और भविष्य की योजनाओं के निर्माण में सहायक हैं। इस प्रकार यह अध्ययन न केवल वर्तमान योजना की समीक्षा करता है, बल्कि इसे अधिक प्रभावी और समावेशी बनाने के लिए ठोस आधार भी प्रदान करता है।''*

कुंजी भूत शब्द– जननी एवं शिशु सुरक्षा, मातृ मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर, संस्थागत प्रसव, पारंपरिक प्रथाएं

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाना है। इस संदर्भ में शोध अध्ययन का महत्व कई दृष्टिकोणों से बेहद अहम हैः

1. योजना के उद्देश्यों की पूर्ति का मूल्यांकन – शोध अध्ययन योजना के उद्देश्यों की पूर्ति का मूल्यांकन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, विशेष रूप से यह समझने में कि जननी सुरक्षा योजना अपने मुख्य लक्ष्यों, जैसे मातृ मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर को कम करने में कितनी सफल रही है। यह अध्ययन उन तथ्यों और आंकड़ों के माध्यम से यह आकलन करता है कि योजना का क्रियान्वयन किस हद तक लक्षित परिणामों तक पहुँच पाया है और क्या इन प्रमुख स्वास्थ्य संकेतकों में सुधार हुआ है।

इस मूल्यांकन के जरिए योजना की सफलता के साथ–साथ उसकी कमियों को भी उजागर किया जाता है। उदाहरण के लिए, योजना का प्रभाव किस क्षेत्र में अधिक और किस क्षेत्र में कम दिखाई दिया, इसे समझने में मदद मिलती है। इस तरह का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि योजना के विभिन्न घटक जैसे संस्थागत प्रसव, वित्तीय सहायता, और स्वास्थ्य सेवाएँ किस हद तक लाभकारी रही हैं और कहां सुधार की आवश्यकता है।

इस मूल्यांकन से प्राप्त निष्कर्ष यह सुनिश्चित करने में मदद करते हैं कि भविष्य में इस योजना को अधिक प्रभावी बनाने के लिए किस प्रकार की रणनीतियाँ अपनाई जाएं। यह योजनाओं के सुधार, लक्ष्यों की पुनः परिभाषा, और बेहतर क्रियान्वयन के लिए जरूरी कदमों को समझने में सहायक होता है।

2. कार्यक्रम के प्रभाव का आकलन – जननी सुरक्षा और शिशु कार्यक्रम के प्रभाव का आकलन यह विश्लेषण करता है कि योजना के तहत प्रदान की जा रही संस्थागत प्रसव, प्रसव पूर्व देखभाल, और नवजात शिशु देखभाल सेवाओं ने कितनी सकारात्मक प्रभावी भूमिका निभाई है। इस शोध में यह देखा जाता है कि इन सेवाओं के लाभ से महिलाओं और शिशुओं की स्वास्थ्य स्थिति में कितना सुधार हुआ है। उदाहरण के तौर पर, संस्थागत प्रसव में वृद्धि, प्रसव पूर्व देखभाल के दौरान महिलाओं को बेहतर जानकारी

और चिकित्सा सुविधाएँ मिलना, और नवजात शिशु की देखभाल में सुधार, ये सभी संकेत करते हैं कि योजना ने मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को बढ़ावा दिया है।

इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि समाज के विभिन्न वर्गों, विशेष रूप से पिछड़े और ग्रामीण क्षेत्रों में योजना का क्या प्रभाव पड़ा है। इन क्षेत्रों में सामान्यतः स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सीमित होती है, और जननी सुरक्षा योजना ने इन बाधाओं को कम करने में मदद की है। योजना के तहत, इन क्षेत्रों में महिलाओं को संस्थागत प्रसव के लिए प्रेरित किया गया है और उन्हें बेहतर प्रसव पूर्व देखभाल और नवजात देखभाल सेवाएँ प्रदान की गई हैं।

इस प्रकार, शोध यह स्पष्ट करता है कि योजना ने केवल शहरी क्षेत्रों के बजाय ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच को बढ़ाया है, जिससे महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है।

3. समस्याओं और बाधाओं की पहचान– जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम के तहत समस्याओं और बाधाओं की पहचान के लिए किए गए शोध अध्ययन से यह पता चलता है कि किन क्षेत्रों में जागरूकता की कमी है। कई समुदायों में महिलाएँ और परिवार जननी सुरक्षा योजना के लाभों और उपलब्ध सेवाओं के बारे में पूरी तरह से नहीं जानते, जिससे वे इसका फायदा नहीं उठा पाते। यह जागरूकता की कमी विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में अधिक देखने को मिलती है, जहां लोग स्वास्थ्य सेवाओं के महत्व और योजना के तहत मिलने वाली सुविधाओं के बारे में कम जानकारी रखते हैं।

इसके अलावा, यह शोध यह भी पहचानता है कि योजना का लाभ लेने में सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक बाधाएँ क्या हैं। उदाहरण के लिए, कुछ समुदायों में पारंपरिक प्रथाएँ और सांस्कृतिक मान्यताएँ महिलाओं को संस्थागत प्रसव या आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं के उपयोग से रोक सकती हैं। आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँचने में समस्या हो सकती है, खासकर यदि यात्रा करने या अस्पताल में उपचार प्राप्त करने के लिए संसाधनों की कमी हो।

यह अध्ययन स्वास्थ्य सेवा वितरण तंत्र में मौजूद खामियों को भी उजागर करता है, जैसे स्वास्थ्यकर्मियों की कमी, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, और स्वास्थ्य सेवाओं में गुणवत्ता की कमी। इन समस्याओं के कारण योजना का प्रभाव सीमित हो सकता है और इसके उद्देश्यों की पूर्ति में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इन खामियों और बाधाओं की पहचान के बाद, सुधार की दिशा में कदम उठाए जा सकते हैं, ताकि योजना को अधिक प्रभावी और समावेशी बनाया जा सके।

4. नीतिगत सुधार के लिए दिशानिर्देश– जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम के तहत किए गए शोध अध्ययन से प्राप्त साक्ष्य नीतियों और योजनाओं में सुधार के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं। इन साक्ष्यों के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि किस प्रकार की रणनीतियाँ और तरीके अधिक प्रभावी रहे हैं, और किस क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी विशेष क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच कम है या जागरूकता की कमी है, तो यह जानकारी नीतिगत निर्णयों को दिशा देने में सहायक हो सकती है।

यह शोध सरकार और स्वास्थ्य संगठनों को कार्यक्रम के क्रियान्वयन में अधिक प्रभावी तरीके से सहायता प्रदान करता है। साक्ष्य के आधार पर, वे योजना के क्रियान्वयन के दौरान आने वाली समस्याओं को ठीक करने के लिए लक्षित सुधारात्मक कदम उठा सकते हैं। इसके माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को प्रभावी तरीके से पूरा किया जाए और इसके लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुँचें।

इसके अतिरिक्त, यह जानकारी नीति निर्माताओं को यह संकेत देती है कि भविष्य में स्वास्थ्य कार्यक्रमों को कैसे डिजाइन किया जाए, ताकि वे स्थानीय जरूरतों के अनुरूप हों और समग्र रूप से समाज के स्वास्थ्य में सुधार कर सकें। इस प्रकार, शोध अध्ययन न केवल मौजूदा योजनाओं को बेहतर बनाने में मदद करता है, बल्कि यह नए और अधिक प्रभावी स्वास्थ्य कार्यक्रमों के निर्माण में भी सहायक होता है।

5. भौगोलिक और जनसांख्यिकीय प्रभावों का विश्लेषण– जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम का भौगोलिक और जनसांख्यिकीय प्रभावों का विश्लेषण यह पता लगाने में मदद करता है कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और सामाजिक–आर्थिक समूहों पर योजना का क्या असर पड़ा है। यह अध्ययन यह समझने में सहायक होता है कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यक्रम का कार्यान्वयन और प्रभाव अलग–अलग हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और संसाधनों की कमी हो सकती है, वहां योजना का प्रभाव शहरी क्षेत्रों की तुलना में अलग हो सकता है। इस प्रकार, भौगोलिक अंतर से यह साफ होता है कि योजना के प्रभाव को स्थानीय संदर्भ के हिसाब से समझना और लागू करना आवश्यक है। साथ ही, अनुसूचित जाति, जनजाति, और अन्य पिछड़े वर्गों पर इसका विश्लेषण समाज में असमानताओं को दूर करने में सहायक होता है। इन वर्गों में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से कई प्रकार की बाधाएँ होती हैं, जो उन्हें स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित रख सकती हैं। अनुसूचित जाति और जनजाति जैसे पिछड़े वर्गों में विशेष रूप से पारंपरिक प्रथाएँ, जागरूकता की कमी, और आर्थिक संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ देखने को मिलती हैं। इस शोध के माध्यम से यह समझा जाता है कि योजना इन वर्गों में कैसे प्रभावी हो रही है, और क्या इसे इस तरह से डिजाइन किया जा सकता है कि यह असमानताओं को कम कर सके और इन वर्गों तक स्वास्थ्य सेवाएँ अधिक सुलभ हो सकें।

इस प्रकार, भौगोलिक और जनसांख्यिकीय विश्लेषण यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि योजना का लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुँच सके और स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण में समानता लाई जा सके।

6. स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार– राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम) के तहत स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार से संबंधित शोध यह जानकारी प्रदान करता है कि संस्थागत प्रसव और अन्य स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार की कितनी आवश्यकता है। शोध के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि जबकि संस्थागत प्रसव में वृद्धि हो रही है, इसकी गुणवत्ता पर भी ध्यान देना आवश्यक है, ताकि सुनिश्चित किया जा सके कि महिलाओं और शिशुओं को उपयुक्त और उच्च गुणवत्ता वाली देखभाल मिल रही है। इससे यह पता चलता है कि कुछ क्षेत्रों में बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर अपेक्षाकृत कम हो सकता है, और उसे सुधारने की जरूरत है।

इसके अलावा, यह शोध चिकित्सीय उपकरणों, कर्मचारियों की उपलब्धता, और बुनियादी ढाँचे की स्थिति को समझने में मदद करता है। यह जानकारी यह दर्शाती है कि क्या स्वास्थ्य केंद्रों और अस्पतालों में आवश्यक चिकित्सा उपकरण और संसाधन उपलब्ध हैं, ताकि प्रसव और नवजात देखभाल जैसी सेवाएँ प्रभावी ढंग से प्रदान की जा सकें। इसके साथ ही, यह अध्ययन स्वास्थ्य कर्मचारियों की संख्या और उनकी प्रशिक्षित क्षमता पर भी फोकस करता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सेवाएँ उच्च मानकों पर प्रदान की जा रही हैं।

इस प्रकार, स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता को समझने के लिए यह शोध महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है, जिससे भविष्य में बेहतर नीति निर्माण और कार्यान्वयन के लिए कदम उठाए जा सकते हैं।

7. जनजागरूकता रणनीति का विकास– राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम) के तहत जनजागरूकता रणनीति का विकास शोध अध्ययन के माध्यम से यह पता चलता है कि लक्षित समुदायों तक योजना की जानकारी पहुँचाने के लिए कौन से माध्यमों का उपयोग किया जाना चाहिए। यह अध्ययन विभिन्न संचार माध्यमों का विश्लेषण करता है, जैसे रेडियो, टीवी, पंचायतों, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के माध्यम से, और डिजिटल मीडिया का उपयोग। यह जानकारी प्राप्त करने में मदद करती है कि किस माध्यम से योजना के लाभों को अधिक प्रभावी तरीके से जनसंख्या तक पहुँचाया जा सकता है, खासकर ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में जहां सूचना का प्रसार सीमित हो सकता है

इसके अलावा, यह अध्ययन योजना के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ाने और जागरूकता फैलाने में भी मदद करता है। योजना के लाभ और उद्देश्य के बारे में लोगों को सही जानकारी देने से उनके बीच विश्वास उत्पन्न होता है, जिससे वे योजना का अधिक लाभ उठाने के लिए प्रेरित होते हैं। जागरूकता अभियान के जरिए महिलाओं और परिवारों को समझाया जा सकता है कि संस्थागत प्रसव, प्रसव पूर्व देखभाल, और नवजात शिशु देखभाल जैसी सेवाएँ उनके स्वास्थ्य के लिए कितनी महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, जनजागरूकता रणनीति का सही तरीके से विकास और कार्यान्वयन यह सुनिश्चित करता है कि योजना का लाभ अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे, विशेष रूप से उन समुदायों तक जो स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति अनजान या संकोचशील हो सकते हैं।

8. भविष्य की योजनाओं के लिए मार्गदर्शन– जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम (श्रैल) पर आधारित शोध अन्य स्वास्थ्य कार्यक्रमों और योजनाओं के विकास और क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह शोध विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है, जैसे कार्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक संसाधन, चुनौतियाँ, और बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए रणनीतियाँ। इसके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि किन कदमों से कार्यक्रम के प्रभाव को बढ़ाया जा सकता है, और किस प्रकार की सुधारात्मक नीतियाँ अन्य स्वास्थ्य योजनाओं में लागू की जा सकती हैं। इससे भविष्य में न केवल श्रैल बल्कि अन्य समान स्वास्थ्य योजनाओं को भी अधिक प्रभावी तरीके से लागू किया जा सकता है।

इसके अलावा, यह सुनिश्चित करता है कि भविष्य की योजनाएँ अधिक प्रभावी और समाज के अनुकूल हों। शोध के निष्कर्षों से यह पता चलता है कि समाज के विभिन्न वर्गों की जरूरतें और उनके स्वास्थ्य संबंधी मुद्दे क्या हैं। यह जानकारी नीति निर्माताओं को यह समझने में मदद करती है कि भविष्य में बनाई जाने वाली योजनाओं को किस प्रकार समावेशी, समाज के अनुकूल, और स्थानीय संदर्भों के अनुरूप बनाया जा सकता है, ताकि वे अधिकतम लाभ प्रदान कर सकें। उदाहरण के लिए, योजना के अंतर्गत आने वाले सेवा वितरण, जागरूकता कार्यक्रम, और क्षेत्रीय स्वास्थ्य व्यवस्थाओं के सुधार के लिए संभावित उपायों पर विचार किया जाता है। इस प्रकार, JSY पर आधारित शोध भविष्य की स्वास्थ्य योजनाओं को बेहतर, प्रभावी और समाज के लिए उपयुक्त बनाने में सहायक होता है।

9. सामाजिक और आर्थिक प्रभाव का मूल्यांकन– राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम) का सामाजिक और आर्थिक प्रभाव का मूल्यांकन शोध के माध्यम से यह समझने में मदद करता है कि योजना ने लाभार्थियों के आर्थिक और सामाजिक जीवन में क्या सकारात्मक बदलाव लाए हैं। जब महिलाओं को संस्थागत प्रसव और बेहतर प्रसव पूर्व देखभाल मिलती है, तो उनका स्वास्थ्य बेहतर होता है, जिससे उनके परिवार और समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ महिलाओं और शिशुओं के लिए बेहतर स्वास्थ्य परिणामों के कारण, परिवारों में चिकित्सा खर्च में कमी आती है, और उन्हें लंबे समय तक कार्य

क्षमता बनी रहती है। इसके अलावा, सुरक्षित मातृत्व के कारण महिलाएँ समाज में अधिक सक्रिय भूमिका निभाती हैं, जिससे उनके आर्थिक योगदान में वृद्धि होती है।

यह शोध यह भी दिखाता है कि सुरक्षित मातृत्व और शिशु स्वास्थ्य के लिए किस प्रकार का समर्थन आवश्यक है। स्वस्थ मातृत्व और शिशु देखभाल सुनिश्चित करने के लिए केवल चिकित्सा सेवाओं का ही नहीं, बल्कि सामाजिक समर्थन, जागरूकता, और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से, गरीब और पिछड़े क्षेत्रों में महिलाओं और परिवारों को इस समर्थन की अधिक आवश्यकता होती है। योजना में आर्थिक सहायता, मुफ्त चिकित्सा सेवाएँ, और उचित परामर्श जैसी सेवाओं को शामिल करके इन समुदायों तक पहुँचने में मदद मिलती है। यह सुनिश्चित करता है कि महिलाएँ सुरक्षित प्रसव कर सकें और शिशु स्वास्थ्य के लिए जरूरी देखभाल प्राप्त कर सकें, जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार होता है और समाज में असमानताओं को कम किया जा सकता है।

10. लक्ष्यों की दीर्घकालिक निगरानी और सुधार– राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम) के लक्ष्यों की दीर्घकालिक निगरानी और सुधार के लिए शोध अध्ययन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अध्ययन दीर्घकालिक दृष्टिकोण से योजना की प्रगति और इसके सतत प्रभावों को मापने में सहायक होता है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि योजना के उद्देश्यों को समय के साथ पूरा किया जा रहा है। शोध से यह जानकारी मिलती है कि किन क्षेत्रों में योजना सफल रही है और किन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। यह दीर्घकालिक डेटा एकत्र कर यह दिखाने में मदद करता है कि किस प्रकार योजना का समाज पर असर पड़ा है, खासकर मातृ और शिशु स्वास्थ्य के संदर्भ में।

इसके अलावा, यह अध्ययन निगरानी तंत्र के निर्माण में भी सहायक होता है, जिससे योजना के सतत विकास और प्रभावशाली क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जा सकता है। निगरानी तंत्र के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि योजना के तहत सभी सेवाएँ समय पर, प्रभावी तरीके से और सभी लाभार्थियों तक पहुँच रही हैं। इसके लिए विभिन्न प्रदर्शन संकेतक, नियमित डेटा संग्रहण, और फीडबैक सिस्टम का उपयोग किया जाता है, ताकि किसी भी प्रकार की असफलता या समस्याओं का शीघ्र समाधान किया जा सके। यह तंत्र योजना के निरंतर सुधार और उसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। इस प्रकार, दीर्घकालिक निगरानी और सुधार के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम अपने लक्ष्यों को स्थायी रूप से प्राप्त कर सके।

निष्कर्ष – जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम पर आधारित शोध अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यह योजना मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की दिशा में एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली पहल है। अध्ययन के माध्यम से न केवल योजना की उपलब्धियों और सफलताओं का मूल्यांकन किया गया, बल्कि इसके प्रभाव की व्यापकता, क्षेत्रीय असमानताओं, सामाजिक और आर्थिक बाधाओं, और स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की वास्तविक स्थिति को भी समझा गया। यह शोध यह दर्शाता है कि योजना ने संस्थागत प्रसव, प्रसव पूर्व देखभाल और नवजात सेवाओं की पहुँच को बढ़ाया है, विशेषकर ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में, जिससे मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लाने में सहायता मिली है।

हालाँकि, यह भी स्पष्ट हुआ कि योजना के क्रियान्वयन में अनेक प्रकार की चुनौतियाँ और सीमाएँ मौजूद हैं, जैसे कि जागरूकता की कमी, संसाधनों का अभाव, और स्वास्थ्य सुविधाओं की गुणवत्ता में अंतर। इन समस्याओं की पहचान और समाधान की दिशा में यह शोध मूल्यवान दिशा–निर्देश प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, अध्ययन से प्राप्त साक्ष्य नीतिगत सुधारों, भविष्य की योजनाओं के निर्माण, और सेवा वितरण प्रणाली को अधिक प्रभावी और समावेशी बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

अतः यह शोध न केवल वर्तमान स्वास्थ्य योजनाओं की समीक्षा करने का एक सशक्त माध्यम है, बल्कि यह जननी एवं शिशु सुरक्षा कार्यक्रम के सतत विकास, सुधार और प्रभावशील क्रियान्वयन के लिए एक ठोस आधार भी प्रदान करता है, जिससे समावेशी और संवेदनशील स्वास्थ्य तंत्र का निर्माण संभव हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. *India. gov. in*
2. *mcu. ac. in*
3. *Satish Kumar Chauhan (2012) Impact of Janani Suraksha Yojana on Maternal Health Care in India,Publisher: LAP LAMBERT Academic Publishing*
4. *K.G. Mamta, H.R. Uma (2013) A Study of Janani Suraksha Yojana: A Scheme Under National Rural Health Mission,Publisher: LAP LAMBERT Academic Publishing*
5. *Iterative International Publishers (August 30, 2023)*
   Beyond Birth: Exploring the Transformative Effects of Janani Suraksha Yojana

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षक की भूमिका और उसका सामाजिक महत्व

डॉ. सरोज कुमार राही
असि. प्रोफेसर बी.एड. विभाग
डॉ. राजेश्वर सेवाश्रम महाविद्यालय ढिंढुई, प्रतापगढ़।

सारांश – *''यह शोधपत्र भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक की भूमिका और उसके सामाजिक महत्व पर केंद्रित है। इसमें प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक शिक्षक की बदलती भूमिका को विश्लेषित किया गया है। वैदिक काल की गुरुकुल प्रणाली, उपनिषदों का आत्मिक ज्ञान, महाकाव्यों में गुरु का चरित्र–निर्माता स्वरूप, मध्यकालीन संत परंपरा की सामाजिक समरसता, तथा आधुनिक युग में शिक्षा के माध्यम से आत्मविकास और राष्ट्र निर्माण सभी कालखंडों में शिक्षक की भूमिका को केंद्रीय माना गया है।*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में, शोध यह दर्शाता है कि शिक्षक केवल विषय विशेषज्ञ नहीं, बल्कि नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के मार्गदर्शक हैं। शिक्षक को समाज के आदर्श, परिवर्तन के सूत्रधार और जागरूक नागरिकों के निर्माता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध का निष्कर्ष यह है कि आज के व्यावसायिक शिक्षा परिवेश में भी शिक्षक का पारंपरिक आदर्श स्वरूप आज भी प्रासंगिक है और समाज के समग्र उत्थान में उसकी भूमिका अनिवार्य है।''

कुंजी भूत शब्द– चरित्र–निर्माता, सामाजिक मूल्यों, मार्गदर्शक , मानवीय मूल्यों, सहिष्णुता, समरसता,

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में गुरु को ईश्वर के समान स्थान दिया गया है। वेदों, उपनिषदों, महाकाव्यों और स्मृतियों में गुरु को जीवन के मार्गदर्शक, आचार्य और आत्मा के विकास का प्रेरक माना गया है। भारतीय समाज में शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी प्राप्त करना नहीं रहा, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण, नैतिकता, और आध्यात्मिक उन्नति भी इसका अभिन्न अंग रहा है। इन सभी आयामों में शिक्षक की भूमिका केंद्रीय रही है।

गुरुकुल व्यवस्था से लेकर आधुनिक शिक्षा प्रणाली तक, शिक्षक न केवल ज्ञान देने वाला, बल्कि समाज में सांस्कृतिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों को प्रसारित करने वाला एक सशक्त माध्यम रहा है। शिक्षक और शिष्य के संबंध को केवल औपचारिक नहीं, बल्कि आत्मीय, श्रद्धा और विश्वास से भरा माना गया है। यही कारण है कि आचार्य को 'आचार' अर्थात आचरण से शिक्षा देने वाला कहा गया है।

आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी शिक्षक की भूमिका केवल विद्यालय की चारदीवारी तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन का वाहक, राष्ट्र निर्माण का स्तंभ और युवा पीढ़ी को सही दिशा देने वाला पथप्रदर्शक है। भारतीय परंपरा में यह विश्वास सदैव रहा है कि एक सच्चा शिक्षक न केवल विषय का ज्ञाता होता है, बल्कि वह जीवन जीने की कला भी सिखाता है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक को 'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः' जैसे मंत्रों द्वारा सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक की भूमिका – भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक को अत्यंत सम्मानित स्थान प्राप्त है। प्राचीन काल से ही गुरु को जीवन मूल्यों, धर्म और आत्मबोध का मार्गदर्शक माना गया है।

1. वैदिक काल में गुरु की भूमिकाः– वैदिक काल की शिक्षा प्रणाली गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित थी। गुरुकुलों में विद्यार्थी वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, गणित, आयुर्वेद आदि का अध्ययन करते थे। गुरु निःस्वार्थ भाव

से शिक्षा देते थे और शिष्य संयम, सेवा, अनुशासन जैसे गुणों का अभ्यास करते थे। महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि इस युग के महान शिक्षक थे।

2. उपनिषदों और दर्शन शास्त्र में गुरुः – उपनिषदों में गुरु को 'तत्त्वदर्शी' कहा गया है। वह शिष्य को आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध कराता है। यहाँ ज्ञान केवल सूचना नहीं, बल्कि आत्मानुभूति है। छांदोग्य उपनिषद में उद्धालक और श्वेतकेतु का संवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

3. महाकाव्यकाल में गुरु का आदर्श स्वरूपः – रामायण और महाभारत में गुरु केवल शिक्षा देने वाले नहीं, बल्कि शिष्य के चरित्र निर्माण में सहायक मार्गदर्शक हैं। गुरु वशिष्ठ और द्रोणाचार्य जैसे आचार्य धर्म, नीति और युद्धकला के साथ जीवन के आदर्शों का भी संचार करते थे।

4. मध्यकालीन भारत में शिक्षक और संत परंपराः – मध्यकाल में शिक्षा का स्वरूप भक्ति और अध्यात्म की ओर बढ़ा। संत कबीर, गुरु नानक, रैदास और सूफी संतों ने गुरु को ईश्वर तक पहुँचाने वाला सेतु माना। इस युग में गुरु आत्मिक जागरण और सामाजिक चेतना का प्रतीक बन गया।

5. आधुनिक काल और शिक्षकों की भूमिकाः– स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद और डॉ. राधाकृष्णन जैसे विचारकों ने शिक्षा को आत्मविकास, चरित्र निर्माण और सेवा का माध्यम माना। उनके अनुसार शिक्षक समाज का निर्माता और राष्ट्र का पथप्रदर्शक होता है।

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षक की भूमिकाः – नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षक को शिक्षा प्रणाली की रीढ़ मानती है। इसमें शिक्षक को केवल विषय विशेषज्ञ नहीं, बल्कि छात्रों के नैतिक, मानसिक और सामाजिक विकास का मार्गदर्शक माना गया है। यह नीति सांस्कृतिक मूल्यों और आधुनिक कौशलों के संतुलन पर बल देती है, साथ ही शिक्षकों के सतत प्रशिक्षण और भारतीय भाषाओं में शिक्षण को प्रोत्साहित करती है।

भारतीय परंपरा में शिक्षक केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि समाज का शिल्पी और आत्मा का मार्गदर्शक है। प्राचीन गुरुकुलों से लेकर आधुनिक शिक्षा नीति तक, शिक्षक की भूमिका समय के साथ विकसित होती रही है, पर उसका मूल उद्देश्य आज भी वही है मनुष्य और समाज का समग्र उत्थान।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक की भूमिका का सामाजिक महत्व– भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक की भूमिका के सामाजिक महत्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. सामाजिक संरचना के निर्माता– प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में गुरु को अत्यंत सम्मानित स्थान प्राप्त है। उसे समाज की आत्मा और दिशा देने वाला माना गया है। एक गुरु केवल शिष्य को शिक्षित ही नहीं करता, बल्कि उसे समाज का एक उत्तरदायी सदस्य बनाता है। उसका प्रभाव केवल विद्यार्थी तक सीमित नहीं होता, बल्कि वह समूची सामाजिक संरचना को दिशा प्रदान करता है। उसके विचार, उपदेश और कार्य समाज के सोचने और जीने के तरीके को प्रभावित करते हैं।

2. नैतिकता और जीवन मूल्यों का संवाहक– भारतीय शिक्षा परंपरा में गुरु को केवल बौद्धिक ज्ञान का स्रोत नहीं माना गया, बल्कि वह नैतिकता, आदर्श और धर्म का संरक्षक भी रहा है। शिक्षक अपने आचरण, वाणी और व्यवहार से शिष्यों में धर्म, सत्य, करुणा, सहनशीलता और सेवा जैसे मूल्यों की स्थापना करता है। ये जीवन मूल्य ही किसी सभ्य और संतुलित समाज की बुनियाद होते हैं।

3. सांस्कृतिक परंपरा का संरक्षक– भारत की सांस्कृतिक परंपराएं विविध और गहन हैं, जिनमें वेद, उपनिषद, पुराण, संगीत, नृत्य, योग और आयुर्वेद जैसे अनेक विषय शामिल हैं। इनका संरक्षण और संवर्धन शिक्षकों और गुरुओं के माध्यम से ही होता आया है। वे अपने ज्ञान को परंपरागत तरीकों से अगली पीढ़ियों तक पहुंचाकर समाज की सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखते हैं।

4. सामाजिक समरसता का प्रेरक– जब समाज में भेदभाव, जात–पात और ऊँच–नीच की भावना व्याप्त हो गई थी, तब संत–कवि और शिक्षक ही ऐसे मार्गदर्शक बने जिन्होंने मानवता, समानता और प्रेम का संदेश दिया। संत कबीर, गुरु नानक, रैदास, चैतन्य महाप्रभु जैसे संतों ने समाज को जोड़ने का काम किया। इन्होंने गुरु की भूमिका को सामाजिक एकता और समरसता के विस्तार में परिवर्तित किया।

5. जागरूक और जिम्मेदार नागरिकों का निर्माण– एक शिक्षक का कार्य केवल ज्ञान देना नहीं होता, वह अपने विद्यार्थियों में राष्ट्र के प्रति कर्तव्यबोध, सामाजिक उत्तरदायित्व और जागरूकता की भावना भी विकसित करता है। शिक्षकों द्वारा तैयार किए गए विद्यार्थी भविष्य के नेता, वैज्ञानिक, लेखक, न्यायाधीश, और नीति निर्माता बनते हैं, जो समाज को प्रगति की दिशा में ले जाते हैं।

6. शिक्षा को लोकमंगल से जोड़ने वाला माध्यम– भारतीय विचारधारा में शिक्षा का उद्देश्य केवल निजी लाभ नहीं, बल्कि लोकमंगल जनकल्याण है। यह शिक्षा का अंतिम लक्ष्य माना गया है। एक सच्चा शिक्षक अपने ज्ञान का प्रयोग न केवल छात्रों के हित में करता है, बल्कि उसका उपयोग समाज की भलाई के लिए भी करता है। इसी से समाज में समग्र विकास की नींव पड़ती है।

7. परिवर्तन और नव निर्माण का सूत्रधार– समाज में जितने भी सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, उनके पीछे कहीं न कहीं शिक्षकों की भूमिका रही है। चाहे वह स्वतंत्रता संग्राम के समय लोकमान्य तिलक और रविंद्रनाथ टैगोर जैसे शिक्षकों की प्रेरणा रही हो, या आधुनिक भारत में वैज्ञानिक सोच और तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देने वाले शिक्षाविदों की कृ शिक्षकों ने हमेशा समाज के नव निर्माण में मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है।

8. सामाजिक समस्याओं का समाधानकर्ता– भारत जैसे विविधताओं से भरे देश में अनेक सामाजिक समस्याएं समय–समय पर उभरती रही हैं जैसे अंधविश्वास, बाल विवाह, जातिगत भेदभाव, अशिक्षा आदि। शिक्षकों ने अपने ज्ञान, साहस और विचारों से इन समस्याओं को चुनौती दी और समाज को जागरूक किया। उनका कार्य केवल आलोचना करना नहीं, बल्कि समाधान प्रस्तुत करना है।

9. जीवन का समग्र विकास कर्ता– भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक को केवल ज्ञान प्रदान करने वाला नहीं, बल्कि जीवन के समग्र विकास का मार्गदर्शक माना गया है। गुरु–शिष्य परंपरा में गुरु को ईश्वर के समान दर्जा प्राप्त है, जो न केवल शास्त्र का बोध कराते हैं, बल्कि आचरण, नैतिकता और आत्मबोध का मार्ग भी दिखाते हैं। यह दृष्टिकोण आज की शिक्षा प्रणाली में भी प्रासंगिक बना हुआ है, जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने आधुनिक संदर्भों में पुनःस्थापित करने का प्रयास किया है। इस नीति में शिक्षक को समाज निर्माण की धुरी के रूप में देखा गया है। वह छात्र के भीतर निहित क्षमताओं को पहचानकर उनमें नवाचार, नैतिक मूल्यों और समग्र विकास के गुणों को विकसित करने का कार्य करता है। शिक्षक को केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित न रखते हुए उसे एक ऐसी प्रेरक शक्ति माना गया है जो सांस्कृतिक विरासत को संजोते हुए वैश्विक दृष्टिकोण को भी अपनाने में सहायक होता है। नीति यह भी सुनिश्चित करती है कि शिक्षक को सतत प्रशिक्षण, स्वतंत्रता और संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ जिससे वह अपनी भूमिका का प्रभावी रूप से निर्वहन कर सके।

भारतीय भाषाओं, लोक ज्ञान और परंपरागत शिक्षण विधियों को भी शिक्षक के माध्यम से जीवंत बनाए रखने की कल्पना इस नीति में की गई है। इस प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 न केवल आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करती है, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के उस आदर्श शिक्षक को पुनर्स्थापित करने का प्रयास भी करती है जो ज्ञान, विवेक और नैतिकता से समाज का नेतृत्व कर सके।

निष्कर्ष– भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षक की भूमिका केवल ज्ञान के संप्रेषण तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास का मूल आधार रहा है। प्राचीन वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, शिक्षक को जीवन के प्रत्येक पक्ष में दिशा देने वाला मार्गदर्शक माना गया है। उन्होंने शिक्षा को केवल औपचारिक प्रक्रिया न मानते हुए उसे आत्मिक उन्नति, व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। उपनिषदों में गुरु को आत्मबोध का संवाहक माना गया, जबकि महाकाव्यों में उनका आदर्श रूप शिष्य के चरित्र निर्माण में दिखाई देता है। मध्यकाल में संत और आध्यात्मिक गुरु समाज सुधार और सामाजिक समरसता के प्रेरक बने। आधुनिक काल में शिक्षकों ने स्वतंत्रता आंदोलन, राष्ट्र निर्माण और मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से समाज को जागरूक और संगठित किया।

भारतीय समाज में शिक्षक न केवल एक शास्त्रज्ञ रहे, बल्कि वे संस्कृति के संवाहक, समाज के चिन्तक, और भविष्य के निर्माता भी रहे हैं। उन्होंने समाज को न केवल ज्ञान के माध्यम से सशक्त किया, बल्कि उसमें मानवीय मूल्यों, सहिष्णुता, समरसता और राष्ट्रभक्ति का बीजारोपण किया। आज भी जब शिक्षा को व्यावसायिकता की दिशा में ले जाया जा रहा है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा हमें यह स्मरण कराती है कि शिक्षक केवल विषय का ज्ञाता नहीं, बल्कि एक प्रेरणा–स्रोत, आदर्श और समाज परिवर्तन का आधारस्तंभ होता है। इसलिए शिक्षक का स्थान आज भी उतना ही पूज्य और आवश्यक है जितना वह प्राचीन काल में था।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. राधाकृष्णन (1994) ''उपनिषदों का चयन संग्रह'' , ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली।
2. डॉ. शर्मा रामविलास (2002) ''संत साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन'' , लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज।
2. डॉ.शर्मा महेश चन्द्र (2010), ''शिक्षा दर्शन'' लाल बुक डिपो, मेरठ
3. कपूर बद्रीनाथ ''भारतीय शिक्षा का इतिहास (नवीनतम संस्करण)' , लोकभारती प्रकाशन ,इलाहाबाद
4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (2020)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020)। नई दिल्ली
5. स्वामी विवेकानंद स्वामी विवेकानंद रचनावली (खंड 1–8), अद्वैत आश्रम कोलकाता।
6. गोपाल शास्त्री (2015), ''वाल्मीकि रामायण'' गीताप्रेस गोरखपुर।

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

भारतीय समाज और डिजिटल प्रौद्योगिकी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ.जयप्रकाश यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

भारत में डिजिटलीकरण का विकास मजबूत सूचना और संचार प्रौद्योगिकी-इंफॉर्मेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी (आईसीटी) पर आधारित है। इसका सबसे बड़ा मकसद प्रौद्योगिकी को समावेशी, किफायती, परिवर्तनकारी और सबके लिये सुलभ बनाना है। डिजिटल इंडिया, प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण-डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (डीबीटी) और शासकीय ई-बाजार-गवर्नमेंट ई-मार्केटप्लेस (जीईएम) जैसी सरकारी पहलकदमियों का उद्देश्य भारत को सक्रियता से ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था और डिजिटल तौर पर सशक्त समाज में तब्दील करना है। कम समृद्धि वाले राज्य ज्यादा समृद्ध राज्यों से बराबरी के लिये तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। इसके साथ ही भारत का डिजिटल विभाजन भी तेजी से घट रहा है। इंटरनेट ग्राहकों की संख्या में सबसे तेज वृद्धि वाले 10 राज्यों में से सात का प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद-ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट (जीडीपी) 2014 और 2018 के बीच संपूर्ण भारत के औसत से कम रहा है। इस काल में अकेले उत्तर प्रदेश में इंटरनेट के ग्राहकों की संख्या में 3.6 करोड़ का इजाफा हुआ है। यह भारत की कुल वृद्धिशील इंटरनेट ग्राहक संख्या का 12 प्रतिशत है। इसी तरह सर्वाधिक ग्राम पंचायतों में सार्वजनिक सेवा केंद्र-कॉमन सर्विस सेंटर (सीएससी) वाले चोटी के 10 में से आठ राज्यों में प्रति व्यक्ति जीडीपी संपूर्ण भारत के औसत से कम है।

वित्तीय समावेशन मौजूदा भारत में सामाजिक सुरक्षा तंत्र के केंद्र में है। प्रधानमंत्री जन धन योजना (पीएमजेडीवाई) के परिणामस्वरूप इसमें ज़बरदस्त वृद्धि हुई है। वित्तीय समावेशन के साथ ही वित्त प्रौद्योगिकी-फाइनांशियल टेक्नोलॉजी (फिनटेक) का विस्तार हो रहा है। फिनटेक ने भुगतान और लेन-देन के विभिन्न प्रकार के नये विकल्प मुहैया कराये हैं। मसलन, भीम और यूपीआई से भारतीयों के जीवन की गुणवत्ता में स्पष्ट सुधार आया है। भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम-नेशनल पेमेंट कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (एनपीसीआई) के अनुसार मार्च 2022 तक यूपीआई के जरिये 88.8 खरब रुपये केदेश में वित्तीय सेवाओं की डिलीवरी में काफी प्रगति हुई है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 2017 में प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान (पीएमजी-दिशा) को मंजूरी दी। इस अभियान का उद्देश्य छह करोड़ ग्रामीण परिवारों तक पहुंच कर गांवों में डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना है। यह विश्व का सबसे बड़ा डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम है। इसके तहत अब तक लगभग 5.78 करोड़ व्यक्तियों का दाखिला कर 4.90 करोड़ को प्रशिक्षित किया जा चुका है। तकरीबन 3.62 करोड़ उम्मीदवार इस प्रणाली के तहत प्रमाणन प्राप्त कर चुके हैं। फिनटेक यूनीकॉर्न, ऑप्टिकल फाइबर कनेक्टिविटी (भारतनेट), स्मार्ट ग्राम और सीएससी जैसे प्रयास एक अरब से ज्यादा व्यक्तियों वाले बाजार में ग्राहक अभिग्रहण का खर्च न्यूनतम स्तर पर पहुंचाने में महत्वपूर्ण रहे हैं। इन परियोजनाओं ने दूरदराज के समुदायों को अभूतपूर्व अवसर मुहैया कराये हैं। मोबाइल नेटवर्क प्रदाता स्मार्टफोन की कीमतों में तेजी से गिरावट के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों तक बेहतर कनेक्टिविटीपहुंचाने में सक्षम हुए हैं। इससे ग्रामीणों को डाटा कनेक्टिविटी और मोबाइल नेटवर्क तक तुरंत पहुंच प्राप्त हुई है।

जन धन बैंक खातों और मोबाइल फोन का मेल तथा आधार के जरिये डिजिटल पहचान की स्थापना बहुत ही उपयोगी रही है। इन कदमों से अब गरीबों के लिये लाभों को सीधे अपने बैंक खातों में प्राप्त करना संभव हो गया है। सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली-पब्लिक फाइनांशियल मैनेजमेंट सिस्टम (पीएफएमएस) के माध्यम से डीबीटी का उपयोग कर 36659 करोड़ रुपये से ज्यादा की रकम

लाखों लाभार्थियों के बैंक खातों में हस्तांतरित की जा चुकी है। कोविड-19 की वैश्विक महामारी के दौरान प्रधानमंत्री गरीब कल्याण पैकेज (पीएमजीकेपी) के तहत घोषित नकद लाभों को ज्यादातर निर्धनतम परिवारों को डीबीटी के जरिये ही सौंपा गया है।जन धन खातों, आधार पहचान प्रणाली और मोबाइल प्रौद्योगिकी के मेल से तिकड़ी बनती है। इस तिकड़ी को ग्राहकों के व्यवहारों और प्राथमिकताओं के बारे में व्यापक डाटा से जोड़ दिया जाये तो पूरी तरह से नये व्यवसाय मॉडल तैयार हो सकते हैं। ये मॉडल ग्राहक अभिग्रहण, ग्राहक सेवा, पूरक बिक्री और उन्नत विक्रय के लिये बेहद कुशल, मापनीय और सुविचारित प्रक्रियाएं प्रदान करते हैं।

देश में हाल के वर्षों में डिजिटल बैंकिंग, डिजिटल भुगतान और वित्त-प्रौद्योगिकी नवोन्मेषों की लोकप्रियता में ज़बरदस्त इजाफा हुआ है। सरकार इन उद्योगों को समर्थन देकर यह सुनिश्चित करना चाहती है कि डिजिटल बैंकिंग के लाभ उपभोक्ताओं के लिये अनुकूल ढंग से देश के हर कोने तक पहुंच सकें। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक इस लक्ष्य को आगे बढ़ाने के मकसद से भारत की आजादी की 75वीं वर्षगांठ पर देश भर के 75 जिलों में इतनी ही डिजिटल बैंकिंग इकाइयां स्थापितकरने की योजना बना रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में पारदर्शिता और जवाबदेही में वृद्धि की बदौलत देश में डिजिटल भुगतानों में काफी इजाफा हुआ है। मार्च 2020 में 29 तारीख तक यूपीआई के जरिये 5.04 अरब लेन-देन किये गये। यह फरवरी माह की तुलना में संख्या में 11.5 प्रतिशत और रकम में 7.5 प्रतिशत अधिक है। पिछले साल आधार समर्थित भुगतान प्रणाली के उपयोग से 20 खरब से ज्यादा लेन-देन किये गये।

प्रौद्योगिकी ने जीवन को आसान बनाया है। स्वास्थ्य सेवा जैसे क्षेत्रों में भी प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र के सामने चिकित्सकों की तंगी, दवाओं की अनुपलब्धता, खरीद सामर्थ्य में कमी तथा सर्वत्र प्रसार का अभाव जैसी चुनौतियां हैं। प्रधानमंत्री ने सितंबर 2021 में आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन की शुरुआत की। इसका उद्देश्य सभी भारतीयों के लिये डिजिटल स्वास्थ्य संग्रह तैयार करना है। कोविड-19 की वैश्विक महामारी के दौरान दूर-चिकित्सा का अभूतपूर्व विस्तार देखने को मिला। सितंबर 2021 के अंत तक भारत सरकार के ई-संजीवनी पोर्टल के तहत लगभग 125 करोड़ दूर-परामर्श पूरे किये गये। देश के दूरदराज के इलाकों में रहने वाले हजारों नागरिक -इस सुविधा के जरिये रोजाना अपने घरों से ही शहरों के बड़े अस्पतालों के डॉक्टरों से परामर्श हासिल करते हैं।

राष्ट्रीय ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क : सभी राज्यों में राजधानियों, जिला मुख्यालयों और प्रखंड स्तर तक ऑप्टिकल फाइबर कनेक्टिविटी मुहैया करायी गई है। देश की ढाई लाख ग्राम पंचायतों को इससे जोड़ा जा रहा है। यह काम भारत संचार निगम लिमिटेड, रेलटेल और पॉवर ग्रिड जैसेसार्वजनिक उपक्रमों के फाइबरों के उपयोग से किया जा रहा है। ग्राम पंचायतों को जोड़ने के लिए जरूरत पड़ने पर नए फाइबर भी बिछाए जा रहे हैं। ग्राम पंचायतों को डार्क फाइबर नेटवर्क से बढ़े बैंड विस्तार से लाभ होगा। इसे एनओएफएन के नाम से जाना जाएगा। इसके ज़रिए ग्राम पंचायतों और प्रखंडों के बीच कनेक्टिविटी के अंतर को खत्म किया जाएगा।

इंटरनेट कनेक्टिविटी का विस्तार : दूरदराज के ग्रामीणक्षेत्रों तक पहुँचने के लिए ब्रॉडबैंड बुनियादी ढांचे के निर्माण और विस्तार में निवेश करें। भौगोलिक बाधाओं को दूर करने के लिए उपग्रह इंटरनेट और वॉयरलेस नेटवर्क जैसी तकनीकों का उपयोग।

सार्वजनिक सेवा केंद्र : यह डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत मिशन के तौर पर चलायी जा रही एक परियोजना है। सीएससी आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं के लिए पहुंच के बिंदु के तौर पर काम करता है। गांवों और दूरदराज के इलाकों में रहने वाले नागरिक इसके ज़रिए समाज कल्याण, स्वास्थ्य, वित्त, शिक्षा, कृषि और व्यवसाय से संबंधित कार्यक्रमों और उपभोक्ता सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं। इसका देशव्यापी नेटवर्क क्षेत्रीय, भौगोलिक, भाषायी और सांस्कृतिक विविधताओं की ज़रूरतों को पूरा करता है। सार्वजनिक सेवा केंद्र सामाजिक, वित्तीय और प्रौद्योगिकीय तौर पर समावेशी समाज के निर्माण के सरकार के लक्ष्य को पूरा करने में मददगार हैं।

डिजिटल इंडिया का महत्व : भारत सरकार द्वारा संचालित इस फ्लैगशिप कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समुचित देश को डिजिटल रूप से सशक्त और ज्ञान विज्ञान के प्रति जागरूक समाज के निर्माण की दिशा में अग्रसर करना है यह बुनियादी तौर पर एक वृहद अभियान है जिसके अंतर्गत केंद्र राज्य और तमाम सार्वजनिक क्षेत्र की सेवाओं और उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं को जान सुलभ बनाने का हर संभव

प्रयास किया गया है इसमें संपूर्ण रूप से आईसीटी तकनीक का प्रयोग कर सरकार द्वारा उपलब्ध विधिक सेवाओं को जनसाधारण की पहुंच तक लाना सुनिश्चित किया गया है इतना ही नहीं सरकारी कार्यालय में किसी भी काम के लिए दस्तावेजों की कम से कम आवश्यकता पर भी इस क्रम में जोड़ दिया गया है साथ ही डिजिटल तकनीक के माध्यम से तमाम सेक्टर को आपस में जोड़ने के साथ उनके समन्वय पर भी पूरा जोर दिया गया है इस प्रकार तकनीक के माध्यम से देश के दुर्गम और दुर्दशा के इलाकों के लोगों तक सीधे सरकारी पहुंच संभोग करने की दिशा में निरंतर कार्य जारी है वैश्विक स्तर पर विकसित ही नहीं बल्कि तीसरी दुनिया के रसों में भी परंपरागत और सदियों पुरानी तकनीकियों को पीछे छोड़ते और नई तकनीकियों को अपनाने की जबरदस्त और लगी हुई है ग्लोबल विलेज की अवधारणा के कारण अब नई तकनीक को हजारों मील का फासला तय करने में पहले जितना समय लगता लगा करता था आज उसकी तुलना में कहीं कम समय में दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक टेक्नोलॉजी का प्रचार प्रचार और प्रयोग हो रहा है यह भी वास्तविकता है कि आईसीटी आधारित टेक्नोलॉजी ने इसे बढ़ावा देने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है इंटरनेट स्मार्टफोन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सेंसर मशीन लर्निंग क्लाउड कंप्यूटिंग सरीखी अत्याधुनिक तकनीक के दूध विकास से डिजिटल कारण का दौर अब चौथी प्रगति की ओर अग्रसर हो चुका है अंतरिक्ष विज्ञान प्रौद्योगिकीकरण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आयु विज्ञान इंजीनियरिंग की विविध विधाएं शिक्षा व्यापार सहित शायद ही कोई ऐसा जीवन से जुड़ा कार्य क्षेत्र बच्चा होगा जहां पर डिजिटल टेक्नोलॉजी आज के दौर में प्रचलन में नहीं है

1 **डिजिटल इंडिया कार्यक्रम:** यह देश को ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था और डिजिटल तौर पर सशक्त समाज में तब्दील करने के लिए प्रमुख पहल है। इसमें तीन आवश्यक क्षेत्र - सभी नागरिकों के लिए उपयोगिता के रूप में डिजिटल अवसंरचना, मांग पर सेवाएं तथा डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से नागरिकों का सशक्तीकरण शामिल हैं।

2 डिजिटल इंडिया भूमि रिकॉर्ड आधुनिकीकरण कार्यक्रम : इस केंद्रीय योजना का मकसद ज़मीन के रिकॉर्डों की मौजूदा समानताओं का इस्तेमाल कर एक समुचित समेकित भूमि सूचना प्रबंधन प्रणाली (आईएल आईएमएस) विकसित करना है। इसमें विभिन्न राज्य अपनी विशेष आवश्यकताओं को भी जोड़ सकते हैं।

3 डिजिटल टेक्नोलॉजी :सूचना और संचार टेक्नोलॉजी (आईसीटी) के कारण लोगों के संवाद करने, व्यापार करने और संपर्क बनाने के तरीकों में कई बदलाव आए हैं। आईसीटी क्षेत्र में रोज़गार के भरपूर अवसर हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के अनेक चुनौतीपूर्ण व्यवसाय शामिल हैं।यद्यपि इस उद्योग में बौद्धिक संसाधनों को भौतिक संसाधनों की तुलना में अधिक महत्व दिया जाता है तथापि यह उद्योग पक्षपाती नहीं कहा जा सकता है। आईसीटी का उपयोग करते हुए, पुरुषों और महिलाओं, अल्पसंख्यकों और दिव्यांग जनों को समान कार्य अवसर प्राप्त हुए हैं। डिजिटलीकरण महिलाओं को जानकारी खोजने और साझा करने, स्वास्थ्य और शैक्षिक सेवाओं तक पहुंचने, आय अर्जित करने और दूसरों के साथ मिल कर काम करने के साथ-साथ उनका पक्ष सुने जाने की क्षमता प्रदान करके लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण को आगे बढ़ा सकता है।

1 **शैक्षिक सशक्तीकरण :** शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं और किशोरियों के लिए प्रशिक्षणों को बढ़ाने और उनमें सहायता के लिए हर देश नई तकनीकों का लाभ उठा रहा है। इसमें कंप्यूटर और इंटरनेट का उपयोग करना तथा रेडियो और टेलीविजन जैसे प्रसारण मीडिया शामिल हैं। भले ही पारंपरिक घरेलू जीवन, गतिशीलता की कमी और सामाजिक-सांस्कृतिक रिवाजों के कारण शिक्षा में अभी भी कई लैंगिक असमानताएं हैं जो महिलाओं की शिक्षा के महत्व को घटाते हैं। आईसीटी फिर भी दुनिया भर में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने में लाभकारी होगी।

2 स्वास्थ्य सशक्तीकरण : वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर महिला स्वास्थ्य कार्यक्रम सूचना और संचार तकनीकों से बहुत लाभान्वित होते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में स्वास्थ्य प्रवर्तकों ने यौन और प्रजनन अधिकारों पर जनता से जुड़ी स्वास्थ्य संबंधी

जानकारी प्रसारित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का इस्तेमाल किया है। आईसीटी सामुदायिक सूचना केन्द्रों को महिलाओं को स्थानीय रूप से अनुकूलित स्वास्थ्य जानकारी प्रदान करने में सक्षम बनाती है।

3 राजनीतिकसशक्तीकरण : दुनिया भर में लोग नए नए तरीकों से आईसीटी का उपयोग नेटवर्किंग, राजनीतिक गतिविधियों और पहलों के लिए कर रहे हैं। महिलाओं और उनके संगठनों ने अपने अधिकारों की मांग के लिए रणनीतिक रूप से आईसीटी का प्रयोग किया हैं। महिलाओं के नेटवर्क हाशिए पर पड़ी महिलाओं की आवाज बुलंद करने के लिए नई तकनीक का इस्तेमाल कर रहे हैं। आईसीटी के आगमन ने उन विषयों को संबोधित करने के लिए वैकल्पिक संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) के गठन को प्रोत्साहित किया है जिन्हें पारंपरिक मीडिया द्वारा प्रभावी ढंग से संबोधित नहीं किया जाता है। इंटरनेट ने महिलाओं के दृष्टिकोण को सार्वजनिक चर्चा में प्रमुखता प्रदान की है और विभिन्न मंच महिलाओं के लिए विशेष रूप से प्रतिबद्ध हैं। आईसीटी सामाजिक और राजनीतिक सक्रियता के लिए महिलाओं के नेटवर्क को मजबूत करने, राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी का विस्तार करने, महिलाकर्मियों को उनके काम में सहायता करने और सरकार तथा उसकी सेवाओं तक -महिलाओं की पहुंच बढ़ाने में सहायता कर सकता है।

4 आर्थिक सशक्तीकरण: आईसीटी महिलाओं को आईसीटी परियोजनाओं के स्वामित्व और संचालन के अवसर प्रदान करके महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण में योगदान देता है। इसके अतिरिक्त डिजिटलीकरण महिलाओं को अपने परिवारों की देखभाल करते हुए अपने घरों से ही काम करने में सक्षम बनाता है। आईसीटी महिलाओं को अपनी मांगों की पैरवी करने और अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न गतिविधियों और पहलों में भाग लेने के लिए अनुकूल वातावरण को बढ़ावा देता है। आईसीटी वित्त और वित्तीय निर्णय लेने के मामले में आर्थिक अवसर भी प्रदान करता है। डिजिटल वित्तीय सेवाएं खाता स्वामित्व में लैंगिक विभाजन को पाटने और लेनदेन की मात्रा और मूल्य दोनों के संदर्भ में औपचारिक वित्तीय गतिविधियों को बढ़ाकर वित्तीय समावेशन को सक्षम बनाती हैं। डिजिटलीकरण में महिलाओं के वित्तीय उत्पादों और सेवाओं को पारदर्शी, सस्ती, सुलभ और योग्य बनाने के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने की क्षमता है।

कनेक्टिविटी की जरूरत : घर में बैठे 32 करोड़ छात्र-छात्राओं के बीच आर्थिक औरसामाजिक बराबरी की खाई और बढ़ गई। गाँवों में इंटरनेट, मोबाइल और लैपटॉप जैसी सुविधाओं और आवागमन के बेहतर साधनों की जरूरत पहले से ज्यादा बढ़ गई। इसे ही कुल मिलाकर कनेक्टिविटी कहते हैं। कनेक्टिविटी किस बात के लिए? शिक्षा, संवाद, विचार-विनिमय, सूचना, रोजगार, कौशल और सांस्कृतिक गतिविधियों के सेतुओं को बनाने के लिए। इसकी शुरुआत बुनियादी इंफ्रास्ट्रक्चर से होती है, पर यह केवल इंफ्रास्ट्रक्चर तक सीमित नहीं है।आर्थिक सर्वेक्षण 2021-22 के अनुसार शिक्षा विभाग के आँकड़ेवर्ष 2019-20 तक के ही उपलब्ध हैं, इसलिए महामारी से शिक्षा प्रणाली पर पड़े प्रभाव को देखने के लिए प्रथम की रिपोर्ट असर के आंकड़ों को उधृत किया गया है। इसके अनुसार कोविड 19 के कारण ग्रामीण, क्षेत्रों में बड़ी संख्या में छात्रों ने निजी स्कूलों में पढ़ाई बंद कर दी। ग्रामीण क्षेत्रों में 6-14 आयु वर्ग में गैर-नामांकित बच्चे 2021 में बढ़कर 4.6 प्रतिशत हो गए। 2018 में गैर-नामांकित बच्चों का प्रतिशत 2.5 था। यानी स्कूलों में दाखिला न पाने वाले बच्चों की संख्या करीब दोगुनी हो गई।ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में निजी स्कूल बंद भी हुए। ऐसे में सभी आयु वर्ग के बच्चे निजी स्कूलों से सरकारी स्कूलों में गए। आर्थिक सर्वेक्षण में इस बदलाव की तीन मुख्य वजह बताई गई हैं। पहली, कम लागत वाले निजी स्कूलों का बंद होना; दूसरी, अभिभावकों की आर्थिक तंगी और तीसरी वजह सरकारी स्कूलों में मुफ्त सुविधाएं और परिवारों का गाँव लौटना। निजी स्कूलों में उच्च शुल्क ने भी इस बदलाव को बढ़ाया है। इससे सरकारी स्कूलों में शिक्षक-छात्र अनुपात, कक्षा स्थान तथा शिक्षण सामग्री के मामले में अतिरिक्त सहायता की जरूरत बढ़ी है।

1 राष्ट्रीय डिजिटल शिक्षा : एनईपी 2020 द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की सुविधा के लिए, एनडीईएआर ब्लूप्रिंट को जुलाई 2021 में स्कूली शिक्षा के लिए डिजिटल बुनियादी ढांचे के रूप में लॉन्च किया गया। एनडीईईआर बिल्डिंग ब्लॉक, स्कूल शिक्षा

पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न समाधानों के लिए अपने स्तंभ का विस्तार करता है जिसमें लाइव कक्षाएं, ईटीबी से जुड़ी आदर्श सामग्री, डिजिटल पाठ्यक्रम, मल्टी चैनल चैटबॉट, सहयोग आदि शामिल हैं। एनडीईएआर के तहत कोर बिल्डिंग ब्लॉकों में से छात्र और शिक्षक रजिस्ट्री प्रमुख हैं। एनडीईएआर को कार्यात्मक बनाने से राज्यों द्वारा महान नवाचार और समाधान सुनिश्चित होंगे और व्यापक शिक्षा समुदाय का लाभ दूसरों द्वारा उठाया जा सकेगा। इस प्रकार, एक विशेष राज्य में काम करने वाले समाधान और विचार दूसरे द्वारा पुनः प्रयोज्य और पुनः कॉन्फ़िगर करने योग्य होंगे और उन्हें शून्य से शुरू करने की आवश्यकता नहीं होगी। यह भारतीय संदर्भ में प्रौद्योगिकी का लाभ उठाते हुए अभ्यास और सर्वोत्तम प्रथाओं की समुदायों तक व्यापक पहुँच की सुविधा प्रदान करेगा।

2 राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय : राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (एनडीएल) शिक्षा मंत्रालय की शैक्षिक सामग्री और संसाधनों का एक डिजिटल भंडार है। एनडीएल की मदद से, छात्रों को डिजिटल शिक्षण संसाधनों की एक व्यापक लाइब्रेरी तक पहुँच होगी, जैसे कि शोधपत्र, वीडियो, ऑडियो व्याख्यान, पाठ्यपुस्तकें और बहुत कुछ। यह डिजिटल सामग्री के विशालऔर विविध संग्रह के साथ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानविकी,सामाजिक विज्ञान सहित शैक्षणिक क्षेत्रों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करता है। चूंकि प्लेटफ़ॉर्म ओपन-एक्सेस है और उपयोगकर्ता शुल्क के बिना अपने संसाधनों तक पहुँच सकते हैं, इसलिए छात्रों, प्रशिक्षकों, शोधकर्ताओं और आम जनता सहित लोगों की एक विस्तृत श्रृंखला इन अनुदेशात्मक सामग्रियों तक पहुँच सकती है।

3 डिजिटल साक्षरता : ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के लिएजागरूकता बढ़ाने और डिजिटल साक्षरता में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कार्यक्रमों को लागू करना। इसमें बुनियादीडिजिटल कौशल ऑनलाइन सुरक्षा और जिम्मेदार इंटरनेट उपयोग सीखना शामिल है

4ऑनलाइन पढ़ाई : सर्वेक्षण में यह भी बताया गया है कि महामारी के समय जब स्कूल बंद थे, तब ऑनलाइन पढ़ाई सबसे सुरक्षित तरीका था। लेकिन यह पढ़ाई भी सभी वर्गों के बच्चों को समान रूप से हासिल नहीं हुई। निम्न श्रेणी के छात्रों को उच्च श्रेणी के छात्रों की तुलना में ऑनलाइन पढ़ाई को करना मुश्किल हुआ। स्मार्टफोन की अनुपलब्धता और नेटवर्क तथा कनेक्टिविटी के मुद्दे बच्चों के सामनेप्रमुख चुनौतियां रहीं। स्मार्टफोन की उपलब्धता 2018 में 36.5 प्रतिशत थी, जो 2021 में 67.6 प्रतिशत हो गई थी, पर निम्न श्रेणी के छात्रों को उच्च श्रेणी के छात्रों की तुलना में ऑनलाइन कार्य करने में ज़्यादा दिक्कतें थीं। फोन की उपलब्धता और कनेक्टिविटी दो बड़ी चुनौतियाँ रहीं।महामारी ने दुनियाभर में शिक्षा को प्रभावित किया। यूनेस्को के अनुसार, दुनिया भर में स्कूल जाने वाले करीब 90 फीसदी बच्चों की शिक्षा महामारी ने रोक दी। पिछले साल अप्रैल तक वायरस का प्रसार रोकने के लिए 190 से अधिक देशों में 160 करोड छात्र प्री-प्राइमरी, प्राइमरी और सेकंडरी स्कूलों से बाहर हो गए। स्कूल बंदी के दौरान, ज्यादातर देशों में, शिक्षा या तो ऑनलाइन या अन्य रिमोट तरीकों से प्रदान की गई, लेकिन इंटरनेट तक पहुंच, कनेक्टिविटी, सुलभता, भौतिक तैयारी, शिक्षकों का प्रशिक्षण और घर की परिस्थितियां समेत कई मुद्दों ने इसे प्रभावित किया।स्कूलों का अचानक बंद होना करोड़ों बच्चों की शिक्षा में अस्थायी व्यवधान भर साबित नहीं हुआ, बल्कि बहुत से बच्चों के लिए उसका अंत हो गया। जो बच्चे अपनी कक्षाओं में लौट आए हैं या लौट आएंगे, वे महामारी के दौरान पढ़ाई में हुए नुकसान के असर को बरसों तक महसूस करते रहेंगे। बच्चों की पढ़ाई का बंद होना इस त्रासदी का एक पहलू है। दूसरा पहलू है शिक्षा का ध्वस्त होना। हमने प्रवासी मजदूरों की कहानियाँ पढ़ीं, पर शिक्षकों की दर्दनाक कहानियाँ छिपी रह गईं। उन छोटे उद्यमियों की तबाही का विवरण भी सामने नहीं आया, जिन्होंने हाल के वर्षों में बहुत छोटे-छोटे स्कूल खोले थे। पिछले 20-25 साल में देशभर में छोटे प्राइवेट स्कूल खुले थे, जो शैक्षिक कमियों को पूरा करने का प्रयास कर रहे थे। ग्रामीण क्षेत्रों में भी इन्होंने जगह बनाई है। उनकी गुणवत्ता को लेकर भले ही तमाम सवाल हैं, पर वे अंधेरे में रोशनी का दिया जलाने का काम कर रहे हैं।

5ई-विद्या योजना : वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने कोरोनाकाल में दूसरी बार डिजिटल माध्यम से बजट पेश किया। महामारी के अनुभवों के साथ डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देते हुए 'पीएम ई-विद्या' योजना की घोषणा उल्लेखनीय है। महामारी के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में खासतौर से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समेत अन्य कमज़ोर वर्ग के छात्रों की पढ़ाई प्रभावित हुई है। पीएम ई-विद्या

योजना के अंतर्गत 'वन क्लास वन टीवी चैनल' कार्यक्रम में 12 से बढ़ाकर 200 टीवी चैनलों के माध्यम से छात्रों को शिक्षा देने का काम किया जाएगा। हर क्षेत्र में छात्रों की इंटरनेट तक पहुंच नहीं है, पर टीवी लगभग सभी क्षेत्रों में मौजूद हैं। ऐसे में टीवी चैनल के माध्यम से क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान की जाएगी।इस वर्ष वोकेशनल कोर्सेस और क्रिएटिविटी कोर्स भी शुरू किए जा रहे हैं। विज्ञान और गणित भाषा में 750 वर्चुअल लैब और 75 कौशल ई-प्रयोगशालाएं शुरू की जाएंगी। शिक्षक डिजिटलमोड से उपलब्ध होंगे और इंटरनेट, मोबाइल फोन, टीवी, रेडियो के माध्यम से छात्रों को उनकी क्षेत्रीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली ई-शिक्षा सामग्री उपलब्ध होगी।

6डिजिटल यूनिवर्सिटी : डिजिटल यूनिवर्सिटी की स्थापना भी की जा रही है। इसका अर्थ है कि यूनिवर्सिटी हर एक छात्र के दरवाजे पर होगी। छात्र व्यक्तिगत रूप से डिजिटल यूनिवर्सिटी के माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर सकेगा। इस डिजिटल यूनिवर्सिटी के माध्यम से छात्र देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों और संस्थानों से डिजिटल माध्यम से जुड़ सकेंगे। भारत की शिक्षा व्यवस्था में यह अपनी तरह का अनोखा और अभूतपूर्व कदम है। हर विषय के लिए असीमित सीटें होने पर कोर्स उपलब्धि का सवाल खड़ा नहीं होगा। डिजिटल यूनिवर्सिटी लर्निंग और रि-लर्निंग के लिए युवाओं को तैयार करेगी। प्रश्न यह है कि हम वैश्विक मानकों को छू पाएंगे या नहीं।

***7*स्वयंप्रभा :** बत्तीस डीटीएच चैनलों का एक समूह है जिन पर विभिन्न भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाले एजुकेशनल कंटेंट प्रसारित किए जाते हैं। इन चैनलों को फ्री डिश या किसी भी केबल ऑपरेटर और डीटीएच पर देखा जा सकता है। ऑपरेशन डिजिटल बोर्ड के तहत कक्षाओं में डिजिटल बोर्ड लगाए जा रहे हैं।इन कार्यक्रमों के अलावा, पूर्ववर्ती सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीयमाध्यमिक शिक्षा अभियान और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की सुदृढीकरण योजनाओं का समग्र शिक्षा कार्यक्रम में विलय कर दिया गया है। जिन अन्य कार्यक्रमों का उल्लेख किया जा सकता है उनमें राष्ट्रीय ज्ञान नेटवर्क, कौशल विकास, ई-शोधसिंधु, राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय और राष्ट्रीय अकादमिक डिपॉज़िटरी कार्यक्रम शामिल हैं। इन कार्यक्रमों को इस प्रकार डिज़ाइन किया गया है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र भी किसी भी स्तर की शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

डिजी लॉकर : इसका उद्देश्य आम जनता के लिए सुलभ डिजिटल लॉकर की उपलब्धता सुनिश्चित करना है जिसमें समस्त सरकारी पहचान-पत्र जैसे आधार कार्ड, वोटर आईडी, लाइसेंस, पासपोर्ट, पैन कार्ड, शैक्षिक प्रमाणपत्र इत्यादि को डिजिटल रूप में हमेशा के लिए सुरक्षित रखा जा सके और कहीं से भी इन्हें ज़रूरत पड़ने पर आसानी से स्मार्टफोन और इंटरनेट की सहायता से एक्सेस किया जा सके। अधिक जानकारी के लिए पोर्टल www.digilocker.gov. in देख सकते हैं।

अन्य प्रमुख डिजिटल पोर्टल : बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, भीम, क्राइम एंड क्रिमिनल ट्रेकिंग नेटवर्क्स एंड सिस्टम्स, क्रॉप इंश्योरेंस मोबाइल ऐप, डिजिटल एम्स, ई-ग्रंथालय, ई-पंचायत, ई-हॉस्पिटल, ई-नाम, ईपीएफओ वेबपोर्टल एंड मोबाइल ऐप, ई-प्रोक्योरमेंट पोर्टल, ई-संपर्क, ई-वीसा, फर्टिलाइज़र मॉनीटरिंग सिस्टम, ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम, जीएसटी नेटवर्क, खोया-पाया ऐप, नॉलेज मैनेजमेंट सिस्टम, मदद ऐप, एम कवच, मदर एंड चाइल्ड ट्रेकिंग ऐप, नेशनल करिअर सर्विस पोर्टल, नेशनल स्कॉलरशिप पोर्टल, निर्भया ऐप, ऑनलाइन लैब्स, पासपोर्ट सेवा प्रोजेक्ट, प्रोजेक्ट मैनेजमेंट एंड इंफोर्मेशनसिस्टम, पब्लिक फाइनेंशियल मैनेजमेंट सिस्टम, स्वच्छ भारत ऐप, आदि की भी डिजिटल इंडिया अभियान को सफल बनाने में ज़बर्दस्त भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है।

डिजिटल लॉकर प्रणाली- इसका उद्देश्य भौतिक दस्तावेजों के उपयोग को कम करना और एजेंसियों के बीच ई-दस्तावेजों केआदान-प्रदान करने के लिए सक्षम प्रणाली स्थापित करना है। ई दस्तावेजों के आदान-प्रदान, पंजीकृत खजाने के माध्यम से किया जाएगा जिससे ऑनलाइन दस्तावेजों कीप्रामाणिकता सुनिश्चित हो सके।

2 शासन में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उलहवअण्पद को एक मंच के रूप में शुरू किया गया है। इसके लिए 'चर्चा (डिस्कस)' करना (डू)' और 'प्रसार (डिससेमिनेट)' का उडी का रास्ता चुना गया है। उपयोगकर्ताओं के लिए मोबाइल पर इन सुविधाओं का उलहवा मोबाइल ऐप के जरिए उपलब्ध करायाजाएगा।

3स्वच्छ भारत मिशन (एसबीएम): मोबाइल ऐप को स्वच्छ भारत मिशन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आम लोगों और सरकारी संगठनों द्वारा इस्तेमाल किया जाएगा।

4ई हस्ताक्षर फ्रेमवर्क के जरिए नागरिकों को आधार प्रमाणीकरण का उपयोग कर ऑनलाइन डिजिटल रूप में किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने की अनुमति होगी।

5आनॅलाइन पंजीकरण प्रणाली (ओआरएस) को ई हॉस्पिटल एप्लिकेशन के तहत शुरू किया गया है। यह एप्लिकेशन ऑनलाइन पंजीकरण शुल्क का भुगतान और मिलने का समय, ऑनलाइन नैदानिक (क्लीनिकल) रिर्पोट, रक्त उपलब्धता की ऑनलाइन पूछताछ आदि के रूप में महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करता है।

6राश्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल लाभार्थी तक भारत सरकार द्वारा प्रदान की जाने सभी छात्रवृतियों को प्रदान करने के लिए एकल खिड़की समाधान प्रदान करता है। यहां छात्र के आवेदन करने के साथ ही उसका सत्यापन, मंजूरी और लाभार्थी को भुगतान करने की सुविधा मौजूद है।

7 डीईआईटीवाई ने देश में बड़े पैमाने पर रिकॉर्डो के डिजिटलीकरण के लिए डिजिटाइज इंडिया प्लेटफॉर्म (डीआईपी) नाम से एकपहल की शुरूआत की है। इससे नागरिकों को सेवाओं की कुशल वितरण की सुविधा उपलब्ध होगी।

8 भारत सरकार ने भारत नेट नाम की एक पहल शुरू की है, यह देश के 2.5 लाख ग्राम पंचायतों को जोड़ने का एक उच्च गति डिजिटल राजमार्ग है। ऑप्टिकल फाइबर के जरिए ग्रामीण ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी प्रदान करनें वाली यह दुनिया की सबसे बड़ी परियोजना होगी।

9 बीएसएनएल ने 30 साल पुरानी व्यवस्था को बदलने कि लिए अगली पीढ़ी के नेटवर्क (एनजीएन) शुरू की है, यह आवाज, डेटा, मल्टीमीडिया / वीडियो और अन्य प्रकार के पैकेट स्वीच संचार सेवाओं जैसे सभी प्रकार की सेवाओं के प्रबंधन के लिए एक आईपी आधारित प्रौद्योगिकी है।

10बीएसएनएल ने देश भर में बड़े पैमाने पर वाई-फाई हॉटस्पॉट बनाने की शुरूआत की है। उपयोगकर्ता अपने मोबाइल उपकरणों के माध्यम से बीएसएनएल वाई-फाई नेटवर्क से जुड़ सकते हैं

11 इलेक्ट्रॉनिक रूप से नागरिक सेवाएं देने और नागरिक और अधिकारियों के बीच संवाद में सुधार के लिए एक सार्वभौमिक पहुंच की अत्यंत आवश्यकता है। सरकार को भी इसका अहसास है, यह ब्रॉडबैंड राजमार्ग को डिजिटल इंडिया के स्तंभों में शामिल करने से परिलिक्षित होता है। जहां कनेक्टिविटी एक कसौटी है, वहीं नागरिकों के लिए सेवाओं की आपूर्ति की सुविधा के लिए प्रौद्योगिकियों को सक्षम करना और उपलब्ध कराना दूसरे मादंड है।

डिजिटल स्वास्थ्य साक्षरता : ग्रामीण युवाओं को डिजिटलस्वास्थ्य साक्षरता कार्यक्रम प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि वे स्वास्थ्य देखभाल पहुँच, निगरानी और शिक्षा के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग कर सकें। टेलीमेडिसिन और मोबाइल स्वास्थ्य ऐप दूरदराज के इलाकों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँचा बढ़ा सकती हैं और युवा इस प्रक्रिया में मूल्यवान मध्यस्थ हो सकते हैं।

1 आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन : इसकाउद्देश्य भारत की समेकित डिजिटल स्वास्थ्य सेवा अवसंरचना के लिए ज़रूरी ढांचे का विकास है। यह स्वास्थ्य सेवा उद्योग में विभिन्न पक्षों के बीच दूरी को खत्म करने के लिए डिजिटल हाइवे का इस्तेमाल करती है।

2 आयुष्मान भारत स्वास्थ्य खाता : इसके ज़रिएभागीदार स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के बीच सुरक्षित और ज़्यादा प्रभावी ढंग से डिजिटल स्वास्थ्य रिकॉर्ड का आदान-प्रदान किया जा सकता है। एबीडीएम में शामिल होने और डिजिटल स्वास्थ्य रिकॉर्ड रखने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति को सबसे पहले अपना आयुष्मान भारत स्वास्थ्य खाता बनाना होगा। व्यक्ति की पहचान और प्रमाणन के बाद उसकी सहमति से ही उसके स्वास्थ्य रिकॉर्ड को विभिन्न प्रणालियों और हितधारकोंको मुहैया कराया जाता है। ई-श्रम : इस प्लेटफॉर्म को श्रम और रोज़गार मंत्रालय ने उन असंगठित कामगारों के लाभ के लिए बनाया है जो कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ईएसआईसी) या कर्मचारी

भविष्यनिधि संगठन (ईपीएफओ) के सदस्य नहीं हैं। श्रमिक योजना में शामिल होने और ई-श्रम कार्ड हासिल करने के अनेक लाभ हैं। इसके जरिए सरकार के सामाजिक सुरक्षा के उपायों से कामगारों की मदद की जाती है।

डिजिटल इंडिया की उपलब्धियां

• दर्पण परियोजना (डिजिटल एडवांसमेंट ऑफ रूरल पोस्ट ऑफिस फॉर द न्यू इंडिया) के तहत 43000 डाकघरों का डिजिटलीकरण।

• एक मोटे अनुमान के अनुसार अब तक देश के ग्रामीण क्षेत्रों के 12,000 से अधिक डाकघरों को इलेक्ट्रॉनिक तौर पर जोड़ा जा चुका है।

•127 करोड़ से अधिक बायोमीट्रिक आधार कार्ड जारी किए जा चुके हैं।

•121 करोड़ से ज्यादा मोबाइल तथा 50 करोड़ से अधिक स्मार्टफोन यूज़र्स।

•ई-कॉमर्स कारोबार में लगभग 50 प्रतिशत वृद्धि।

•ई-गवर्नेंस आधारित कारोबार और लेन-देन में उल्लेखनीय वृद्धि।

• देशव्यापी तौर पर खोले गए कॉमन सर्विस सेंटर्स का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को ई-गवर्नेंस, टेलीमेडिसिन, एजुकेशन, मनोरंजन सहित अन्य तमाम कार्यकलापों में मिल रहा है।

• अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित वाई-फाई चौपाल भी इसी अभियान की महत्वपूर्ण देन हैं।

• इंटरनेट का इस्तेमाल करने वालों की संख्या 75 करोड़ के आंकडे को पार करने के संकेत हैं।

प्रौद्योगिकी और बदलते पारिवारिक सम्बन्ध : प्रौद्योगिकी मानव जीवन के समस्त पहलुओं पर प्रभाव डालती है। कुछ प्रभाव सकारात्मक होते हैं, तो कुछ नकारात्मक होते हैं। प्रौद्योगिकी हमारे समाज, अर्थव्यवस्था, विज्ञान राजनीति हर क्षेत्रों को प्रभावित करती है।

प्रौद्योगिकी के विस्तार और बदल रही अर्थव्यवस्था में लोग एक नया मानसिक रवैया अपना रहे हैं, जिसका प्रभाव समाज तथा परिवारिक सम्बधों के ऊपर भी पड़ रहा है।

प्रौद्योगिकी के विस्तार ने पूरी दुनिया को जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा इससे आधुनिकता एवं विभिन्न जीवन शैलियों का आगमन हमारे समाज में हुआ है। जिसने हमारी सामाजिक नैतिक मूल्यों, आदर्शों, संस्कृतियों तथा परम्पराओं को प्रभावित किया है, जिससे पारिवारिक सम्बधों एवं मूल्यों पर भी प्रभाव डाला है।

जीवन के हर क्षेत्र में प्रौद्योगिकी और तकनीक के घुसपैठ से हमारी जीवन शैली बदलने लगी है तथा इसने पारिवारिक टूटन, अलगाव तथा अकेलापन जैसे तत्त्वों को जन्म दिया है। नई-नई प्रौद्योगिकी; जैसे-इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर, टेलीविजन शिक्षा प्रौद्योगिकी इत्यादि के आगमान से पारिवारिक सम्बधों पर नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न हुए हैं।

प्रौद्योगिकी के उपयोग से पारिवारिक को शिक्षित करने, अच्छी चिकित्सा सुविधा के प्राप्त करने तथा जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त दूर-संचार सुविधाओं का लाभ उठाकर भौतिक रूप से दूर-दूर रहने वाले पारिवारिक सदस्यों के बीच निकटता बढ़ाने में सहायता मिलती है। परन्तु वर्तमान परिदृश्य में नई प्रौद्योगिकियों; जैसे- टेलीविजन, फोन, मोबाइल, लैपटॉप, कम्प्यूटर तथा इस पर आधारित सोशल साइटों ने बच्चों एवं पारिवारिक सम्बधों पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने शुरू कर दिए हैं।

1 बच्चों पर प्रभाव : प्रौद्योगिकी के प्रयोग से जहाँ एक तरफ बच्चों को अच्छी शिक्षा तथा चिकित्सा प्रदान करने में सुविधा प्राप्त हुई है, वहीं दूसरी ओर बच्चों में अलगाव तथा मानसिक समस्या उत्पन्न हुई है। वे अपने माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों से संवेदनात्मक एवं भावनात्मक रूप से जुड़ नहीं पाते हैं तथा उनका भावनात्मक लगाव कम होने लगा है।वे अपने परिवार के सदस्यों से कम अन्तःक्रिया करते हैं तथा प्रौद्योगिकी में अपनी खुशी ढूँढने का प्रयास करते हैं जो उनके सर्वांगीण विकास में बाधा उत्पन्न करता है।

2 पति-पत्नी सम्बन्धों पर प्रभाव : प्रौद्योगिकी के आगमन से पति-पत्नी सम्बन्धों पर भी असर पड़ा है, क्योंकि नए नए इलेक्ट्रॉनिक गजटों एवं फेसबुक, ट्वीटर, व्हाट्सएप जैसे सोशल नेटवर्किंग साइटों ने इन्हें आपसी भावनात्मक सम्बन्धों से दूर किया है। लोगों के पास एक-दूसरे के लिए समय का अभाव होने लगा है तथा प्रौद्योगिकी के ज्यादातर इस्तेमाल से इनके बीच मानसिक तनाव, लड़ाइयाँ तथा संवाद का कम होना आम समस्या है। फलतः तलाक तथा एकल परिवार जैसी समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, जिसका असर अन्ततः बच्चों पर पड़ता है।

3 लैंगिक असमानता पर प्रभाव : प्रौद्योगिकी के प्रयोग से लिंगों एवं भ्रूणों की जाँच आसान हो गई है तथा पितृसत्तात्मक समाज इन प्रौद्योगिकियों का प्रयोग कर जन्म से पूर्व लिंग जाँच कर कन्या भ्रूण हत्या को बढ़ावा दे रहे हैं। इससे भी पारिवारिक सम्बन्धों में समस्या उत्पन्न हो रही है। प्रौद्योगिकी एवं पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभावों पर हुए शोधों पर यह बात सामने आई है कि जब पति-पत्नी घर पर मोबाइल डिवाइड का प्रयोग करते हैं, तो उनका आपस में संघर्ष पैदा होता है तथा वे कई बार पारिवारिक समय पर काम सम्बन्धी गतिविधियों में व्यस्त हो जाते हैं जो अन्ततः काम और जीवनसाथी दोनों के लिए समस्या पैदा करता है।

शोध कर्ताओं के अनुसार, तीन साल से कम उम्र के बच्चों के लिए इलेक्ट्रॉनिक स्क्रीनों और उपकरणों का अधिक प्रयोग से बच्चे के दिमाग को प्रभावित करता है तथा यह बच्चों के भावनात्मक, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

डिजिटल टेक्नोलॉजी के दूरगामी प्रभाव

•ई-कॉमर्स की बढ़ती लोकप्रियता से शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़ता ऑनलाइन कंज्यूमर आधार

• डिजिटल उपकरणों के खरीददारों की संख्या में ज़बर्दस्त उछाल

•गूगल के एक अध्ययन में वर्ष 2017 की अपेक्षा डिजिटल ट्रांजेक्शन में दस गुना से अधिक वृद्धि की संभावना व्यक्त की गई

•वर्तमान सरकार द्वारा पेश किए जाने वाले प्रत्येक बजट में डिजिटल इंडिया के लिए अधिकाधिक धनराशि का प्रावधान इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की मौजूदा संख्या में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी।

डिजिटल इंडिया की चुनौतियां

•अन्य विकसित देशों की तुलना में सीमित संसाधनों के कारण तेज इंटरनेट स्पीड देश के अधिकांश हिस्सों में उपलब्ध होने में समय लग सकता है।

•डिजिटल साक्षरता दर को और तेज़ी से बढ़ाने की ज़रूरत ।

•अधिकांश परम्परगत और पुरानी तकनीकों पर आधारितउद्योगों के लिए इसप्रकार की तकनीकों को अपनाने मेंवित्तीय संसाधनों की कमी।

•इंटरनेट का बेहतर इस्तेमाल करने में सक्षम स्मार्टफोन की कीमत का ज्यादा होना।

•डिजिटल तकनीकों में माहिर हुनरमंद मानव संसाधन की कमी।

•बढ़ते डिजिटल अपराधों की रोकथाम के लिए अधिक चौकन्ना होने की जरूरत।

निष्कर्ष :डिजिटल प्रौद्योगिकी विकास के अनेक लक्ष्यों को हासिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। रोज़गार सृजन औरगरीबी उन्मूलन में इसकी भूमिका अहम है। श्रम को कृषि से उद्योगों की ओर ले जाकर यह ढाँचागत परिवर्तन को भी बढ़ावा देता है। ग्रामीणों की भागीदारी बढ़ाने के लिए विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में तेजी लाकर ग्रामीणप्रौद्योगिकी की रफ्तार में वृद्धि की जा सकती है। कौशल विकास, वित्तीय सहायता के साथ स्टार्टअप्स, शिक्षा तक पहुंच, स्वास्थ्य सेवा और नई प्रौद्योगिकी विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1 योजना मई 2022 पृष्ठ संख्या 41

2 योजना अप्रैल 2022 पृष्ठ संख्या 27

3 कुरुक्षेत्र नवम्बर 2023 पृष्ठसं ख्या 41

4 कुरुक्षेत्र अप्रैल 2022 पृष्ठ संख्या 32

5 कुरुक्षेत्र मई 2022 पृष्ठ संख्या 17

6 कुरुक्षेत्र अगस्त 2022 पृष्ठ संख्या 16

7 अरिहंत समाजशास्त्र जून 2019 अरिहंत पब्लिकेशंस इण्डिया लिमटेड पृष्ठ संख्या 657

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरणः एक लेख

ज्योत्स्ना कन्नौजिया
शोध छात्रा–समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
ई–मेल आइडी– jaishiv1396@gmail.com

सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण समाज में महिलाएँ परिवार और समाज की रीढ़ होती हैं, लेकिन उन्हें लंबे समय से आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक रूप से उपेक्षित रखा गया है। ग्रामीण महिलाएँ दुनिया भर ग्रामीण समुदायों में देखभाल करती है और कई आर्थिक गतिविधियों जैसे–खेती, छोटे–मोटे व्यापार आदि एक मौलिक भूमिका निभाती है। ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में उन्हे शिक्षा, रोजगार और ग्रामीण विकास के अन्य लाभों तक पहुँच प्रदान करके व्यक्तिगत रूप से ही नही बल्कि पूरे समुदाय को सशक्त बनाने में मदद मिल सकती है। हालाँकि, समय के साथ महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रयास बढ़े हैं, और सरकार एवं विभिन्न सामाजिक संगठनों ने इस दिशा में अनेक योजनाएँ लागू की हैं। फिर भी, ग्रामीण महिलाओं को अब भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस लेख में, हम ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण की स्थिति, उससे जुड़ी चुनौतियाँ, सरकार की पहल, और इसके समाधान पर ध्यान आकृष्ट करेंगे।

बीज शब्द– ग्रामीण विकास, ग्रामीण महिलाएँ, महिला सशक्तिकरण, सरकारी योजनाएँ

प्रस्तावना–

प्राचीन काल से लेकर आज के आधुनिक युग तक अगर देखें तो भारतीय समाज की महिलाओं का योगदान पुरूषों के अपेक्षा कम नही है। इस बदलते परिवेश के साथ–साथ महिलाओं ने भी पुरूषों के समान ही हर क्षेत्र में तरक्की किया है। किसी भी देश के निर्माण में उस देश की महिलाओं का महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि भारत में कुल आबादी में महिलाओं की संख्या लगभग आधी है। लेकिन अक्सर उन्हे स्थानीय भागीदारी एवं सार्वजनिक प्रतिनिधित्व से दूर रखा जाता है, परन्तु वर्तमान में महिलाओं की समाजिक–आर्थिक स्थिति में बदलाव दिखायी देता है। महिलाएँ अब घर की चाहरदीवारी तक ही सीमित नही है वह अब हर तरह से अपनी योग्यता एवं क्षमता का परिचय दे रही है और परिवार तथा कार्यस्थल दोनों जगह समानता और न्याय की मांग कर रही है उन्होने लगभग हर क्षेत्र में कांच की बाधा तोड़ दिया है, चाहे वह प्रोद्यौगिकीय, अंतरिक्ष विज्ञान, खेल हो या सशस्त्र बल हों। भारत में शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में लगभग हर पाचवीं महिला उद्यमी है। **महिला सशक्तिकरण–** सशक्तिकरण एक बहुअयामी अवधारणा है। महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका अर्थ है महिलाओं को समाजिक आर्थिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत रूप से मजबूत बनाना है। महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य महिलाओ को अपने जीवन के हर पहलू पर नियत्रंण हो, और उन्हे पुरूषों के बराबर अवसर देना जिससे महिलाएँ आत्मनिर्भर बने, और अपने जीवन से सम्बन्धित फैसले स्वयं ले सकती है।

शोध पत्र का उद्देश्य– प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण का अध्ययन करना है। यह शोध पत्र द्वितीय स्त्रोतों यथा–पुस्तकों, प्रकाशित लेखों, सरकारी योजनाओं की रिर्पोट आदि के आधार पर तैयार किया गया है।

- **ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण**

सामाजिक सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्णय लेने की स्वतंत्रता, लैंगिक समानता, तथा पारिवारिक एवं सामाजिक अधिकारों से जोड़ना है। समाज में महिलाओं की भूमिका की आवश्यकता को देखते हुए यह स्वीकार किया गया है कि एक पुरूष को सशक्त बनाने से केवल एक व्यक्ति सशक्त होता है, लेकिन एक महिला को सशक्त बनाने से पूरी पीढ़ी सशक्त होती है। राष्ट्रीय महिला आयोग हर स्तर पर लैंगिक असमानता को खत्म कर एक ऐसी संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए प्रयास कर रहा है जहां हर किसी को बिना किसी पूर्वाग्रह के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने का समान ,स्वतंत्र और निष्पक्ष अवसर मिले। ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारक हैं:

1. शिक्षा और जागरूकता–..ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा की स्थिति शहरी क्षेत्रों की तुलना में कमजोर है। बाल विवाह, घरेलू कार्यों की जिम्मेदारी और संसाधनों की कमी के कारण लड़कियों को उचित शिक्षा नहीं मिल पाती। हालाँकि, सरकार द्वारा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'सर्व शिक्षा अभियान' और 'कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना' जैसी नीतियाँ चलाई जा रही हैं, जिससे शिक्षा का स्तर धीरे–धीरे सुधर रहा है।

2. स्वास्थ्य और पोषण– ग्रामीण महिलाओं का स्वास्थ्य एक गंभीर चिंता का विषय है। कुपोषण, मातृ मृत्यु दर, प्रसव संबंधी समस्याएँ और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी प्रमुख चुनौतियाँ हैं। 'जननी सुरक्षा योजना', 'प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना' और 'आंगनवाड़ी सेवाएँ' महिलाओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक साबित हो रही हैं।

3. लैंगिक समानता और निर्णय लेने का अधिकार– ग्रामीण समाज में पुरुषों की प्रधानता अधिक होती है, जिससे महिलाओं को निर्णय लेने का अवसर कम मिलता है। पंचायती राज व्यवस्था में 33 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षण देकर सरकार ने उन्हें निर्णय–निर्माण प्रक्रियाओं में शामिल किया है। इससे महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं और सामाजिक परिवर्तन ला रही हैं।

4. बाल विवाह और दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन– ग्रामीण क्षेत्रों में बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और अन्य कुरीतियाँ महिलाओं की स्वतंत्रता में बाधा डालती हैं। सरकार ने 'बाल विवाह निषेध अधिनियम', 'दहेज निषेध अधिनियम' और 'घरेलू हिंसा अधिनियम' लागू किए हैं, जिससे महिलाओं को कानूनी संरक्षण मिल रहा है।

- **ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण**

आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को वित्तीय स्वतंत्रता देना और उन्हें स्वावलंबी बनाना है। रोजगार में लैंगिक अंतर को खत्म करना और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देना अतिआवश्यक है। पारम्परिक रूप से पुरूष प्रधान क्षेत्रों में महिलाओ की भागीदारी को प्रोत्साहित करने और रोजगार की उन्नति में आने वाली बधाओं को दूर करने से कार्यक्षेत्रों में अधिक लैंगिक समानता लाने में योगदान मिलेगा। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए गए हैं:

1. महिला उद्यमिता और स्वयं सहायता समूह (SHG)– स्वयं सहायता समूह (SHG) ग्रामीण महिलाओं के लिए आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम बन गए हैं। 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' (NRLM)

के तहत ग्रामीण महिलाओं को बैंक से ऋण प्राप्त करने और छोटे व्यवसाय शुरू करने में सहायता मिलती है। कई महिलाएँ दुग्ध उत्पादन, सिलाई–कढ़ाई, हस्तशिल्प और कृषि कार्यों में आत्मनिर्भर बन रही हैं।

2. कृषि और महिला श्रमिकों की भागीदारी– ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाएँ कृषि कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, लेकिन उन्हें पुरुषों के समान वेतन और अधिकार नहीं मिलते। सरकार महिलाओं को 'किसान क्रेडिट कार्ड', 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना', और 'कृषि प्रशिक्षण कार्यक्रमों' से जोड़कर उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयास कर रही है।

3. डिजिटल सशक्तिकरण और कौशल विकास– डिजिटल इंडिया अभियान के तहत महिलाओं को ऑनलाइन शिक्षा, बैंकिंग सेवाओं और डिजिटल लेन–देन की सुविधाएँ दी जा रही हैं। 'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना' (PMKVY) के माध्यम से महिलाओं को सिलाई, ब्यूटी पार्लर, खाद्य प्रसंस्करण, और अन्य तकनीकी कार्यों में प्रशिक्षित किया जा रहा है, जिससे वे स्वरोजगार प्राप्त कर सकें।

4. स्वरोजगार और सरकारी योजनाएँ– सरकार ने ग्रामीण महिलाओं के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं, जैसेः–

मुद्रा योजनाः जिससे महिलाएँ छोटे उद्योगों के लिए ऋण प्राप्त कर सकती हैं।

स्टैंड–अप इंडिया योजनाः जिससे अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति और महिला उद्यमियों को आर्थिक सहायता दी जाती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM): महिलाओ के आर्थिक सशक्तिकरण को गति देने के लिए लखपति दीदी पहल की शुरूआत भी राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन से की गयी जिसका उद्देश्य गरीब परिवार की महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान कराना।

- **साहित्य सर्वेक्षण–**पिछले अनुसंधान से पता चलता है कि सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव बहुत ही अधिक है सोशल मीडिया का उपयोग युवाओं के मनोबल आत्मविश्वास और समाजिक क्षमता पर प्रभाव डालता है। प्रस्तुत शोध पत्र के निर्माण में कुछ साहित्यों का अध्ययन भी किया गया है।

➢ **सिंह, रीना** ने अपने शोध प्रबन्ध, **'महिला विकास कार्यक्रमों का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'** (2011) अध्ययन में पाया है कि, आज कि ग्रामीण महिलाएँ संचार एवं तकनीकी के विभिन्न साधनों के बढ़ते प्रभाव के कारण सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न सुविधाओं एवं अवसरों के प्रति जागरूक है वर्तमान में संचार माध्यमों के प्रभाव महिलाओं को विभिन्न विकास कार्यक्रमो एवं योजनाओं की जानकारी आसानी से मिलती है। जिससे ज्ञात होता है कि संचार के विभिन्न माध्यम ग्रामीण महिलाओं के विकास में अपना सकारात्मक प्रभाव प्रारम्भ कर दिया।

➢ **शर्मा, रेखा** ने अपने शोध लेख, **'महिला सशक्तिकरण हाल के सुधार'** में लिखा है कि, महिलाओं की समाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण, लैंगिक समानता के लिए सरकारो, नागरिक समाज और व्यक्तियों को शामिल करके सामूहिक प्रयासों के माध्यम से ही हम महिलाओं के लिए अधिक न्यायसंगत और समावेशी दुनिया बना सकते है।

➢ **पुरकायस्थ, बी एस,** ने अपने शोध लेख **'महिलाओं के नेतृत्व वाले स्टार्टअप्स को प्रोत्साहन', में** वर्णित किया है कि, सरकार अपनी विभिन्न योजनाओं को प्रभावी बनाने के लिए उनमें सुधार कर रही है और विशेष ध्यान देना चाहिए कि महिला उद्यमियों को महिलाओं को लक्षित योजनाओं के साथ–साथ उद्यमिता सहायता योजनाओं का लाभ प्राप्त हो सके जिससे महिला व्यावसायिक उद्यम देश में रोजगार के अवसर पैदा करके समाज में प्रमुख भूमिका निभा सकें।

- **मुखर्जी, कुमार प्रदीप,** ने अपने लेख, **'डिजिटल साक्षरता से सशक्त होती ग्रामीण महिलाएँ'**, में लिखा है कि, ग्रामीण महिलाओ की डिजिटल रूप से साक्षर बनाने के लिए सरकारी और गैर–सरकारी स्तर पर प्रयास किए जा रहे है जिसके फलस्वरूप लाखो ग्रामीण महिलाएँ आज डिजिटल दुनिया से जुड़ रही है। संचार माध्यमों का व्यापक स्तर पर उपयोग करके शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, उद्यमिता या ग्राम पंचायतो में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही है।

- **ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए सरकारी**

योजनाएँ– ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने और उनके सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार और राज्य सरकारों ने कई योजनाएँ लागू की हैं। ये योजनाएँ महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, वित्तीय सहायता और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से बनाई गई हैं।

1. सामाजिक सशक्तिकरण के लिए सरकारी योजनाएँ

(क) बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना (BBBP)

शुरूआतः 2015

उद्देश्यः लड़कियों की घटती जन्म दर को सुधारना और उनकी शिक्षा को बढ़ावा देना।

लाभः ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

(ख) वन स्टॉप सेंटर योजना

शुरूआतः 2015

उद्देश्यः घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, यौन शोषण जैसी समस्याओं से जूझ रही महिलाओं को कानूनी, चिकित्सा और काउंसलिंग सहायता देना।

लाभः महिलाओं को एक ही स्थान पर सभी प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है।

(ग) महिला हेल्पलाइन योजना

उद्देश्यः महिलाओं को 24*7 हेल्पलाइन सेवा (टोल फ्री नंबर 181) के माध्यम से आपातकालीन सहायता प्रदान करना।

लाभः किसी भी प्रकार की हिंसा या उत्पीड़न की स्थिति में महिलाएँ तुरंत सहायता प्राप्त कर सकती हैं।

(घ) उज्ज्वला योजना

शुरूआतः 2016

उद्देश्यः ग्रामीण महिलाओं को स्वच्छ ईंधन (एलपीजी गैस) उपलब्ध कराना ताकि वे धुएँ से मुक्त खाना बना सकें।

लाभः गरीब परिवारों की महिलाओं को मुफ्त गैस कनेक्शन दिया जाता है।

(च) जननी सुरक्षा योजना (JSY)

उद्देश्यः गर्भवती महिलाओं को संस्थागत प्रसव के लिए प्रोत्साहित करना और मातृ मृत्यु दर को कम करना।

लाभः गर्भवती महिलाओं को अस्पताल में प्रसव के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

(छ) सुकन्या समृद्धि योजना

शुरूआतः 2015

उद्देश्यः लड़कियों की शिक्षा और विवाह के लिए बचत को बढ़ावा देना।

लाभः इस योजना के तहत माता–पिता अपनी बेटियों के लिए एक खाता खोल सकते हैं और उच्च ब्याज दर पर बचत कर सकते हैं।

2. आर्थिक सशक्तिकरण के लिए सरकारी योजनाएँ–

(1) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) – दीनदयाल अंत्योदय योजना

शुरूआतः 2011

उद्देश्यः ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वयं सहायता समूह (SHG) बनाना और वित्तीय सहायता प्रदान करना।

लाभः महिलाएँ छोटे व्यवसाय शुरू कर सकती हैं और बैंक ऋण प्राप्त कर सकती हैं।

(2) मुद्रा योजना (Pradhan Mantri Mudra Yojana & PMMY)

शुरूआतः 2015

उद्देश्यः महिलाओं को छोटे व्यवसायों के लिए बिना गारंटी के ऋण उपलब्ध कराना।

लाभः तीन प्रकार के ऋण (शिशु, किशोर, तरुण) के माध्यम से महिलाएँ अपने व्यवसाय को आगे बढ़ा सकती हैं।

(3) स्टैंड–अप इंडिया योजना

शुरूआतः 2016

उद्देश्यः अनुसूचित जाति, जनजाति और महिला उद्यमियों को 10 लाख से 1 करोड़ रुपये तक का ऋण प्रदान करना।

लाभः महिलाएँ खुद का व्यवसाय शुरू कर सकती हैं और आत्मनिर्भर बन सकती हैं।

(4) प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY)

शुरूआतः 2015

उद्देश्यः महिलाओं को विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर उन्हें रोजगार के योग्य बनाना।

लाभः महिलाओं को ब्यूटी पार्लर, सिलाई, कंप्यूटर शिक्षा, कृषि आधारित व्यवसायों में प्रशिक्षण दिया जाता है।

(5) महिला किसान सशक्तिकरण योजना (MKSP)

शुरूआतः 2013

उद्देश्यः महिलाओं को कृषि और कृषि से जुड़े व्यवसायों में प्रशिक्षित करना और उनकी आय बढ़ाना।

लाभः महिलाओं को जैविक खेती, पशुपालन और मत्स्य पालन में सहायता दी जाती है।

(6) प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना (PMMVY)

शुरूआतः 2017

उद्देश्यः पहली बार गर्भवती होने वाली महिलाओं को पोषण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।

लाभः गर्भवती महिलाओं को 5000 रुपये की सहायता राशि दी जाती है।

(7) ई–श्रम योजना

उद्देश्यः असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

लाभः महिलाओं को दुर्घटना बीमा, पेंशन और अन्य सुविधाएँ मिलती हैं।

(8) महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA)

शुरूआतः 2006

उद्देश्यः ग्रामीण महिलाओं को 100 दिन का रोजगार प्रदान करना।
लाभः महिलाएँ मनरेगा के तहत कृषि, सड़क निर्माण और जल संरक्षण कार्यों में रोजगार पा सकती हैं।

महिला सशक्तिकरण की चुनौतियाँ– ग्रामीण महिलाएँ अशिक्षा, बेरोजगारी, जातिवाद के कारण आज भी हाशिए पर है। आजादी के अमृतकाल में भी महिलाओं की समाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार नही आया। आज भी ग्रामीण भारत में लैंगिक भेदभाव की समस्या व्याप्त है। महिलाओं को अभी भी वित्तीय बहिष्कार और शिक्षा के अवसरों, चिकित्सा देखभाल, स्वच्छता सुविधाओं और अन्य चीजों की कमी से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि, कई प्रयासों के बावजूद भी महिलाओं के सशक्तिकरण में अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैंः

1. **शिक्षा की कमीः** ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा दर अभी भी कम है।
2. **रूढ़िवादी मानसिकताः** पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को सीमित भूमिकाओं तक सीमित रखा जाता है।
3. **आर्थिक निर्भरताः** महिलाओं की वित्तीय स्वतंत्रता सीमित है, जिससे वे निर्णय लेने में सक्षम नहीं होतीं।
4. **स्वास्थ्य समस्याएँः** गर्भावस्था के दौरान उचित स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी एक बड़ी समस्या है।
5. **सामाजिक बंधनः** दहेज प्रथा, बाल विवाह, और घरेलू हिंसा जैसी कुरीतियाँ महिलाओं की स्वतंत्रता में बाधा डालती हैं।

समाधान और सुझाव– प्रस्तुत शोध विषय से सम्बन्धित निम्न सुक्षाव दिए गए है जो इस प्रकार अधोलिखित है

1. **शिक्षा को बढ़ावा देनाः** महिलाओं को उच्च शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाने चाहिए।
2. **आर्थिक स्वतंत्रताः** महिलाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता की ओर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
3. **सरकारी योजनाओं का सही क्रियान्वयनः** महिलाओं को सरकारी योजनाओं की जानकारी दी जानी चाहिए और उन्हें इनका लाभ उठाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
4. **सामाजिक जागरूकताः** महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियान चलाने चाहिए।
5. **तकनीकी सशक्तिकरणः** महिलाओं को डिजिटल साक्षरता प्रदान करनी चाहिए ताकि वे ऑनलाइन सेवाओं का लाभ उठा सकें।

निष्कर्ष

ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण केवल उनका ही नहीं, बल्कि पूरे समाज का विकास सुनिश्चित करता है। यदि महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर और सामाजिक अधिकार दिए जाएँ, तो वे न केवल अपने परिवार को समृद्ध बनाएँगी, बल्कि देश की आर्थिक प्रगति में भी महत्वपूर्ण योगदान देंगी। ग्रामीण महिलाओं के लिए चलाई जा रही है योजनाओं का सही क्रियान्वयन और ग्रामीण महिलाओं तक इनकी पहुँच सुनिश्चित करना बहुत आवश्यक है अतः सरकार, समाज और प्रत्येक नागरिक को मिलकर यह सुनिश्चित करना होगा कि महिलाएँ हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनें और अपने अधिकारों का सही उपयोग कर सकें। ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण से ही भारत सही मायनों में आत्मनिर्भर और विकसित राष्ट्र बन सकेगा।

सन्दर्भ–

- राघवेंद्र, मिश्रा व गौतम ऋषि, ग्रामीण समाज और संचार प्रकाशक– रिगी पब्लिकेशन कृष्णा नगर, (पंजाब), इण्डिया।
- योजना मार्च (2020), प्रकाशन विभाग–सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सूचना भवन, सी. जी.ओ. कॉम्पलेक्स लोधी रोड, नई दिल्ली, पेज नं0 77
- कुरूक्षेत्र, दिसम्बर (2023), प्रकाशन विभाग–सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स लोधी रोड, नई दिल्ली, पेज नं0 29
- सिंह, रीना , शोध प्रबन्ध, 'महिला विकास कार्यक्रमों का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' (2011) अप्रकाशित लेख (शोधगंगा)
- शर्मा, रेखा शोध लेख, 'महिला सशक्तिकरण हाल के सुधार', योजना, सितम्बर, 2023
- पुरकायस्थ, बी एस, शोध लेख 'महिलाओं के नेतृत्व वाले स्टार्टअप्स को प्रोत्साहन, कुरूक्षेत्र, जनवरी, 2024।
- मुखर्जी, कुमार प्रदीप, लेख, 'डिजिटल साक्षरता से सशक्त होती ग्रामीण महिलाएँ',कुरूक्षेत्र, दिसम्बर, 2020
- https://en.wikipedia.org
- www.jansatta.com

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

शिक्षा और समाज पर डिजिटल साक्षरता का प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

नीलम मौर्या
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
ईमेलआईडी-mauryanilam31@gmail

सारांश-
डिजिटल शिक्षा के आगमन ने हमारे सीखने, बातचीत करने और ज्ञान से जोड़ने के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। क्योंकि डिजिटल तकनीकी शैक्षिक परिदृश्य को लगातार परिवर्तित कर रही है। इसलिए शिक्षा और समाज पर डिजिटल शिक्षा के दूरगामी प्रभावों की जांच करना आवश्यक है। यह अध्ययन डिजिटल साक्षरता का शिक्षा और समाज के बीच जटिल और बहु आयामी संबंधों पर गहराई से चर्चा करता है, जो इस तेजी से विकसित हो रहे क्षेत्र द्वारा प्रस्तुत अवसरों और चुनौतियां दोनों को उजागर करती हैं। अध्ययन से ज्ञात होता है कि डिजिटल शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच को लोकतांत्रिक बनाने, भौगोलिक विभाजन को पाटने और विविध शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता है। डिजिटल शिक्षा प्लेटफार्म और संसाधनों ने व्यक्तिगत शिक्षण अनुभव को बेहतर बनाया है, सहयोग और बातचीत को मध्यस्था प्रदान किया है। डिजिटल युग के लिए आवश्यक कौशल के विकास को सुगम बनाया है। इसके अलावा डिजिटल शिक्षा ने सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक विकास और नवाचार के लिए नए रास्ते खोले हैं। हालांकि अध्ययन डिजिटल शिक्षा से जुड़ी चुनौतियों और चिंताओं पर भी प्रकाश डालता है। डिजिटल डिवाइड, इक्विटी और एक्सेस, गुणवत्ता, प्रभावशीलता, साइबर सुरक्षा, डाटा सुरक्षा तथा शिक्षा प्रशिक्षण और सहायता ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि डिजिटल शिक्षा समावेशी रुप से प्रभावशालि और टिकाऊ हो।

मुख्य शब्द- डिजिटल शिक्षा, शिक्षा, सामाज, प्रौद्योगिकी,नवाचार, समावेशिता।

प्रस्तावना

21वीं सदी की शुरुआत से ही तकनीकी प्रगति में महत्वपूर्ण विकास देखा गया है, जिसने मानव अस्तित्व के संपूर्ण ताने-बाने को मौलिक रूप से नया आकार दिया है। इस परिवर्तन के केंद्र में डिजिटल प्रौद्योगिकियों का व्यापक प्रभाव है। जो संचार और वाणिज्य से लेकर शासन और शिक्षा तक हमारे जीवन के हर पहलू में व्याप्त है। इस डिजिटल क्रांति ने एक व्यापक एवं आदर्श बदलाव को सुशोभित किया है। जिससे एक ऐसी दुनिया का निर्माण हुआ है जहां डिजिटल उपकरणों और सूचनाओं तक पहुंच और उनका प्रभावी उपयोग एक विलासिता नहीं बल्कि युवाओं और समाज के लिए एक आवश्यकता है। इस डिजिटल रूप से संचालित दुनिया में संचार करने के लिए डिजिटल साक्षरता की अवधारणा केंद्रीय है। जिसका ज्ञान आधुनिक दुनिया मे समायोजन के लिए अत्यंत आवश्यक है। डिजिटल साक्षरता अपने व्यापक अर्थों में डिजिटल तकनीक का प्रभावी और जिम्मेदारी से उपयोग करने के लिए आवश्यक कौशल ज्ञान और दृष्टिकोण को सम्मिलित करता है। यह केवल कंप्यूटर चलाने या इंटरनेट का उपयोग करने या केवल जानने तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें डिजिटल क्षेत्र की आलोचनात्मक सोच, समझ, समस्या, समाधान संचार सहयोग और रचनात्मकता भी शामिल है। इसमें डिजिटल प्रौद्योगिकियों के नैतिक, सामाजिक और कानूनी निहतार्थो की समझ भी शामिल है। तेजी से परस्पर जुड़ती दुनिया में जहां सूचना हमारी उंगलियों पर आसानी से उपलब्ध है, डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों को सूचना पहुंचाने, उनका मूल्यांकन करने और इसका प्रभावी ढंग से उपयोग करने, उचित निर्णय लेने और नागरिक जीवन में सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देने में सक्षम बना रहा है।

शिक्षा पर डिजिटल साक्षरता का प्रभाव गहरा और परिवर्तनकारी है। इसमें शिक्षण और सीखने की प्रथाओं में क्रांति लाने की क्षमता है । जिसमें पारंपरिक शैक्षिक दृष्टिकोण से आगे बढ़कर अधिक आकर्षक, संवादात्मक और व्यक्तिगत सीखने के अनुभव की बेहतर क्षमता है । डिजिटल उपकरण और संसाधन ज्ञान के विशाल भंडार तक बिना किसी बाधा के पहुंच प्रदान करते हैं । जिससे छात्र विविध दृष्टिकोण को ज्ञात कर सकते हैं और अभिनव तरीकों से सीखने की सामग्री से जुड़ सकते हैं । डिजिटल साक्षरता कुशलता पूर्वक छात्रों को सूचना परिदृश्य की गंभीरता से नेविगेट करने, गलत सूचना से विश्वसनीय स्रोतों को पहचानने और अपनी खुद की डिजिटल सामग्री विकसित करने की क्षमता प्रदान करते हैं । इसके अलावा डिजिटल प्लेटफॉर्म सहयोग और संचार की सुविधा प्रदान करते हैं जिससे शिक्षार्थियों और शिक्षकों के बीच समुदाय की भावना को बढ़ावा मिलता है । डिजिटल तकनीक द्वारा दुरुस्त शिक्षा, दूरदराज के क्षेत्र में रहने वाले या शारीरिक सीमाओं के पार व्यक्तियों के लिए शिक्षा तक पहुंच का विस्तार सुनिश्चित किया है। भौगोलिक बाधओ को तोड़ा है और समावेशिता को बढ़ावा दिया है ।

हालांकि शिक्षा में डिजिटल तकनीक का एकीकरण और डिजिटल साक्षरता चुनौतियां भी प्रस्तुत करता है । डिजिटल डिवाइड, डिजिटल तकनीक और इंटरनेट कनेक्टिविटी तक आसमान पहुंच को संदर्भित करता है, जो मौजूदा असमानताओं को बढ़ावा दे रहे है । जो डिजिटल रूप से साक्षर है और जो नहीं है, उनके बीच एक अंतर उत्पन्न कर सकता है। इसके लिए आवश्यकता है समानता और पहुंच के मुद्दों को संबोधित करना । शिक्षा में डिजिटल साक्षरता के लाभ सभी शिक्षार्थियों के लिए सुलभ हो । शिक्षा के दायरे से परे डिजिटल साक्षरता सामाजिक संपर्क, आर्थिक अवसर और नागरिक चुनाव को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

समकालीन दुनिया में सामाजिक संबंध डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से तेजी से विकासित हो रहे हैं । डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों को सामाजिक नेटवर्क बनाने, ऑनलाइन समुदायों में भाग लेने और सामाजिक सक्रियता में संलग्न होने में सक्षम बना रहे है । यह भौगोलिक सीमाओं के पार संचार की सुविधा प्रदान कर रहे है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा मिल रहा है । आर्थिक क्षेत्र में डिजिटल साक्षरता उद्योगों की एक विस्तृत श्रृंखला में रोजगार के लिए तेजी से आवश्यक होता जा रहा । डिजिटल उपकरण और तकनीक को उपयोग करने की क्षमता अब तकनीक से संबंधित नौकरियां तक सीमित नहीं है यह आधुनिक कार्य बल में सफलता के लिए एक मूलभूत आवश्यकता है । डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों को नौकरी की अवसरों तक पहुंचने ऑनलाइन वाणिज्य में भाग लेने और उद्यमशीलता के उपक्रम विकसित करने का अधिकार देती है। इसके अलावा डिजिटल प्लेटफॉर्म नागरिक भागीदारी के लिए राष्ट्रीय मंच प्रदान करते है जिससे नागरिक अपनी सरकारों से जुड़ सकते हैं । सार्वजनिक सेवाओं तक पहुंच सकते हैं । और अपने राय व्यक्त कर सकते हैं ।

हालांकि डिजिटल तकनीक का उदय और डिजिटल साक्षरता का बढ़ता महत्व कई सामाजिक चुनौतियां भी पेश करता है । ऑनलाइन गलत सूचना और भ्रामक सूचनाओं का प्रसार लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और सामाजिक सामंजस्य के लिए खतरा उत्पन्न करता है। डाटा उल्लंघन और पहचान की चोरी सहित साइबर सुरक्षा जोखिम एक बढ़ती चिंता का विषय है। डिजिटल विभाजन पहले से ही कमजोर आबादी को और हाशिये पर ढकेल सकता है । जिससे मौजूदा असमानताएं और बढ़ सकती है । इसके अलावा डिजिटल तकनीक पर बढ़ती निर्भरता सामाजिक अलगाव और आमने-सामने की बातचीत में कमी ला सकता है । इसलिए शिक्षा नीति और सामुदायिक पहलुओं के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान करना महत्वपूर्ण है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जोखिमों को कम करते हुए डिजिटल साक्षरता के लाभों का दोहन किया जा सके।

इस शोध का उद्देश्य डिजिटल साक्षरता का शिक्षा और समाज के बीच जटिल अंतर संबंधों को ज्ञात करना है, यह उन तरीकों की जांच करता है जिससे डिजिटल साक्षरता शैक्षिक प्रभाव, सामाजिक संपर्क और आर्थिक अवसरों और नागरिक जुड़ाव को आकर देता है ।

शिक्षा पर डिजिटल साक्षरता का प्रभाव

सीखने के बेहतरीन अनुभव-

डिजिटल तकनीक इंटरएक्टिव और आकर्षक सीखने के अनुभव प्रदान करती है मल्टीमीडिया संसाधन, सिमुलेशन, वर्चुअल फील्ड ट्रिप सीखने को और अधिक मनोरंजक और आसान बनाया हैंडिजिटल साक्षरता ने ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफार्म, शैक्षिक एप और मल्टीमीडिया संसाधनों जैसे नए शिक्षण विधियां और उपकरणों की विकास की सुविधा प्रदान की है इन उपकरणों ने शिक्षकों को और अधिक आकर्षक और इंटरएक्टिव सीखाने के अनुभव बनाने मे सक्षम बनाया है। जो छात्रों को सीखने के लिए अधिक प्रेरित करता है।

व्यक्तिगत शिक्षण

डिजिटल प्लेटफॉर्म प्रत्येक व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार सीखने की शैली और उनकी गति के अनुकूल सामग्री और प्रतिक्रिया प्रदान करते हैं। ऑनलाइन पाठ्य पुस्तकों शैक्षिक वेबसाइट और डिजिटल पुस्तकालय सहित शैक्षिक संसाधनों की एक विशाल शृंखला तक पहुंच में यह प्लेटफॉर्म सहायक हैं।

सूचना तक पहुंच में वृद्धि

इंटरनेट का ज्ञान एक विशाल भंडार प्रदान करता है जिसमें छात्र कक्षा से परे विषयों का पता लगा सकते हैं। जो पारंपरिक कक्षाओं से बिल्कुल विपरीत है।

आलोचनात्मक सोच का विकास

ऑनलाइन जानकारी का मूल्यांकन करने के लिए आलोचनात्मक सोच और विश्लेषणात्मक कौशल की आवश्यकता होती है, जो डिजिटल दुनिया में नेविगेट करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। डिजिटल साक्षरता ने छात्रों को महत्वपूर्ण सोच, समस्या समाधान और सहयोग जैसे आवश्यक कौशल विकसित करने में सक्षम बनाया है यह कौशल आज के डिजिटल अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है।

सहयोग और संचार

डिजिटल उपकरण छात्रों और शिक्षकों के बीच सहयोग की सुविधा प्रदान करते हैं।

डिजिटल साक्षरता भविष्य की नींव

डिजिटल साक्षरता छात्रों को प्रौद्योगिकी संचालित नौकरी बाजार में सफल होने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करती है।

डिजिटल साक्षरता का समाज पर प्रभाव

बेहतर संचार और कनेक्टिविटी

डिजिटल प्लेटफॉर्म भौगोलिक सीमाओं को बढ़ा को तोड़ते हैं सामाजिक संपर्क और सहयोग को बढ़ावा देते हैं।

सूचना सेवाओं तक पहुंच में वृद्धि

इंटरनेट सूचना सरकारी सेवाओं स्वास्थ्य सेवा संसाधनों और शैक्षिक अवसरों तक पहुंच प्रदान करता है जिससे व्यक्तियों और समुदायों को सशक्त बनाने में मदद मिलती है।

आर्थिक विकास और नवाचार

डिजिटल साक्षरता नवाचार उदमशीलता और कार्यबल विकास को सक्षम करके आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है। इसने नौकरी के अवसरों को अधिक सुगम बनाया है खासकर प्रौद्योगिकी ई-कॉमर्स और डिजिटल मीडिया के क्षेत्र में।

नागरिक जुड़ाव और भागीदारी

डिजिटल प्लेटफॉर्म सूचना तक पहुंच प्रदान करके ऑनलाइन चर्चाओं को सक्षम करके और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी को बढ़ावा देकर प्रत्येक नागरिक को सरकार से जुड़ने की सुविधा प्रदान करते हैं।

सामाजिक समावेशन

डिजिटल साक्षरता डिजिटल विभाजन को कम कर सकती है। पिछड़े समुदायों को सशक्त बना सकता है और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दे सकती है।

गलत व फर्जी खबरों के प्रति जागरूकता

ऑनलाइन सूचना का मूल्यांकन करने और गलत सूचना और फर्जी खबरों के प्रसार का मुकाबला करने के लिए डिजिटल साक्षरता अति आवश्यक है।

डिजिटल साक्षरता की चुनौतियां

डिजिटल साक्षरता का लाभ होने के बावजूद इसके कौशल से जुड़ी अनेक चुनौतियां और सीमाएं हैं जो निम्नलिखित है-

डिजिटल साक्षरता

डिजिटल साक्षरता के लिए निरंतर प्रशिक्षण और सहायता की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से तेजी से परिवर्तित प्रौद्योगिकियों और आधुनिक कार्यों के संदर्भ में सीमित संसाधनों और विशेषज्ञ वाले व्यक्ति और संगठन के लिए यह चुनौती हो सकता है।

डिजिटल विभाजन

संचार प्रौद्योगिकी और इंटरनेट कनेक्टिविटी तक असमान पहुंच मौजूद असमानताओं को बढ़ावा दे रहे हैं।

साइबर सुरक्षा और गोपनीयता

डिजिटल साक्षरता में ऑनलाइन सुरक्षा को समझना, व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा करना, साइबर बुलिंग और ऑनलाइन घोटाले के जोखिमो से निपटना इत्यादि शामिल है।

सूचनाओं का अतिभार

ऑनलाइन जानकारी के प्रचुरता के लिए स्रोतों का मूल्यांकन करने और विश्वसनीय जानकारी की पहचान करने के लिए महत्वपूर्ण बौद्धिक कुशलता के आवश्यकता होती है जिससे सूचनाओं की अधिकता में से आवश्यकता अनुसार सूचनाओं का उपयोग किया जा सके।

नैतिक विचार

डिजिटल साक्षरता में प्रौद्योगिकी का नैतिक उपयोग शामिल है जिसने बौद्धिक संपदा अधिकारों का सम्मान करना साहित्यिक चोरी से बचाना और जिम्मेदार ऑनलाइन व्यवहार का अभ्यास करना इत्यादि शामिल है।

अतः कहा जा सकता है, कि डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों और समाजों के लिए आधुनिक डिजिटल युग के लिए एक बुनियादी कौशल है। यह व्यक्तियों को सिखाने, काम करने, संवाद करने और नागरिक जीवन में प्रभावी रूप से भाग लेने के लिए सशक्त बनाता है। चुनौतियों का समाधान करके और डिजिटल साक्षरता तक समान पहुच सुनिश्चित कर इसकी पूर्ण क्षमता को साकार कर, अधिक समावेशी और उचित समाज का निर्माण किया जा सकता है।

साहित्य समीक्षा-

कुमार, एस., और कुमार, एन. (2017)। भारत में डिजिटल साक्षरता: विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच डिजिटल तकनीकों के बारे में जागरूकता और उपयोग का एक अध्ययन।

यह अध्ययन भारत में विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच डिजिटल साक्षरता के स्तर का पता लगाता है। अध्ययन में 500 छात्रों का सर्वेक्षण किया और पाया कि छात्रों को डिजिटल तकनीकों के बारे में अच्छी जानकारी थी, लेकिन उनका उपयोग और कौशल सीमित थे। अध्ययन शिक्षकों के लिए डिजिटल साक्षरता कौशल को प्राथमिकता देने और डिजिटल तकनीकों को अपने शिक्षण अभ्यासों में एकीकृत करने की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

काट्ज़, आई. आर., और मैकलिन, ए. एस. (2007)। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) साक्षरता: उच्च शिक्षा में एकीकरण और मूल्यांकन नामक अध्ययन में डिजिटल साक्षरता की अवधारणा और उच्च शिक्षा में इसके एकीकरण की जांच करता है। लेखक आधुनिक कार्यस्थल में डिजिटल साक्षरता के महत्व पर चर्चा करते हैं और शिक्षकों द्वारा छात्रों के डिजिटल साक्षरता कौशल का आकलन और विकास करने की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं।

वारशॉअर, एम. (2004)। प्रौद्योगिकी और सामाजिक समावेशन: डिजिटल डिवाइड पर पुनर्विचार नामक पुस्तक मे डिजिटल डिवाइड की अवधारणा और डिजिटल साक्षरता से इसके संबंधों की व्याख्या की गई है। लेखक का तर्क है कि डिजिटल डिवाइड सिर्फ़ तकनीक तक पहुँच का विषय नहीं है, बल्कि तकनीक का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए ज़रूरी कौशल और ज्ञान का भी विषय है।

बकिंघम, डी. (2007)। डिजिटल साक्षरता: डिजिटल युग में मीडिया शिक्षा पर पुनर्विचार नामक अध्ययन डिजिटल साक्षरता की अवधारणा और मीडिया शिक्षा से इसके संबंधों पर आधारित है। लेखक का मत है कि डिजिटल साक्षरता सिर्फ़ एक तकनीकी कौशल नहीं है, बल्कि एक महत्वपूर्ण सोच कौशल भी है जो व्यक्तियों को ऑनलाइन जानकारी को प्रभावी ढंग से नेविगेट करने और उसका मूल्यांकन करने में सक्षम बनती है।

हिल्बर्ट, एम. (2011)। डिजिटल कौशल और आर्थिक विकास, यह अध्ययन डिजिटल साक्षरता और आर्थिक विकास के बीच संबंधों की जाँच करता है। लेखक का तर्क है कि डिजिटल साक्षरता आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कौशल है, क्योंकि यह व्यक्तियों को सूचना तक पहुँचने, दूसरों के साथ संवाद करने और डिजिटल अर्थव्यवस्था में भाग लेने में सक्षम बनाता है।

पुनी, वाई., और कैबरेरा, एम. (2006)। "ज्ञान समाज में आईसीटी और सीखने का भविष्य" यह अध्ययन डिजिटल साक्षरता और शिक्षा नीति के बीच संबंधों की जांच करता है। निष्कर्ष रूप में शिक्षा नीति को ज्ञान समाज के लिए एक महत्वपूर्ण कौशल के रूप में डिजिटल साक्षरता को प्राथमिकता देनी चाहिए। वे शिक्षकों के लिए डिजिटल साक्षरता कौशल विकसित करने और डिजिटल तकनीकों को अपने शिक्षण अभ्यासों में एकीकृत करने की आवश्यकता पर भी प्रकाश डालता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि डिजिटल साक्षरता का शिक्षा और समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। शिक्षा जगत में डिजिटल साक्षरता छात्रों को शैक्षिक संसाधनों की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुंच, आलोचनात्मक सोच विचार और समस्या समाधान जैसे आवश्यक कौशल विकसित करने और ऑनलाइन शिक्षण समुदायों में भाग लेने में सक्षम बनाती है। वही समाज में डिजिटल साक्षरता सामाजिक समावेशन, आर्थिक विकास और नवाचार को बढ़ावा देता है साथ ही नागरिकों को सरकारी सेवा, स्वास्थ्य सेवाओं की जानकारी और वित्तीय सेवाओं तक ऑनलाइन पहुंच में सक्षम बनाता है। इसके अलावा डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों को डिजिटल अर्थव्यवस्था में भाग लेने नए रोजगार के अवसरों तक पहुंच प्रदान करने और उद्यमशीलता कौशल विकसित करने में सक्षम बनाती है। डिजिटल साक्षरता एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। क्योंकि तकनीकी में परिवर्तन निरंतर हो रहा है। जिससे डिजिटल साक्षरता के लिए निरंतर प्रशिक्षण और समर्थन की आवश्यकता होती है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों को डिजिटल साक्षरता कौशल को प्राथमिकता देनी चाहिए और डिजिटल तकनीक को अपने शिक्षण अभ्यास में एकीकृत करने का प्रयास करना चाहिए। नीति निर्माता द्वारा डिजिटल डिवाइड को कम करने और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए हाई स्पीड इंटरनेट, डिजिटल डिवाइस और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसे बुनियादि डिजिटल ढांचो में निवेश करना चाहिए जिससे शिक्षा को बेहतर बनाया जा सके। और अधिक सामाजिक समावेशन और आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर हुआ जा सके। पूर्ण समता मूलक और टिकाऊ समाज बनाने के लिए डिजिटल साक्षरता की शक्ति का उपयोग किया जा सके। डाटा गोपनीयता, साइबर सुरक्षा और डिजिटल नैतिकता संबंधित चिन्ताओं सहित कई चुनौतियां

और सीमाएं भी है, जिसके लिए एंक्रिप्शन फायरवॉल और अन्य सुरक्षा उपायों का उपयोग करते हुए डाटा गोपनीयता, साइबर सुरक्षा और डिजिटल नैतिकता को प्राथमिकता देनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Adell, J., & Castañeda, L. (2012). The role of digital literacy in the 21st century. Journal of Educational Technology Development and Exchange, 4(1), 1-15. doi: 10.18785/jetde.0401.01

2. Ala-Mutka, K. (2011). Mapping digital competence: Towards a conceptual framework. Journal of Educational Technology, 42(3), 273-291. doi: 10.1111/j.1467-8535.2010.01135.x

3. Bawden, D. (2001). Information and digital literacies: A review of concepts. Journal of Documentation, 57(2), 218-259. doi: 10.1108/EUM0000000007083

4. Buckingham, D. (2007). Digital literacies: Rethinking media education in the digital age. Journal of Educational Multimedia and Hypermedia, 16(3), 277-293.

5. Gilster, P. (1997). Digital literacy. Wiley Computer Publishing.

6. Hafner, C. A., & Miller, L. (2011). Fostering digital literacy in English language teaching. TESOL Quarterly, 45(3), 442-465. doi: 10.1002/tesq.127

7. Jenkins, H. (2006). Convergence culture: Where old and new media collide. New York University Press.

8. Katz, I. R., & Macklin, A. S. (2007). Information and communication technology (ICT) literacy: Integration and assessment in higher education. Journal of Educational Multimedia and Hypermedia, 16(3), 259-275.

9. Koltay, T. (2011). The media and the literacies: A framework for literacy in the digital age. Journal of Educational Multimedia and Hypermedia, 20(1-2), 5-22.

10. Lankshear, C., & Knobel, M. (2008). Digital literacies: Concepts, policies and practices. Peter Lang Publishing.

11. Martin, A. (2006). Literacies for the digital age. In A. Martin & D. Madigan (Eds.), Digital literacies for learning (pp. 3-25). Facet Publishing.

12. Merritt, K. (2011). Digital literacy and the importance of teaching information literacy. Journal of Library Administration, 51(3), 263-275. doi: 10.1080/01930826.2011.556943

13. Ng, W. (2012). Can we teach digital natives digital literacy? Computers & Education, 59(3), 1065-1078. doi: 10.1016/j.compedu.2012.04.013

14. Punie, Y., & Cabrera, M. (2006). The future of ICT and learning in the knowledge society. Journal of Educational Technology Development and Exchange, 1(1), 1-23.

15. Sirkemaa, S. (2014). Digital literacy and the digital divide. In J. A. González-Pérez & J. A. de los Ríos (Eds.), New media and learning (pp. 143-157). Peter Lang Publishing.

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

जनसंचार माध्यमों से महिला सशक्तिकरण :एक अध्ययन

पूजा देवी
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
Poojadevi6242@gmail-com
डॉ0 जयप्रकाश यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

शोध सारांश– *जनसंचार व मीडिया समाज का दर्पण है, लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में इसी प्रेस या मीडिया को स्वीकार किया गया है। एक सार्वजनिक क्षेत्र के गठन के पीछे जनसंचार के साधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए महिलाओं व समाज और राष्ट्र को सही दिशा प्रदान कर रहा है। आधुनिक भारत में भूमंडलीकरण, उदारवादी नीतियाँ और बाजारवाद के कारण उपभोक्ता समाज में जनसंचार की बहुत बड़ी भूमिका है। किसी भी समाज का स्वरूप वहां की महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है। यदि महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ एवं सम्मानजनक है तो समाज भी सुदृढ़ एवं मजबूत होगा। जनसंचार व साधन है, जो महिलाओं के सर्वांगीण विकास में सहयोगी है। समाज में अनेक कार्यक्रमों व प्रचारो ने महिलाओं की आत्मनिर्भरता व निर्णय लेने की क्षमता को विकसित किया है। जो महिला सशक्तिकरण में अपेक्षित योगदान दे रहा है। तथा समाज में महिलाओं के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण भी विकसित कर रहा है*

मुख्य शब्द– जनसंचार,महिला, सशक्तिकरण, साधन,जागरूकता भूमंडलीकरण, चेतना, भूमिका

प्रस्तावना–

जनसंचार में एक मुक्त और खुले समाज की स्थापना की है। जनसंचार ने महिलाओं की विविध भूमिकाओं पर नजर डाली, सोशल मीडिया सिर्फ तरह–तरह के वीडियो और रिल्स देखने का जरिया मात्र नहीं है। बल्कि इसके माध्यम से महिलाएं अपनी आवाज को लाखों करोड़ों लोगों तक पहुंचा रही हैं, विभिन्न मुद्दे को लेकर जागरूकता फैल रही है। और आर्थिक रूप से सबल भी हो रहीहैं। सोशल मीडिया और इंटरनेट धीरे–धीरे भारतीय महिलाओं की जिंदगी में क्रांति और ताकत ला रहा है।

नेपोलियन बोनापार्ट ने, नारी की महानता को बताते हुए कहा कि ''मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा''

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि, ''अगर किसी देश की प्रगति को जानना हो तो वहां की महिलाओं की दशा का ज्ञान कर लो।''

डॉ बी आर अंबेडकर के अनुसार, ''मैं किसी समुदाय की प्रगति महिलाओं ने जो प्रगति हासिल की है उसे मापता पाता हूं।''

भारत का सिंधु घाटी एवं ऋग्वैदिक काल नारी अधिकार एवं सम्मान की दृष्टि से गौरवपूर्ण काल था। सूत्रों एवं स्मृतियों की रचनाओं के साथ उनकी स्थिति गिरती गई और मध्यकाल में इस्लामी आक्रमणों एवं खतरों ने नारी को भोग्या और पदार्थशील बनाकर छोड़ दिया।

आधुनिक युग में भारतीय समाज सुधारको यथा राजा राममोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर से लेकर कुछ सुधरवादी ब्रिटिश शासको विलियम बैटिंग आदि के प्रयास सराहनीय रहे और सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, आदि के रूप में मिथ्या सामाजिक प्रतिष्ठा का बोझढोती अकेली महिला, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नारी समाज अधिक स्वतंत्र हो गई।

नारी सशक्तिकरण का अर्थ है कि महिला की सामाजिक, आर्थिकतथा राजनीतिक निर्णयों में भागीदारी और आवश्यक संसाधनों तक पहुँचना, महिलाओं को परावलंबन की भावना से मुक्त करना तथा इनकी हीन भावना को समाप्त करना ही नारी सशक्तिकरण है। महिला सशक्तिकरण में जनसंचार के साधनो जैसे– अखबार,रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट का विशेष योगदान है महिला समाज की एक अभिनं अंग है।''जब एक पुरुष शिक्षित होता है, तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है,और एक नारी शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है।'' जैसे– जैसे संचार के साधनों का विकास होता जाएगा महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ होती जाएगी।

वर्तमान भारतीय समाज में महिलाएं पुरुषों के बराबर चल रही है। कामकाजी महिलाओं की संख्या बहुत अधिक है, और शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो, जिसमें महिलाएं प्रतिनिधित्व न करती हो। वर्तमान भारतीय समाज में महिलाएं प्रशासक, उद्यमी, डॉक्टर, पुलिसकर्मी, कंप्यूटर विशेषज्ञ, राजनीतिज्ञ और पूरा मीडिया व्यवसाय लगभग सभी प्रकार की गतिविधियों में महिलाओं से भरा हुआ है। महिलाएं हर विभाग में पुरुष सहकर्मियों के बराबर और उच्च पदों पर काम कर रही हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व–

जनसंचार साधनों का एक रूप इन दिनों अपनी बृहद अवस्था में है, लोकतंत्र की तीन मुख्य स्तंभ है– विधायिका,कार्यपालिका एवं न्यायपालिका और चौथे स्तंभ के रूप में इसी प्रेस या मीडिया को स्वीकार किया गया है। मीडिया को एक ऐसे आदर्श लोकतांत्रिक ढांचे में काम करना चाहिए,जो किसी भी तरह के सरकारी या निजी नियंत्रण से मुक्त हो। मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह समाज में शांति, सद्भावना और एकता कायम करने का माहौल बनाते हुए उनका विकास करें और अपनी सकारात्मक रुख को पेश करे। मीडिया को सार्वजनिक हित की कसौटी पर उतरने के लिए जरूरी है कि वह प्रकाशन की स्वतंत्रता, मीडिया का स्वामित्व में बहुलता,लोकतांत्रिक राजनीतिकप्रणाली का समर्थन,राज्य की सुरक्षा, कानून व्यवस्था की सार्वभौमिक पहुंच, सूचना और संस्कृति की गुणवत्ता जनता और उसके मूल अधिकारों का सम्मान तथा समाज को नुकसान से बचाने पर विचार करें। इन दिनों हर तरफ आधुनिकता की अंधी दौड़ और पाश्चात्य संस्कृति के साथ भारतीय संस्कृति का संक्रमण हो रहा है। तो ऐसी स्थिति में जनसंचार के साधन व मीडिया की जिम्मेदारी और ज्यादा हो जाती है।महिलाओं की स्थिति को सुधारने में जनसंचार की बहुत बड़ा योगदान रहा है।

शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य–

महिला सशक्तिकरण का राष्ट्रीय उद्देश्य महिलाओं की प्रगति और उनमें आत्मविश्वास का संचार करना है। महिला सशक्तिकरण देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण है

1– जनसंचार के माध्यम से समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण को प्रदर्शित करना।

2– जनसंचार के माध्यम से समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के प्रभाव को दर्शाना।

3– जनसंचार के साधनों द्वारा सकारात्मक भूमिका को प्रस्तुत करना ताकि समाज एवं राष्ट्र को सही दिशा मिल सके।

उपकल्पना–

1–महिलाओं की सामाजिक– आर्थिक स्थिति के सुधार में जनसंचार माध्यमों की भूमिका रही है।

जनसंचार एवं महिला सशक्तिकरण–

संचार या संप्रेषण का अर्थ है, कि किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को अपने विचारों या किसी सूचना का प्रेषण करना। संचार मानव समाज की एक आधारभूत प्रक्रिया है।परंपरागत रूप से मानव ने शब्द, भाषा और प्रतीकों के माध्यम से अपने इच्छा, आवश्यकता,मनोभावों और विचारों का संप्रेषण किया करते थे। जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया, संचार की प्रक्रिया अधिक विस्तृत और प्रभावी होती गई। संचार के अभाव में सभ्यता और संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती है। संचार की प्रक्रिया ने ही मानवीय संबंधो और मानवीय अंतःक्रियाओ को संभव बनाया है। जब एक ही स्थान से बहुत से लोगों को एक साथ संबोधित किया जाए तो उसे जनसंचार कहा जाता है। आधुनिक युग में यांत्रिकी साधनों के द्वारा अब यह संभव हो सका है, कि एक साथ यांत्रिकी व्यवस्था के माध्यम से बहुत से लोगों को एक साथ संबोधित किया जा सकता है।

मैक्लुहान (1964) मीडिया की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि ''जनसंचार का अर्थ मध्यस्थता करने वाला होता है जो दो बिंदुओं को आपस में जोड़ने का कार्य करता है, व्यवहारिक दृष्टि से जनसंचार एक ऐसा सेतु है जो विभिन्न समूहों के श्रोताओं को एक विचारधारा में जोड़ता है।''

जनसंचार के साधन श्रव्य भी और दृश्य भी तथा पाठ्य भी हो सकते हैं। समाचार– पत्र, पत्रिकाएं पाठ्य साधन है। सिनेमा, टेलीविजन श्रव्य–दृश्य दोनों तथा रेडियो श्रव्य साधन है। आज की सोशल जनसंचार सम्मिलित साधन है। यह द्रुत भी हैं। इस साधन में प्रतिक्रिया बहुत तेजी से दी जा सकती है।

महिला सशक्तिकरण का मकसद महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक,कानूनी, और राजनीतिक रूप से मजबूत बनाना है।महिला सशक्तिकरण में जनसंचार के साधनों का महत्वपूर्ण भूमिका है।जो निम्नलिखित रूप से दर्शाया गया है।

स्त्री–शिक्षा में वृद्धि–

ब्रिटिश काल में लड़कियों को शिक्षा देना एक अधार्मिक कार्य के रूप में देखा जाता था, वही आज लड़कियों ने विज्ञान, कला और वाणिज्य की शिक्षा के साथ व्यावसायिक और राजनीतिक शिक्षा के क्षेत्र में भी अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित किया है। शिक्षा के प्रसार से स्त्रियों में न केवल एक नई सामाजिक चेतना विकसित हुई बल्कि उन कुरीतियों से छुटकारा पा लिया जो उन्हें दासता की जंजीरों में जकड़े हुए थी। स्त्री शिक्षा हेतु शिक्षा में जनसंचार के साधनों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि जनसंचार अत्यधिक प्रभावी अभिकरण है जिसके द्वारा एक ही समय में विस्तृत जनसमूह को शिक्षित किया जा सकता है। वर्तमान में जनसंचार के माध्यमों की पहुंच रेडियो, टेलीविजन, समाचार–पत्रों ऑनलाइन साधनो आदि के रूप में घर–घर पहुंच है। चाहे वह ग्रामीण वातावरण हो या शहरी वातावरण। प्रिंट मीडिया द्वारा स्त्रियों पर किताब, कविताएं तथा लेखो के द्वारा लैंगिक भेदभाव पर संवेदना जागृत की जाती रही है। जनसंचार साधन मनुष्य को परस्पर लैंगिक भेदभाव की समस्या व विचारधारा तथा नहीं इत्यादि से परिचित कराते हैं। जिससे एक–दूसरे के प्रति सम्मान और मानवीयता का भाव विकसित होता है।

सामाजिक जागरूकता–

वर्तमान भारतीय समाज में स्त्रियां अपने सामाजिक अधिकारों के प्रति कहीं अधिक जागरूक हो गई है। सामाजिक विकास में नई दिशा का उदय तो जनसंचार के प्रसारण के द्वारा हुआ ही है, साथ ही नई तकनीकी द्वारा नए दरवाजे भी खुले हैं। इससे ज्ञान, शिक्षा व चिंतन के नए आयाम स्थापित किए गए हैं। अतः जनसंचार का प्रयोग गरीबी उन्मूलन,परिवार कल्याण को बढ़ावा देने तथा लोगों के जीवन स्तर को

ऊंचा उठाने की दिशा में किया जा सकता है। स्त्रियों की सामाजिक जागरूकता के फलस्वरूप ही रूढ़िवादी धर्म तथा व्यर्थ के कर्मकांडो का प्रभाव कम होता जा रहा है। आज सभी के हाथों में आधुनिकतम सुविधाओं से युक्त मोबाइल है,ऐसे में वे देश–विदेश में होने वाली हर घटना के प्रति जागरूक रहती है। महिलाये सोशल मीडिया के माध्यम से स्वयं सहायता समूह बनाकर वंचित वर्गों के लोगों के लिए काम कर रही हैं।

राजनीतिक चेतना का विकास–

अंतर्राष्ट्रीय मानवाअधिकार उपकरण महिलाओं की राजनीतिक चुनाव में भाग लेने का अधिकार देता हैं। महिलाओं का राजनीतिक भागीदारी पर 2012 के प्रस्ताव में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने सभी राज्य दलों से आग्रह किया कि वे ''राजनीतिक दलों को उन सभी बाधाओ को दूर करने के लिए दृढ़ता से प्रोत्साहित करें जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं की भागीदारी के खिलाफ भेदभाव करते हैं, लैंगिक दृष्टिकोण से मुद्दो का विश्लेषण करने व उनकी क्षमता विकसित करे, और उन्हें राजनीतिक दलों के भीतर निर्णय लेने के सभी स्तरों पर महिलाओं की पूरी तरह से भागीदारी करने की क्षमता को बढ़ावा देने की नीतियां अपनाऐ'' ''मीडिया सामग्री ने महिलाओं के प्रतिनिधित्व के बारे में ग्लोबल मीडिया मानिटरिंग प्रोजेक्ट (जी. एम.एम.पी.) ने दिखाया कि 2015 में महिलाएं केवल ''अकबर, टेलीविजन, रेडियो, समाचारों द्वारा पढ़े सुने या देखे जाने वाले व्यक्तियों का 24 प्रतिशत हिस्सा थी। जनसंचार ने महिला राज्य नेताओं और उम्मीदवारों को नागरिकों के सामने खुद को और अपने राजनीतिक कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है'' इसकी कम लागत है और इसके उपयोग में व्यक्तिगत पहल की भूमिका को ध्यान में रखते हुए सोशल मीडिया द्वारा महिला सांसदों के लिए एक तुल्यकारक के रूप में काम कर सकता है। जो राजनीतिक रूप से वंचित है। जिससे राजनीतिक में महिलाओं की भागीदारी को आगे बढ़ाने की क्षमता है। भारत जैसे बड़े लोकतंत्र में प्रधानमंत्री तथा मुख्यमंत्री जैसे पदों के लिए भी स्त्रियों का निर्वाचन होना उनकी राजनीति चेतना को स्पष्ट करता है।

आर्थिक क्षेत्र में प्रगति–

वर्तमान आधुनिक समाज में स्त्रियां अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर नहीं है।सोशल मीडिया और सस्ता इंटरनेट धीरे–धीरे भारतीय महिलाओं की जिंदगी में क्रांति और ताकत ला रहा है। आज महिलाएं बड़े–बड़े उद्योगों का संचालन कर रही हैं। तथा चिकित्सको एवं सलाहकारी सेवाओं में उनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। आर्थिक आत्मनिर्भरता से स्त्रियों का आत्मविश्वास बढ़ा है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके विचारों को महत्व मिलने लगा है। महिलाओं के वित्तीय समावेशन में सुधार के लिए बेहतर विनिमय, प्रौद्योगिकी और वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा देना बहुत जरूरी है।

बढ़ती स्व– चेतना –

सोशल मीडिया सिर्फ तरह–तरह की वीडियो और रिल्स देखने का जरिया मात्र नहीं है। यह अपनी आवाज और अपने प्रोडक्ट को पूरी दुनिया के सामने पेश करने का मंच भी है। आजकल कई अच्छे डॉक्टर, मनोचिकित्स और मोटिवेशनल स्पीकर भी सोशल मीडिया पर जानकारी व वीडियोज अपलोड करते रहते हैं। जिसके माध्यम से महिलाओं को शारीरिक–मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा,सामाजिक चेतना के बारे में नई जानकारियां मिलती रहती हैं। ऐसी स्थिति में महिलाओं के प्रति जागरूकता लाने वाले ऑडियो–वीडियो भी स्त्रियों का मनोबल बढ़ाने में मददगार साबित हो रहे हैं।

महिला सशक्तिकरण में आने वाली बाधाये–

1– समाज की रूढ़िवादी मानसिकता।
2– कानूनो के प्रभावी क्रियान्यवयन का अभाव।
3– ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक जागरूकता की कमी।
4– आर्थिक आत्मनिर्भरता का पर्याप्त साधन न होना।
5– शारीरिक दृष्टि से महिलाओं को कमजोर मानना।
6– महिलाओं द्वारा ही महिलाओं का शोषण
7– पुरुषों के अहम पर चोट।
8– डिजिटल डिवाइस की समस्या।

महिलाओं की सुरक्षा तथा सशक्तिकरण हेतु कानूनी प्रयास–

1– हिंदू मैरिज ऐक्ट 1955 द्वारा हिंदू स्त्रियों को विवाह का अधिकार प्रदान किया गया है।
2– हिंदू सक्सेशन ऐक्ट 1956 द्वारा महिलाओं को उत्तराधिकार संबंधित अधिकार सुनिश्चित किया गया है।
3– इम्मोरल टैफिक प्रीवेंशन ऐक्ट 1956 तथा (संशोधन) 1986 द्वारा महिलाओं की खरीद बिक्री को कानूनी तौर पर रोकने हुए उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें कहीं ले जाने पर रोक लगाया गया है।
4– दहेज निरोधक अधिनियम 1961 द्वारा दहेज लेना और देना कानूनी तौर पर रोका गया तथा इसे एक अपराध माना गया है।
5– मेटर्निटी बेनिफिट ऐक्ट 1961 तथा मातृत्व लाभ (संशोधन) विधेयक 2016 द्वारा कामकाजी महिलाओं को प्रसव तथा उसके उपरांत अवकाश का प्रावधान किया गया है।
6– ईक्वल रेमूनेरेशन ऐक्ट 1976 द्वारा महिलाओं को समान वेतन प्रदान किया गया।
7– इनडीसेंट रिप्रेजेंटेशन ऑव वूमेन प्रोविएशन ऐक्ट 1986 द्वारा महिलाओं की अश्लील प्रतिमा प्रस्तुत करने से रोक लगाया गया है।
8– सती प्रिवेशन ऐक्ट 1987 द्वारा सती प्रथा को समाप्त कर दिया गया है।
9– नेशनल कमिशन फॉर वूमेन ऐक्ट 1990 द्वारा महिला कल्याण से संबंधित विषयों के निर्धारणार्थ आयोग का गठन सुनिश्चित किया गया है।
10– प्रोटेक्शन ऑव वूमेन फ्रॉम डॉमेस्टिक वायलेंस ऐक्ट 2005 द्वारा महिलाओं को घरेलू हिंसा से कानूनी तौर पर सुरक्षित किया गया है।
11– हिंदू सक्सेशन अमेंडमेंट ऐक्ट 2005 द्वारा लड़कियों को भी पिता की संपत्ति में अधिकार प्रदान किया गया है।
12– प्रोटेक्शन ऑफ़ सिविल राइट्स एक्ट 1955, प्रोटेक्शन आफ ह्यूमन राइट्स ऐक्ट 1973, प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स अमेंडमेंट एक्ट 2000, प्रोटेक्शन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स अमेंडमेंट ऐक्ट 2006 आदि के माध्यम से महिलाओं की मूलभूत अधिकारों को सुनिश्चित किया गया है।
13– राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001 : यह नीति संविधान में प्रतिष्ठापित जेंडर (लिंग) समानता के सिद्धांतों को जनतांत्रिक राजनीतिक एवं विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की प्रगति हासिल करने हेतु कानूनो के विकास नीतियों के अंतर्गत किए गए प्रयासों को उजागर करता है।
14– प्रोटेक्शन ऑव वूमेन अगेस्ट सेक्सुअल हराशमेंट एक्ट 2007 द्वारा महिलाओं को उनके यौनशोषण से कानूनी तौर पर सुरक्षा प्रदान किया गया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव–

वर्तमान भारतीय समाज में जनसंचार माध्यम महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जिस तरह से स्त्री शिक्षा व सामाजिकरण में परिवार समाज विद्यालय की अहम भूमिका है, उससे कहीं अधिक जनसंचार की भूमिका है।ग्रामीण महिलाएं भी अब सोशल मीडिया एवं इंटरनेट का प्रयोग करके जानकारी प्राप्त कर रही है। इससे एक तरफ उनका ज्ञान बढ़ रहा है, तो दूसरी तरफ रोजगार का अवसर मिल रहा है। महिलाओं की प्रस्थिति में बदलाव व विकास के साथ–साथ सशक्तिकरण में संचार साधन भविष्य में भी वरदान साबित होगा। अतः पश्चिमीकरण, उदारीकरण ने महिलाओं की प्रस्थिति में लगातार बदलाव किया जनसंचार साधन ने महिलाओं के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर विकास के पथ पर अग्रसर किया है। संचार साधन किसी एक क्षेत्र में नहीं बल्कि प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग दे रहा है। मीडिया के पास महिलाओं की उन्नति में कहीं अधिक योगदान देने की क्षमता मौजूद है। आधुनिक समाज में जनसंचार साधन मूलभूत आवश्यकताओं की भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. वशिष्ठ प्रोफेसर सरिता, महिला सशक्तिकरण, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली
2. श्रीवास्तव सुधारानी, भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति,कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स,नई दिल्ली
3. शर्मा योगेंद्र, 2018, महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा
4. महिला कानूनी अधिकार, धीरज पॉकेट बुक्स, दिल्ली
5. हिंदुस्तान अनोखी, वाराणसी संस्करण, 16 मार्च 2024 पृष्ठ संख्या 5
6. हिंदुस्तान अनोखी, वाराणसी संस्करण, शनिवार 9 मार्च 2024 पृष्ठ संख्या10
7. हिंदुस्तान अनोखी, वाराणसी संस्करण, 13 अप्रैल 2024 पृष्ठ संख्या 5
8. पांडेय रवि प्रकाश, समाजशास्त्र, विजय प्रकाशन मंदिर लिमिटेड, पृष्ठ संख्या 400
9. https://www- drishtiias- Com/hindi/model&essays/women.

10- https://ace project. Org.

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

सतत् विकास का लक्ष्य और शिक्षा : एक विश्लेषण

डॉ. कंचन
एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र
स्वामी करपात्री जी महाराज राजकीय पी.जी. कॉलेज
रानीगंज, प्रतापगढ़।

श्रेया भारती,
शोध छात्रा, समाज शास्त्र विभाग
प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भईया) विश्वविद्यालय
नैनी, प्रयागराज।

सारांश :

सतत विकास लक्ष्य वैश्विक स्तर पर सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित एक व्यापक ढांचा है। इन लक्ष्यों में शिक्षा (एसडीजी–4) एक प्रमुख घटक है, जिसका उद्देश्य सभी के लिए समावेशी, समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना है। यह शोध पत्र सतत विकास लक्ष्यों के संदर्भ में शिक्षा की भूमिका, चुनौतियों और संभावित समाधानों का विश्लेषण करता है। इस अध्ययन में शिक्षा के महत्व, नीति निर्माण, नवाचार, और विभिन्न देशों में शिक्षा प्रणाली के प्रभाव पर गहराई से चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द : सतत् विकास, समान शिक्षा लक्ष्य, सार्वभौमिकता, समानता।

प्रस्तावना :

शिक्षा को किसी भी समाज की प्रगति की आधारशिला माना जाता है। सतत विकास लक्ष्य 2030 एजेंडा के तहत, शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया है, क्योंकि यह अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है। यह शोध पत्र शिक्षा और सतत विकास लक्ष्यों के बीच संबंधों का विश्लेषण करेगा तथा यह दर्शाएगा कि कैसे शिक्षा, गरीबी उन्मूलन, लैंगिक समानता, आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण में योगदान कर सकती है।आवश्यकताओं को पूरा करना है, बिना भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता किए। इसके लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है, जो लोगों को जागरूक बनाती है और उन्हें अपने प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए प्रेरित करती है।

शिक्षा न केवल व्यक्तियों को सशक्त बनाती है, बल्कि यह समाज और राष्ट्र के सतत विकास में भी अहम भूमिका निभाती है। जब लोग जागरूक होते हैं, तो वे पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं को समझने और संतुलित रूप से अपनाने में सक्षम होते हैं। इस लेख में सतत विकास और शिक्षा के बीच संबंध, उनकी चुनौतियाँ और समाधान की संभावनाओं पर विस्तृत चर्चा की जाएगी।

सतत विकास का अर्थ ऐसा विकास है, जो आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए दीर्घकालिक लाभ प्रदान करे। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1987 में एक रिपोर्ट में सतत् विकास को परिभाषित किया गया है।

सतत विकास लक्ष्य और शिक्षा :

एसडीजी–4 : शिक्षा का महत्व

एसडीजी–4 का उद्देश्य सभी के लिए समान, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना तथा जीवनभर सीखने के अवसरों को बढ़ावा देना है। यह लक्ष्य निम्नलिखित उप–लक्ष्यों पर केंद्रित है :

- प्रारंभिक बचपन की शिक्षा तक पहुंच
- प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की सार्वभौमिक समान उपलब्धता
- उच्च शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुलभता
- शिक्षकों का प्रशिक्षण और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार
- शिक्षा और अन्य एसडीजी के साथ संबंध

शिक्षा केवल एक स्वतंत्र लक्ष्य नहीं है, बल्कि अन्य सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी आवश्यक है।

गरीबी उन्मूलन (एसडीजी–1) : शिक्षा व्यक्ति को रोजगार योग्य बनाती है और गरीबी कम करने में सहायक होती है।सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में पहला लक्ष्य गरीबी को समाप्त करना है। इसका उद्देश्य 2030 तक दुनिया से गरीबी को पूरी तरह खत्म करना और सभी लोगों को एक सम्मानजनक जीवन प्रदान करना है। गरीबी केवल आय की कमी नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, आवास, और रोजगार के अवसरों की कमी से भी जुड़ी हुई है।

गरीबी की परिभाषा और वर्तमान स्थिति

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, गरीबी उस स्थिति को कहते हैं जब कोई व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है। विश्व बैंक के अनुसार, जो व्यक्ति प्रतिदिन डालर 2.15 (लगभग 180 रुपये) से कम कमाता है, उसे अत्यधिक गरीबी में माना जाता है।

हालांकि पिछले कुछ दशकों में वैश्विक गरीबी दर घटी है, लेकिन अभी भी लगभग 70 करोड़ लोग गरीबी में जीवन यापन कर रहे हैं। कोविड–19 महामारी, जलवायु परिवर्तन, और युद्ध जैसे संकटों के कारण कई देशों में गरीबी बढ़ी है।

लक्ष्य 1 के प्रमुख उपलक्ष्य (Targets)

1.1 : 2030 तक अत्यधिक गरीबी समाप्त करना–

- अत्यधिक गरीबी को परिभाषित करते हुए, सभी देशों को इसे जड़ से खत्म करने के लिए प्रयास करना होगा।
- खासकर विकासशील देशों में, जहां गरीबी दर अधिक है, वहां विशेष योजनाएँ लागू की जाएंगी।

1.2 : गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या को आधा करना

2030 तक सभी उम्र के पुरुषों, महिलाओं और बच्चों में गरीबी की दर को कम करने का लक्ष्य है। गरीबी केवल आर्थिक पहलुओं से नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर के अन्य कारकों से भी जुड़ी होती है।

1.3 : सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करना

गरीबी उन्मूलन के लिए सरकारों को प्रभावी सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ बनानी होंगी।बुजुर्गों, विकलांगों, बेरोजगारों, और गरीब परिवारों के लिए अधिक सहायता योजनाएँ चलाई जाएंगी।

1.4 : सभी को आर्थिक संसाधनों तक समान पहुंच दिलाना

भूमि, संपत्ति, बैंकिंग सेवाओं, और सूक्ष्म वित्त तक गरीबों की पहुंच सुनिश्चित करना।गरीब और वंचित समुदायों के लिए आर्थिक समावेशन को बढ़ावा देना।

1.5 : जलवायु परिवर्तन और आपदाओं से गरीबों की सुरक्षा

जलवायु परिवर्तन, बाढ़, सूखा, और महामारी जैसी आपदाओं से गरीब समुदायों को सबसे अधिक नुकसान होता है।सरकारों को ऐसी योजनाएँ बनानी होंगी जिससे गरीब लोग इन संकटों से उबर सकें।

गरीबी उन्मूलन के लिए संसाधन जुटाना

- गरीबी हटाने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था करना।
- गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाओं का विस्तार करना।

गरीबी उन्मूलन के लिए ठोस नीतियाँ बनाना

सरकारों को ऐसी नीतियाँ बनानी होंगी जो गरीबों को रोजगार और आजीविका के बेहतर अवसर प्रदान करें।

शिक्षा, स्वास्थ्य, और कृषि क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देना ताकि गरीब समुदायों को लाभ मिल सके।

भारत में सतत विकास लक्ष्य की स्थिति

भारत में गरीबी उन्मूलन के लिए कई सरकारी योजनाएँ चलाई जा रही हैं, जैसे –

1. प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY) – गरीब परिवारों को मुफ्त खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
2. मनरेगा (MGNREGA) – ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत लोगों को 100 दिन का रोजगार देना।
3. प्रधानमंत्री जन धन योजना – गरीबों को बैंकिंग सुविधाओं से जोड़ना।
4. आयुष्मान भारत योजना – गरीबों के लिए मुफ्त स्वास्थ्य सेवाएँ।
5. प्रधानमंत्री आवास योजना –गरीबों को पक्के घर उपलब्ध कराया जाए।

गरीबी उन्मूलन एक वैश्विक चुनौती है, लेकिन इसे संभव बनाया जा सकता है यदि सरकारें, निजी क्षेत्र, और समाज मिलकर काम करें। शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक अवसरों में सुधार करके गरीबी को खत्म किया जा सकता है। सतत विकास लक्ष्य का उद्देश्य यही है कि हर व्यक्ति को गरीबी से मुक्त करके उसे सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार दिया जाए।

लैंगिक समानता (एसडीजी–5) : शिक्षा महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण (एसडीजी–3) : शिक्षित व्यक्ति स्वास्थ्य संबंधी बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

शुद्ध जल और स्वच्छता (एसडीजी–6) : शिक्षा स्वच्छता और जल प्रबंधन के महत्व को समझने में मदद करती है।

जलवायु परिवर्तन (एसडीजी–13) : पर्यावरण शिक्षा से जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए जागरूकता बढ़ती है।

शिक्षा में वैश्विक चुनौतियां :

1. वित्तीय संसाधनों की कमी

कई विकासशील देशों में शिक्षा का बजट सीमित है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का प्रसार बाधित होता है।वृत्तीय संसाधनों की कमी एक गंभीर समस्या है जिसका सामना आज दुनिया भर में कई देश कर रहे हैं। यह समस्या कई कारणों से उत्पन्न होती है, जिनमें शामिल हैं

जनसंख्या वृद्धि : जैसे–जैसे दुनिया की आबादी बढ़ती है, वैसे–वैसे संसाधनों की मांग भी बढ़ती है।
उपभोग की बढ़ती दरें : लोग पहले से कहीं अधिक उपभोग कर रहे हैं, जिससे संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है।
जलवायु परिवर्तन : जलवायु परिवर्तन से सूखा, बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाएँ हो सकती हैं, जो संसाधनों को और भी दुर्लभ बना सकती हैं।
प्रदूषण : प्रदूषण हवा, पानी और मिट्टी को दूषित कर सकता है, जिससे संसाधनों का उपयोग करना मुश्किल हो जाता है। वृत्तीय संसाधनों की कमी के कई गंभीर परिणाम हो सकते हैं, जिनमें शामिल हैं
खाद्य असुरक्षा : संसाधनों की कमी से खाद्य उत्पादन में कमी आ सकती है, जिससे खाद्य असुरक्षा बढ़ सकती है।
पानी की कमी : पानी की कमी से कृषि, उद्योग और घरेलू उपयोग के लिए पानी की कमी हो सकती है।
ऊर्जा की कमी : ऊर्जा की कमी से आर्थिक विकास में बाधा आ सकती है और लोगों के जीवन स्तर में गिरावट आ सकती है। संसाधनों की कमी से देशों और समुदायों के बीच संघर्ष हो सकता है।

वृत्तीय संसाधनों की कमी से निपटने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं, जिनमें शामिल हैं–

1. नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करना
2. नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत जैसे – सौर और पवन ऊर्जा, जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम कर सकते हैं।
3. ऊर्जा दक्षता में सुधार करके, हम कम ऊर्जा का उपयोग करके अधिक उत्पादन कर सकते हैं।

पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग को बढ़ावा देना

- पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग को बढ़ावा देकर, हम नए संसाधनों की मांग को कम कर सकते हैं।
- स्थायी कृषि पद्धतियों को अपनाकर, हम खाद्य उत्पादन को बढ़ा सकते हैं और संसाधनों पर दबाव को कम कर सकते हैं।
- जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करके, हम संसाधनों पर दबाव को कम कर सकते हैं।

वृत्तीय संसाधनों की कमी एक जटिल समस्या है जिसका कोई आसान समाधान नहीं है। हालांकि, यदि हम मिलकर काम करें, तो हम इस समस्या से निपट सकते हैं और एक स्थायी भविष्य बना सकते हैं।

2. डिजिटल विभाजन

डिजिटल शिक्षा के बढ़ते महत्व के बावजूद, कई क्षेत्रों में इंटरनेट और तकनीकी संसाधनों की कमी है।डिजिटल विभाजन का अर्थ है उन लोगों के बीच की खाई जिनके पास डिजिटल तकनीक तक पहुंच और उपयोग है, और जिनके पास नहीं है। यह खाई कई रूपों में मौजूद है, जिसमें इंटरनेट एक्सेस, कंप्यूटर, स्मार्टफोन और अन्य डिजिटल डिवाइस शामिल हैं।

डिजिटल विभाजन के कारण

आर्थिक असमानता : गरीब लोगों के पास डिजिटल तकनीक खरीदने या इंटरनेट एक्सेस करने के लिए पैसे नहीं होते हैं।
भौगोलिक असमानता : ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के पास अक्सर शहरी क्षेत्रों की तुलना में कम डिजिटल एक्सेस होता है।
शिक्षा और कौशल : डिजिटल तकनीक का उपयोग करने के लिए लोगों को शिक्षित और कुशल होना चाहिए।

भाषा और संस्कृति : कुछ लोगों के लिए, डिजिटल सामग्री उनकी भाषा या संस्कृति में उपलब्ध नहीं हो सकती है।

उम्र : बुजुर्ग लोगों को डिजिटल तकनीक का उपयोग करने में कठिनाई हो सकती है।

डिजिटल विभाजन के प्रभाव

शिक्षा : डिजिटल तकनीक शिक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। डिजिटल विभाजन से शिक्षा के अवसरों में असमानता हो सकती है।

रोजगार : कई नौकरियों के लिए डिजिटल कौशल की आवश्यकता होती है। डिजिटल विभाजन से रोजगार के अवसरों में असमानता हो सकती है।

स्वास्थ्य : डिजिटल तकनीक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच को बेहतर बना सकती है। डिजिटल विभाजन से स्वास्थ्य सेवाओं में असमानता हो सकती है।

सामाजिक भागीदारी : डिजिटल तकनीक लोगों को सामाजिक और राजनीतिक रूप से भाग लेने में मदद कर सकती है। डिजिटल विभाजन से सामाजिक भागीदारी में असमानता हो सकती है।

डिजिटल विभाजन को कम करने के उपाय

डिजिटल एक्सेस को बढ़ाना सरकार और निजी क्षेत्र को डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर में निवेश करना चाहिए ताकि अधिक लोगों को इंटरनेट एक्सेस मिल सके।

- डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना : लोगों को डिजिटल तकनीक का उपयोग करने के लिए शिक्षित और कुशल बनाने के लिए कार्यक्रम शुरू किए जाने चाहिए।'
- डिजिटल सामग्री को सुलभ बनाना : डिजिटल सामग्री को विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- डिजिटल तकनीक को किफायती बनाना : डिजिटल डिवाइस और इंटरनेट एक्सेस को किफायती बनाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।

डिजिटल विभाजन एक जटिल मुद्दा है जिसके लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। सरकार, निजी क्षेत्र, नागरिक समाज और व्यक्तियों को मिलकर काम करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी को डिजिटल तकनीक का लाभ मिल सके।

3. लैंगिक असमानता

कई देशों में अब भी लड़कियों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। लैंगिक असमानता का मतलब है कि समाज में महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता का अभाव है। यह कई रूपों में दिखाई देता है, जैसे कि शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में असमानता।

लैंगिक असमानता के कारण

सामाजिक मानदंड और रूढ़ियाँ : पारंपरिक रूप से, पुरुषों को महिलाओं से श्रेष्ठ माना जाता है। यह सोच महिलाओं के अवसरों को सीमित करती है।

आर्थिक निर्भरता : कई समाजों में, महिलाएं पुरुषों पर आर्थिक रूप से निर्भर होती हैं। इससे उनकी निर्णय लेने की क्षमता कम हो जाती है।

शिक्षा की कमी : महिलाओं को अक्सर पुरुषों की तुलना में कम शिक्षा मिलती है, जिससे उनके रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं।

हिंसा और भेदभाव : महिलाएं अक्सर हिंसा और भेदभाव का शिकार होती हैं, जो उनके जीवन की गुणवत्ता को कम करता है।

लैंगिक असमानता के प्रभाव

आर्थिक विकास में बाधा : जब महिलाएं आर्थिक रूप से भाग नहीं ले पाती हैं, तो देश की अर्थव्यवस्था पूरी क्षमता से विकसित नहीं हो पाती है।

गरीबी :'लैंगिक असमानता गरीबी को बढ़ाती है, क्योंकि महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम आय होती है।

स्वास्थ्य समस्याएं : महिलाओं को पुरुषों की तुलना में स्वास्थ्य सेवाओं तक कम पहुंच होती है, जिससे उनकी स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ जाती हैं।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कमी : जब महिलाएं राजनीतिक रूप से भाग नहीं लेती हैं, तो उनके हितों का प्रतिनिधित्व नहीं होता है।

लैंगिक असमानता को कम करने के उपाय

शिक्षा को बढ़ावा देना : महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा के अवसर प्रदान करना तथा आर्थिक अवसरों को बढ़ावा देना, महिलाओं को रोजगार और उद्यमिता के समान अवसर प्रदान करना।

हिंसा और भेदभाव को समाप्त करना : महिलाओं के खिलाफ हिंसा और भेदभाव को रोकने के लिए कानून और नीतियां लागू करना।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाना : महिलाओं को राजनीतिक निर्णय लेने में समान रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना।

जागरूकता बढ़ाना : लैंगिक समानता के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना और सामाजिक मानदंडों को बदलना।

इन महत्वपूर्ण रणनीतियों को अपनाकर लैंगिक असमानता कम किया जा सकता है। इसके लिए सरकार, नागरिक समाज, और व्यक्तियों को मिलकर काम करना होगा।

4. संघर्ष एवं आपदाओं का प्रभाव

युद्ध और प्राकृतिक आपदाओं के कारण लाखों बच्चों की शिक्षा बाधित होती है।संघर्ष और आपदाएँ मानव जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं, जिससे न केवल तत्काल विनाश होता है, बल्कि दीर्घकालिक सामाजिक और आर्थिक परिणाम भी होते हैं।

मानवीय क्षति : संघर्ष में लोगों की जान जाती है, वे घायल होते हैं और विस्थापित होते हैं। यह मानसिक स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डालता है, जिससे आघात और तनाव होता है।

आर्थिक विनाश : संघर्ष बुनियादी ढांचे, जैसे कि घर, स्कूल और अस्पतालों को नष्ट कर देता है। यह आर्थिक गतिविधियों को बाधित करता है, जिससे गरीबी और बेरोजगारी बढ़ती है।

सामाजिक विघटन : संघर्ष समुदायों को विभाजित करता है और सामाजिक ताने–बाने को कमजोर करता है। यह सामाजिक सेवाओं, जैसे कि शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच को बाधित करता है।

आपदाओं के प्रभाव

मानवीय क्षति : प्राकृतिक आपदाएँ, जैसे कि भूकंप, बाढ़ और तूफान, लोगों की जान ले सकती हैं और उन्हें घायल कर सकती हैं। यह लोगों को बेघर भी कर सकती हैं और उन्हें भोजन और पानी की कमी का सामना करना पड़ सकता है।

आर्थिक नुकसान :आपदाएँ संपत्ति को नष्ट कर देती हैं और व्यवसायों को बाधित करती हैं। इससे आर्थिक विकास धीमा हो जाता है और गरीबी बढ़ती है

पर्यावरणीय क्षति : आपदाएँ पर्यावरण को नुकसान पहुंचा सकती हैं, जैसे कि वनों को नष्ट करना और जल स्रोतों को दूषित करना। आपदाओं के दौरान हिंसा, शोषण, बाल विवाह, बाल–तस्करी और बाल–श्रम की घटनाओं में भी वृद्धि होती है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव : आपदा और आपात स्थिति महत्वपूर्ण सामाजिक बुनियादी ढांचे को नष्ट करती या नुकसान पहुंचाती है, जिसमें काफी बड़े क्षेत्रों में अस्पताल, स्कूल और पानी और सफाई व्यवस्था प्रभावित होते हैं, ऐसे में एक ऐसा वातावरण बनता है जिसमें बीमारी तेजी से फैलती है और शिक्षा आदि बाधित हो जाती है।

संघर्ष और आपदाओं के संयुक्त प्रभाव

जब संघर्ष और आपदाएँ एक साथ होती हैं, तो उनका प्रभाव और भी विनाशकारी हो सकता है। संघर्ष आपदाओं से निपटने की क्षमता को कमजोर कर सकता है, जिससे मानवीय पीड़ा बढ़ जाती है। आपदाएँ संघर्ष को और भी भड़का सकती हैं, जिससे अस्थिरता और हिंसा का चक्र बन जाता है।

प्रभावों को कम करने के उपाय

- संघर्षों को रोकने और उनका समाधान करने के लिए शांति प्रयासों को बढ़ावा देना।
- आपदा जोखिम में कमी और तैयारी में निवेश करना।
- मानवीय सहायता और पुनर्निर्माण प्रयासों को मजबूत करना।
- प्रभावित समुदायों के लचीलेपन को बढ़ावा देना।

शिक्षा में सुधार के लिए रणनीतियां

1 नीतिगत सुधार : सरकारों को शिक्षा के लिए बजट में वृद्धि करनी चाहिए और सभी के लिए शिक्षा सुनिश्चित करने हेतु ठोस नीतियाँ बनानी चाहिए।

2. डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा : तकनीक के उपयोग से दूरस्थ और वंचित क्षेत्रों तक शिक्षा पहुंचाई जा सकती है। इस कार्य में दूरस्थ शिक्षा पद्धति के विश्वविद्यालय महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

3. शिक्षकों का प्रशिक्षण : गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण में सुधार आवश्यक है।

4. सार्वजनिक–निजी भागीदारी : शिक्षा प्रणाली को मजबूत करने के लिए सरकार और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग आवश्यक है।

निष्कर्ष

सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। गुणवत्तापूर्ण, समावेशी और समान शिक्षा से न केवल व्यक्तिगत विकास संभव है, बल्कि यह समाज और वैश्विक स्तर पर भी सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है। सरकारों, शिक्षण संस्थानों और समाज को मिलकर इस दिशा में काम करना चाहिए ताकि 2030 तक सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। सतत् विकास न केवल शिक्षा में बल्कि अन्य सभी लक्ष्यों की प्राप्ति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से गरीबी उन्मूलन, लैंगिक समानता, आर्थिक विकास, और जलवायु कार्यवाई जैसे प्रमुख विकास लक्ष्यों को साकार करने में सहायता मिलती है।

इस शोध में पाया गया कि समावेशी और समान शिक्षा प्रदान करने से समाज में सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सकता है और नवाचार तथा सतत विकास को बढ़ावा

दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल शिक्षा, सतत पाठ्यक्रम, और नीतिगत सुधारों के माध्यम से शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

हालांकि, शिक्षा को वैविक स्तर पर बढ़ावा देने में विभिन्न बाधाएं मौजूद हैं, जैसे कि वित्तीय संसाधनों की कमी, शिक्षा की पहुंच में असमानता, और गुणवत्तापूर्ण शिक्षकों की उपलब्धता। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकारों, अंतरराष्ट्रीय संगठनों और समाज के सभी वर्गों को मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है।

अतः यह स्पष्ट है कि सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में शिक्षा एक अनिवार्य तत्व है। इसके लिए नीतिगत सुधार, डिजिटल नवाचार, और सतत शिक्षा प्रणाली को प्राथमिकता देना आवश्यक है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ एक अधिक समृद्ध, न्यायसंगत और पर्यावरण–संवेदनशील विश्व का निर्माण कर सकें।

संदर्भ सूची :

1. United Nations- (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development- United Nations- https://sdgs-un-org/2030agenda
2. UNESCO- (2017)- Education for Sustainable Development Goals: Learning objectives- United Nations Educational] Scientific and Cultural Organization- https://unesdoc-unesco-org/ark:/48223/pf0000247444
3. Tilbury] D- (2011). Education for Sustainable Development: An eÛpert review of processes and learning- UNESCO- https://unesdoc-unesco-org/ark:/48223/pf0000191442
4. Leicht] A-] Heiss] J-] & Byun] W- J- (Eds-). (2018). Issues and trends in Education for Sustainable Development- UNESCO Publishing- https://unesdoc-unesco-org/ark:/48223/pf0000261445
5. Sachs] J- D- (2015)- The age of sustainable development- Columbia University Press-
6. Sterling] S- (2010)- Transformative learning and sustainability: Sketching the conceptual ground- Learning and Teaching in Higher Education] (5)] 17–33-
7. Kioupi] V-] & Voulvoulis] N- (2019)- Education for sustainable development: A systemic framework for connecting the SDGs to educational outcomes- Sustainability] 11(21)] 6104- https://doi-org/10-3390/su11216104
8. Bhandari] B- (2020)- Education for sustainable development: ConteÛt] issues and challenges in the Asia&Pacific- Springer-
9. Wals] A- E- J- (2015)- Beyond unreasonable doubt: Education and learning for socio&ecological sustainability in the Anthropocene- Wageningen University-
10. UNICEF- (2019)- Education and the Sustainable Development Goals- https://www-unicef-org/education/education&an

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

ग्रामीण महिलाएँ एवं स्वास्थ्य समस्याएँ

जयन्त गुप्ता
शोध छात्र, समाजशास्त्र
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कालेज गंगापुर वाराणसी
प्रो0 आलोक कुमार कश्यप
समाजशास्त्र विभाग
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कालेज गंगापुर वाराणसी

सारांश
भारत दुनिया के छठे सबसे बड़े और सबसे अधिक आबादी वाले देशों में से एक है, जिसकी आबादी 142.86 करोड़ लगभग है। हाल के वर्षों में अपनी महत्वपूर्ण आर्थिक वृद्धि के बावजूद, भारत अभी भी कई स्वास्थ्य चुनौतियों का सामना कर रहा है जो इसके नागरिकों की सेहत को प्रभावित कर रही हैं। इनमें से कुछ स्वास्थ्य समस्याएँ लंबे समय से चली आ रही हैं, जबकि अन्य उभरती हुई चुनौतियाँ हैं जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।
विश्व के लगभग सम्पूर्ण देशों में स्वास्थ्य की समस्या एक बड़ी समस्या के रूप में विद्यमान है। महिलाओं का स्वास्थ्य सही न होने से लगभग सभी क्षेत्रों पर इसका दुष्प्रभाव दिखाई पड़ता है। सच ही कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है। जब स्वास्थ्य की समस्या के बारे में हम भारत देश की बात करते हैं तो स्थिति और भयावह हो जाती है। इसके पीछे कुछ कारण दिखाई पड़ते हैं। जिनमें दो प्रमुख कारण है प्रथम भारत में जनसंख्या की अत्यधिक प्रवाह और द्वितीय भारत में ग्रामीण समाज की व्यापकता ।

मुख्य शब्द – ग्रामीण समाज, स्वास्थ्य, महिलाये, गरीबी।

प्रस्तावना :-

भारत में जनगणना 2011 के आकड़ों के अनुसार लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण समाज में निवास करती है और इस जनसंख्या में स्त्री - पुरूष का अनुपात लगभग बराबर है। परन्तु भारतीय ग्रामीण समाज में सदा से ही पुरुषों की तुलना में महिलाएँ दोयम दर्जे पर रही है और स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उनके स्तर पर कभी भी ध्यान नहीं दिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय ग्रामीण समाज की महिलाओं के स्वास्थ्य सबधी समस्याओं पर आधारित है। चूंकि सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण समाज का अध्ययन दुरूह कार्य है, इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य के जनपद वाराणसी की ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं पर यह शोध पत्र आधारित किया गया है। यही इस शोध–पत्र का उद्देश्य भी है। इस शोध पत्र के लेखन में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

भारतीय सामाजिक सरचना में गाँव या ग्रामीण क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। जनगणना के अनुसार वह स्थान ग्रामीण क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। जिसकी आबादी पाँच हजार से कम हो और जिसका जनसख्या घनत्व लगभग 410 प्रतिवर्ग किलोमीटर लगभग से कम हो तथा जहाँ पर कामकाजी पुरुषों की संख्या का 25 प्रतिशत भाग खेती के कार्य में लगा हो। इसी सन्दर्भ में रेडफील्ड ने कहा है कि गाँव का तात्पर्य किसी विशेष स्थानीय क्षेत्र से नहीं है। बल्कि गाँव एक जीवन विधि है। आज विश्व की आबादी 6 अरब से अधिक

है। इस आबादी में आधा हिस्सा महिलाओं का भी है। आधी दुनियाँ का बोझ अपने सिर पर लिए इतनी बडी आबादी आज के विकास के दौर में बहुत पीछे है।

आज विकसित से लेकर विकासशील और गरीब लगभग सभी राष्ट्रों में महिलाओं की दशा दयनीय है. क्योंकि आदिम से लेकर औद्योगिक समाज तक में महिलाओं को उचित सम्मान नही दिया गया। आज इस पूजीवादी अर्थव्यवस्था में लगभग प्रत्येक काम की एक कीमत देखी जाती है। और उसी के अनुसार उसका आकलन किया जाता है। आज महिलाओं के सामने सबसे बड़ी समस्या उनके स्वास्थ्य को लेकर है। चाहे एड्स हो या मलेरिया या प्रसूत सम्बन्धी बीमारियों से महिलाएँ सबसे अधिक प्रभावित है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्याएं

ग्रामीण भारत अभी भी एक तरफ मलेरिया, टीबी और डायरिया जैसी पुरानी समस्याओं से बुरी तरह प्रभावित है, वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न नई चुनौतियों का सामना कर रहा है, जो मुख्य रूप से ऑटोमोबाइल और उद्योगों द्वारा हवा के प्रदूषण और दूसरी तरफ कृषि रसायनों द्वारा पानी के प्रदूषण के कारण है। भारत में ग्रामीण समुदाय स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच की कमी से पीड़ित हैं। इस पहुँच की कमी के कारण मातृ मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर और कुपोषण की उच्च दर के साथ–साथ कम जीवन प्रत्याशा और कम टीकाकरण दर होती है।

ग्रामीण भारत, जहाँ 65 प्रतिशत आबादी रहती है, कोविड–19 से किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में अधिक तबाह हो गया है। ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा भारत के स्वास्थ्य मंत्रालय के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। 65 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और स्वास्थ्य सुविधाओं का स्तर कम है, इसलिए बीमारियों के कारण मृत्यु दर अधिक है।

भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। अशिक्षा, गरीबी और अज्ञानता कहीं न कही इसके लिए जिम्मेदार है। सरकार ने अशिक्षा, गरीबी और अज्ञानता को दूर करने के उद्देश्य से विभिन्न कार्यक्रम चलाए हैं। अपने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सरकार ने महिलाओं के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया है। सरकार ने महिलाओं के प्रसूत सम्बंधी विभिन्न सहयोग कार्यक्रमों के माध्यम से इन गरीब महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया है। पहले से चल रही राष्ट्रीय प्रसूति लाभ योजना, जिसमें अब जननी सुरक्षा योजना का नया नाम दिया गया है। मई 2005 से प्रारम्भ इस योजना के माध्यम से स्वास्थ्य केन्द्रों में प्रसव सुविधा प्रदान कर मातृ मृत्युदर और शिशु मृत्युदर को कम करने का प्रयास किया गया है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं को संस्थागत प्रसव हेतु प्रोत्साहन तथा आपात प्रसूति सेवा उपलब्ध कराने के लिए सरकार प्रयासरत है।

जननी सुरक्षा योजना में कुछ बातों का ध्यान रखा गया है

1–इस योजना के लिए पूरा खर्च केन्द्र सरकार उठायेगी

2–यह लाभ ग्रामीण और शहरी दोनो क्षेत्रो में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को 19 वर्ष या इससे अधिक आयु की सभी गर्भवती महिलाओं को उपलब्ध कराया जायेगा।

आज विकसित राष्ट्रों में वेश्यावृत्ति को एक सामाजिक बुराई मानकर कानून का संरक्षण प्रदान किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगो ने वेश्यावृत्ति को जीवन यापन का एक हिस्सा ही मान लिया है। महिलाओं की स्थिति पर यदि विचार किया जाय तो उनकी जो स्थिति भारत में या पूरी दुनिया में है लगभग वही स्थिति उत्तरप्रदेश के वाराणसी जिले की महिलाओं की भी है। वाराणसी जिले की ग्रामीण महिलाओं में सब समस्याओं के साथ–साथ स्वास्थ्य की भी समस्या गंभीर है।

प्रस्तुत शोध पत्र–उत्तर प्रदेश के वाराणसी़ जिले के ग्रामीण महिलाएँ एवं स्वास्थ्य समस्याओं के सन्दर्भ में है। भारत गांवों का देश कहा जाता है। यहाँ ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्न वर्ग, जाति तथा समुदाय के लोग निवास करते हैं। इनका वर्गीकरण सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक, लिंग–आयु के आधार पर किया जाता है। ग्रामीण समुदाय में अधिकांश संयुक्त परिवार पाये जाते है। लेकिन कहीं कही एकल परिवार भी देखने को मिलता है। यदि स्वास्थ्य की समस्या को देखा जाय तो एकल परिवार और संयुक्त परिवार में भिन्नता देखने को मिलती है। इन भिन्नताओं के कारण सामाजिक ढाँचे में भी भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती है। यह कहना उचित होगा कि ग्रामीण महिलाएँ अपने स्वास्थ्य के प्रति अधिक लापरवाह होती है। ग्रामीण समाज में व्यक्तिगत तथा सामुदायिक स्वास्थ्य समस्याओं के कारण अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का अभाव होने के कारण महिलाओं में रोग को लेकर बहुत अन्धविश्वास होता है। वह किसी भी रोग के पीछे दैवीय शक्ति का प्रकोप या जादू टोना का कारण मान लेती है। कुछ ग्रामीण लोग रोग निदान के लिए अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति का सहारा लेते है। जब कि वहीं कुछ लोग अन्धविश्वास के कारण झाड–फूक कराते हैं और ऐसे लोगो पर विश्वास करते है जो ऐसा काम करते है।

वाराणसी़ क्षेत्र के ग्रामीण समाज में अधिकांश लोग रोगग्रस्त होने के बाद प्रारम्भिक अवस्था में इलाज कराना आवश्यक नही समझते इसको छोटी बात समझकर छोड़ दिया जाता है। रोगग्रस्त व्यक्ति सबसे पहले झाड़–फूंक के चक्कर में पड़ता है। असाध्य रोग होने पर भी प्रारम्भ में ग्रामीण लोग इसी अन्धविश्वास में रहते है. कि पूजा पाठ करवाने से ठीक हो जायेगा ऐसा करने में काफी समय व्यतीत हो जाता है और रोग बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। तब व्यक्ति लाचार होकर वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति को अपनाता है। सिर्फ आर्थिक कारण ही इसके लिए जिम्मेदार नहीं होते बल्कि उपचार के सम्बन्ध में ग्रामीण लोग अपनी इस आदत को ही जीवन पद्धति बना लेते हैं।

भारत जैसे विशाल जनसख्या वाले राष्ट्र में अधिक मातृ मृत्युदर के अनेक कारण हैं। यही स्थिति जनपद वाराणसी़ की ग्रामीण महिलाओं की भी है। यहाँ भी महिलाओं की मृत्युदर के अनुपात में मातृ मृत्युदर अधिक है। इसमें सबसे बड़ा कारण रक्तसाव है जो प्रसव के दौरान होता है।

उत्तर प्रदेश के वाराणसी़ जिले में ग्रामीण क्षेत्रों में कुष्ठ एवं चर्म रोग से ग्रसित महिलाएँ भी हैं। ऐसी महिलाओं को समाज अच्छे नजरिए से नहीं देखता। ऐसी महिलाएँ समाज की उपेक्षा का शिकार होती हैं एवं इसके इलाज में भी ढिलाई बरती जाती है। कुष्ठ रोग को ग्रामीण समाज में पिछले जन्म का पाप, कर्म का फल समझ कर इसके

सही इलाज पर ध्यान न देकर देवी–देवता की पूजा पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इनका इलाज ग्रामीण समाज में परम्परागत तरीके से किया जाता है। परन्तु सरकार ने इस तरफ विशेष ध्यान दिया है. और अपने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से कुष्ठ रोग एव चर्म रोग जैसे कई बीमारियों पर नियन्त्रण स्थापित किया है। वाराणसी़ जिले में वर्तमान समय में कुल 79 कुष्ठ रोगी हैं जिनका इलाज हो रहा है। वाराणसी़ के ग्रामीण इलाको में क्षय रोग एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आया है। उत्तर प्रदेश सरकार एव अन्य सहायता प्राप्त कार्यक्रमों के बाद भी क्षय रोगियों की सख्या में कुछ खास कमी नहीं आयी है। गाँव में विभिन्न प्रकार की लकडियों का इंधन के रूप में प्रयोग करने से महिलाओं में स्वास जनित रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है।

उज्जवला योजना के संचालन के बाद भी ग्रामीण इलाको में इस तरह के मरीज देखे गए है इससे महिलाओं को आँख की बीमारी तथा श्वास से सम्बन्धित अनेक बीमारियों का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण महिलाओं में जागरूकता की कमी होने के कारण इसके बलगम की जाँच नहीं हो पाती। जिससे

दिन प्रतिदिन रोग फैलता ही जाता है। देश में एक बीमारी और है जो समाज में तेजी से फैल रही है। जिसको एड्स के नाम से जाना जाता है।

यह बीमारी भी समाज में भयानक रूप से फैल रही है। ऐसा देखा गया है कि एड्स एक बीमारी नहीं बल्कि बीमारियों का एक गुच्छा है। देश में महिलाओं के बीच इस बीमारी का फैलना एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। विशेषकर जब सर्वाधिक कमजोर वर्गों की महिलाएँ सक्रमित पुरुषों से सक्रमित होती है। महिलाओं में यह बीमारी सिर्फ व्यावसायिक, गतिविधियों के कारण ही नही बाल्कि वैवाहिक जीवन मे भी एड्स अपनी घुसपैठ बना रहा है। इस बीमारी को इतनी गम्भीर बीमारी समझा जाता है कि समाज से उस व्यक्ति को अलग कर दिया जाता है जिसे यह बीमारी हो जाती है। 2011 से 2021 के बीच देशभर में 17 लाख 8 हजार 777 लोग एड्स से पीडित पाए गए है। एड्स के सबसे ज्यादा रोगी आन्ध्रप्रदेश में पाए गए है। एड्स रोग के मामले में उत्तर प्रदेश चौथे नम्बर पर है।

वाराणसी़ जिले में 5074 से अधिक एच0आई0वी के मरीज की पहचान पिछले 11 वर्षों में हुई है। जिसमें 2022 से 2025 तक 50 गर्भवती महिलाएँ एचआईवी पाजिटिव पायी गयी, उन्हें यह गभीर बीमारी उनके पतियों से मिली है। इसका पता तब चला जब इन महिलाओं के गर्भवती होने के बाद डॉक्टरो ने इनका इलाज शुरू करने से पहले जांच कराया। एच०आई०वी सक्रमित पायी जाने वाली सभी महिलाओं के पतियों की जांच की गयी तो उनकी भी रिपोर्ट पॉजिटिव आयी। एड्स जैसी लाइलाज बीमारी को खत्म करने के लिए देश में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण कार्यक्रम चलाया गया। कार्यक्रम का पहला चरण 1992 में स्वास्थ्य और परिवार मत्रालय के अन्तर्गत राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण सगठन (NACO) शुरू किया गया। दूसरा तीसरा और चौथा चरण 2014 में प्रारम्भ किया गया है। यह कार्यक्रम रोगियों के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाने, बीमारी से निपटने के लिए सगठनों और व्यक्तियों की भागीदारी पर केन्द्रित है। इस रोग पर नियंत्रण करने के लिए विभिन्न माध्यमों का सहारा लिया जाता है

जैसे–टेलीविजन और रेडियो से नियमित रूप से इस विषय में प्रसारण किया जाता है। एड्स की रोकथाम के लिए वैश्विक और स्थानीय दोनो स्तरो पर प्रयास किए जा रहे है। एड्स से पीडित व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। यदि इस बीमारी का शिकार महिलाएँ हो जाती है, तो उनकी स्थिति और गम्भीर हो जाती है। अतः इन्हें मुख्य धारा में लाना सबसे बड़ी चुनौती है। महिलाएँ एड्स से ग्रसित होने पर भावनात्मक रूप से आहत हो जाती है। अतः इन्हें विशेष तौर पर भावनात्मक समर्थन देकर समाज की मुख्य धारा से जोड़ना चाहिए और इनके स्वास्थ के लिए विशेष प्रबन्ध करना चाहिए।

महिलाओं से सम्बन्धित जितनी भी समस्याएँ है। उनको देखते हुए भारत सरकार ने विभिन्न प्रकार की योजनाएँ समय–समय पर क्रियान्वित की है खासकर महिलाओं की समस्याओं पर ध्यान देते हुए भारत सरकार ने केन्द्रीय स्तर और राज्य स्तर पर विभिन्न योजनाओ को लागू किया है। जैसे–जननी सुरक्षा योजना, किशोरी योजना, आयुष्मान भारत, मातृत्व वंदना योजना, इन्द्रधनुष योजना इत्यादि योजनाओं को लागू किया विभिन्न माध्यमों से लोगो तक पहुँच को सरल बनाया। ग्रामीण क्षेत्रों में इस कार्यक्रम को पहुँचाने के लिए आशा, आंगनबाड़ी तथा ए०एन०एम० जैसे कार्यकर्ताओं का सहारा लिया गया है। ग्रामीण महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या उनके अन्दर शिक्षा का अभाव का होना है इसके लिए भी सरकार ने विभिन्न माध्यमों से उनको शिक्षित करने का प्रयास किया है। जिससे वे लागू की गयी योजनाओं को समझ सके तथा उसका लाभ उठा सके।

निष्कर्ष–

भारतीय समाज में आधुनिकता के असर तो दिखाई पड़ रहे है परन्तु इसके बाद भी समाज में स्त्री पुरुष के बीच एक असमानता दिखायी देती है, जहाँ पुरुषों को समाज में ज्यादा स्वतन्त्रता प्राप्त है। हर क्षेत्र में पुरुष स्वतन्त्र है वह अपनी मर्जी से अपने व्यवसाय का चुनाव कर सकता है। समाज में अपनी मर्जी से जी सकता है। दूसरे शब्दो में कहा जाय तो पुरुष स्वतन्त्र जीवन जी सकता है परन्तु वहीं महिलाओं के जीवन का प्रत्येक पक्ष पुरुषो के आदेश के अधीन है। स्त्रियों की यह समस्या ग्रामीण समाज में स्पष्ट रूप से देखने को मिल जाती है यहाँ तक कि यदि स्त्री शारीरिक रूप से बीमार है तो उसे कब और कहाँ इलाज कराना है यह सारी बातें घर के पुरूष तय करते हैं और स्त्रियों को उनके आदेश का पालन करना पड़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्ज की है। इसका सीधा असर उनके स्वास्थ्य पर पडता है। वाराणसी जिले की ग्रामीण महिलाओं के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि उदारवाद एवं वैश्विक परिकल्पना का स्वरूप यहाँ नहीं दिखायी पड़ रहा है। इस जिले में आज भी पारम्परिक और रूढ़िवादिता के आधार पर ही महिलाओं का स्वास्थ्य निर्भर करता है। आज भी यदि ग्रामीण महिलाओं को कोई स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्या होती है तो प्राथमिकता पारम्परिक उपचार को ही दिया जाता है। एक स्वस्थ्य राष्ट्र का निर्माण तभी हो सकता है जब उस राष्ट्र की महिलाएँ और बच्चे स्वच्छ, सुरक्षित और मानसिक रूप से स्वस्थ हो और सुदृढ़ हो। भारत जैसे देश में उत्तर प्रदेश जैसे राज्य यह बात और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है। क्योंकि आज भी 68 प्रतिशत आबादी गाँव में ही निवास करती है और उनका जीवन निर्वाह पारम्परिक तरीके से ही होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ सूची

- National Family Health Survey (NFHS-3), 2005-06: India. IIPS, Mumbai.
- Meenakshi Thapan (1997) "Linkages between Culture, Education and Women's Health in Urban Slums", Vol. 32, Issue No. 43, 26 J, 1997. Economic & political Weekly.
- Narayan, D. (2006) "Women Health in Rural Community of Kerala", Journal of Epidemiology and Community Health, 1-8.
- ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याएं और उनके कारण – डॉ. अजय कुमार (जर्नल ऑफ रूरल हेल्थ)
- स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) चरण–के क्रियान्वयन के दिशा निर्देश 2020: पेयजल एवं स्वच्छता विभाग जल शक्ति मंत्रालय भारत सरकार

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

वैश्वीकरण और कार्यशील माहिलाएं : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

कु . प्रगति पाण्डेय
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी,उत्तर प्रदेश
प्रो अमिता सिंह
समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी,उत्तर प्रदेश

सारांश
वैश्वीकरण ने महिलाओं के कार्य, समाज और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया हैं । इस अध्ययन में वैश्वीकरण के कारण कार्यशील महिलाओं की स्थिति, उनके रोजगार के अवसरों, चुनौतियों और सामाजिक बदलावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है । यह शोध पत्र द्वितीयक स्रोत पर आधारित है । जिसमें वर्णात्मक विश्लेषण के रूप में सहायक सामग्री का प्रयोग करते हुए अपनी शोध पत्र के अनुरूप दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया गया है । वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों में महिलाओं के लिए नए रोजगार के अवसर, आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और कौशल विकास में वृद्धि शामिल हैं । आईटी, बैंकिंग, स्वास्थ्य और सेवा क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति मजबूत हुई है । इसके अलावा, डिजिटल प्लेटफॉर्म और उद्यमिता के माध्यम से महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने का अवसर मिला है।
हालांकि, वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव भी हैं। जिसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता है ,जैसे - कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता, वेतन भेदभाव, अनौपचारिक क्षेत्र में श्रम अधिकारों की कमी और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं । इसके अलावा, महिलाओं को कार्य और पारिवारिक दायित्वों के बीच संतुलन बनाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा और सशक्तिकरण के लिए कई नीतियाँ लागू की हैं, जैसे कि मातृत्व लाभ अधिनियम, समान वेतन अधिनियम, और महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने वाली योजनाएँ।
इस अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि वैश्वीकरण ने महिलाओं के लिए नए अवसर तो प्रदान किए हैं, लेकिन साथ ही उनके समक्ष नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने के लिए ठोस नीतियों और सामाजिक समर्थन की आवश्यकता है।

मूल शब्द - वैश्वीकरण, कार्यशील महिलाएँ, आर्थिक स्वतंत्रता, लैंगिक असमानता, रोजगार के अवसर, श्रम शक्ति, उद्यमिता ।

भूमिका - वर्तमान वैश्वीकरण के युग में कार्यशील महिलाओं को किसी भी देश की आर्थिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण अंग माना जा रहा है । कार्यशील माहिलाएं न केवल स्वयं आत्मनिर्भर हुई है बल्कि अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के अर्थव्यवस्था में अपना पूर्ण योगदान दे रही है । घर के चहरदीवारी से बाहर निकाल महिलाओं का धन उपर्जन करना हमरे रूढ़िवादी समाज ने लिए हमेशा उपेक्षित विषय ही रहा है ।

भारतीय इतिहास के पन्नों में दर्ज़ है कि महिलाओं को सामाजिक दबाव**,** जाति के आधार पर भेदभाव और अन्य प्रकार की सामाजिक बाधाओं जैसे उत्पादक संसाधनों तक सीमित पहुंच, गरीबी, उन्नति के सीमित अवसर, लाचारी और बहिष्कार जैसी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। लेकिन हमरे धर्म ग्रंथों में महिलाओं को देवी का दर्जा दिया गया हैं शास्त्रों में कहा गया है कि "यत्र नार्यस्तु

पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" अर्थात जहां नारियों का सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं। वैदिककाल में महिलाओं की स्थिति अच्छी थी माहिलाएं शिक्षा, ज्ञान और सार्वजनिक जीवन में भाग लेती थीं, लेकिन मध्यकालीन भारत में उनकी स्थिति में गिरावट आई, जहाँ उन्हें समाज से बाहर रखने और घरेलू कामों तक सीमित रखा गया। स्वतंत्रता के बाद में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है और वे शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय और अन्य क्षेत्रों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। वैश्वीकरण के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति में ज्यादा सुधार देखने को मिला है।

वैश्वीकरणमें वीं शताब्दी के उत्तरार्ध20 महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में उभरा, मार्शल मैक्लुहान के अनुसार जिसने राजनीतिक सीमाओं को पार करते हुए सम्पूर्ण विश्व को एक वैश्विक ग्राम" में परिवर्तित कर दिया।" वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विभिन्न देशों के बीच अर्थव्यवस्थाओं, समाजों और संस्कृतियों को जोड़ती है, जिससे वस्तुओं, सेवाओं, सूचना, प्रौद्योगिकी और धन का आदान-प्रदान तेजी से होता है, यह परिवहन और संचार में प्रगति के कारण हुआ है। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और तकनीकी विकास के साथ विश्व समाज में जिस तीव्रता से बदलाव आया, उसने न केवल बाजार और व्यापार को प्रभावित किया, बल्कि समाज की बुनियादी संरचनाओं - जैसे वर्ग, जाति, लिंग और संस्कृति इन सभी पर भी गहरा प्रभाव डाला । वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप महिलाओं के लिए नई परिस्थितियों की एक विस्तृत श्रृंखला का उदय हुआ है**,** इस प्रक्रिया का प्रभाव विशेष रूप से महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक,और सांस्कृतिक भूमिकाओं पर पड़ा है। कार्यस्थलों पर उनकी बढ़ती भागीदारी, शिक्षा एवं तकनीकी क्षेत्र में उनकी उपस्थिति, तथा घरेलू से सार्वजनिक जीवन की ओर उनका स्थानांतरण, इन सबमें वैश्वीकरण की भूमिका को अनदेखा नहीं जा सकता हैं ।

हालाँकि, यह परिवर्तन पूरी तरह से समान रूप में नहीं हुआ है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों, संगठित और असंगठित क्षेत्र, तथा विभिन्न सामाजिक वर्गों में महिलाओं की स्थिति में असमानताएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते समय कई प्रमुख सिद्धांतों का उपयोग किया जा सकता है, जिनमें से कुछ विशेष रूप से प्रासंगिक हैं -

नारीवादी सिद्धांत - यह सबसे उपयुक्त सिद्धांत है क्योंकि यह लैंगिक असमानता, कार्यस्थल पर भेदभाव, महिला सशक्तिकरण और घरेलू-आर्थिक भूमिकाओं के द्वंद्व को समझने में सहायक होता है।

उदारवादी नारीवाद - समान अवसर, शिक्षा और रोजगार पर जोर देता है। वैश्वीकरण के साथ महिलाओं की बढ़ती भागीदारी को इस दृष्टिकोण से देखा जा सकता है।

मार्क्सवादी नारीवाद - यह पूंजीवाद और वर्ग शोषण के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति की व्याख्या करता है। वैश्वीकरण से श्रम का शोषण, विशेषकर निम्नवर्गीय महिलाओं का, इसके अंतर्गत समझा जा सकता है।

उत्तर-आधुनिक नारीवाद - यह पहचान, बहुलता और सांस्कृतिक विविधता पर बल देता है, जो वैश्वीकरण के विविध प्रभावों की व्याख्या करता है।

सामाजिक संरचनावाद - यह सिद्धांत समाज को एक संगठनात्मक ढाँचे के रूप में देखता है। वैश्वीकरण से परिवार और कार्य भूमिकाओं में आए परिवर्तन को समझने में मदद करता है, जैसे महिलाओं की आर्थिक भूमिका का बढ़ना और पारिवारिक संरचना में बदलाव।

साहित्य समीक्षा -

- जमील,और अन्य (2006)ने 'कारख़ाना में काम करने वाली महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन' से पता चलता है कि अविवाहित महिलाओं को कारखानों में नौकरी के लिए प्राथमिकता दी जाती है। ज्यादातर महिलाएं आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए कारखानों में काम करती हैं। विवाहित महिलाओं के लिए, बच्चों और घर की देखभाल करना एक बड़ी समस्या है। दूसरी ओर, अविवाहित लड़कियां अक्सर पुरुषों के बीच असुरक्षा और लोगों के नकारात्मक रवैये का सामना करने की बात करती हैं। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि कारखाने के मालिकों और सहकर्मियों का रवैया आम तौर पर अच्छा होता है,

लेकिन रिश्तेदारों और कुछ अन्य समाज के सदस्यों का रवैया नकारात्मक हो सकता है। यह भी पाया गया कि कई कामकाजी महिलाएं शिक्षित हैं, जो इस बात का संकेत है कि शिक्षित महिलाएं परिवार के आर्थिक बोझ को साझा करने के लिए काम करना चाहती हैं।

- प्रसाद चंद्रिका(2018) ने अपने शोध पत्र 'कामकाजी महिलाओं की सामाजिक ऍवं आर्थिक स्थिति एक समजशास्त्रीय अध्ययन' के निष्कर्ष में कहा है कि कामकाजी महिलाओं के अर्जनकारी होने के कारण उनकी पारिवारिक स्थिति में भी अंतर आया है। उन्हें अपनी आय को अपनी इच्छा से खर्च करने का अधिकार तो प्राप्त है, लेकिन वे अपनी आय को संयुक्त रूप से ही खर्च करती हैं, जिससे उनकी शक्ति संरचना में भी परिवर्तन होता है। अध्ययन के दौरान, 42.5% कामकाजी महिलाएँ 30 से 40 वर्ष की आयु की पाई गईं। इनमें से अधिकांश कामकाजी महिलाएँ सामान्य जाति की हैं और एकल परिवार का प्रतिनिधित्व करती हैं।
- वन्दना और अन्य(2018) में 'कामकाजी महिलाओं की प्रस्थिति एवं समस्याएँ : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' अध्ययन से स्पष्ट है कि सेवायोजित महिलाओं की स्थिति में पहले से काफी सुधार हुआ है। आज वे आत्मनिर्भर हैं तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं। शिक्षा एवं जागरूकता के कारण उनमें आत्मविश्वास बढ़ा है तथा वे प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों से प्रतिस्पर्धा करने को तत्पर हैं। परन्तु आज भी वे अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, यौन शोषण, असुरक्षा, लिंग विभेदीकरण, तनाव जैसी समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पायी हैं। अतः महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है जिससे वे एक बेहतर जीवन जी सकें।
- सिंह प्रतिमा (2019) ने अपने शोध पत्र 'वैश्वीकरण का अवधारणात्मक विकस व महिला सशक्तिकरण' मे निष्कर्ष निकलते हुए कहा की कि महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अभी भी बहुत कुछ किया जाना आवश्यक है, जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने कई प्रस्ताव रखे हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष समानता, समान वेतन, और महिलाओं को विभिन्न संसाधनों और अवसरों में बराबरी का हिस्सा सुनिश्चित करना शामिल है. वैश्वीकरण ने लैंगिक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान किया है, लेकिन इसका महिला सशक्तिकरण पर मिश्रित प्रभाव रहा है। वैश्वीकरण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें सुधार हुआ है, पर अभी भी अपेक्षित प्रगति बाकी है।
- बबीता (2019)ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि भारत में कार्यरत महिलाओं का समाज और अर्थव्यवस्था में योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी भागीदारी न केवल उनके परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करती है, बल्कि समाज में लैंगिक समानता को भी बढ़ावा देती है। हालांकि, उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कार्य-जीवन संतुलन, लैंगिक भेदभाव, कम वेतन, और कार्यस्थल पर सुरक्षा की कमी। अंततः कार्यरत महिलाओं का योगदान न केवल उनके व्यक्तिगत विकास के लिए बल्कि समाज और देश के समग्र विकास के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके सशक्तिकरण से ही एक संतुलित और प्रगतिशील समाज का निर्माण संभव है।
- कूपर प्रमिला (2020) ने भारत में विवाह और कामकाजी महिला लेख में बताई है की पत्नी के कामकाजी होने के प्रति पति - पत्नी के दृष्टिकोनों की प्रतिकूलता थी -चाहे यह प्रतिकूलता पत्नी के कामकाजी होने के कारण थी या पत्नी के कामकाजी होने के कारण उनके व्यवहार के ढ़ाचे एक - दूसरे के दृष्टिकोण के विरुद्ध रोष के रूप में थी-जो वैवाहिक कुसमंजस्य लाने के कारण बनी थी। दूसरी और पत्नी के कामकाजी होने से पति -पत्नी के दृष्टिकोण मे अनुकूलता थी ,जो कामकाजी पत्नियों के वैवाहिक मेल मिलाप बढ़ाने में सहायक पायी गई थी।
- जाट रामफुल (2022) ने अपने शोध पत्र 'कार्यशील माहिलाएं ऍवं पारिवारिक सामाजिक सामंजस्य' मे निष्कर्ष निकले है की वैश्वीकरण से महिलाओं की दोहरी भूमिकाओं के कारण उनके रिश्ते प्रभावित हुए हैं। कामकाजी महिलाओं को पारिवारिक

असामंजस्य और असहयोग के कारण दबाव और तनाव का सामना करना पड़ता है। उन्हें कार्यालय में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी कार्य क्षमता, दक्षता, आत्म-सम्मान और मानसिक शांति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसका असर उनके नियोक्ता और सहकर्मियों के साथ संबंधों पर भी पड़ता है। पारिवारिक माहौल और समाज में प्रचलित कार्य संस्कृति इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार है। आज, आधुनिकता, शिक्षा और पश्चिमीकरण के कारण लैंगिक समानता की दिशा में महिलाओं का काम करना जरूरी हो गया है, लेकिन भूमिका संघर्ष के कारण उनकी स्थिति अभी भी खराब है। इस असंतुलन के कारण तलाक के मामले बढ़ रहे हैं, और कई महिलाएं एकल माता-पिता की भूमिका निभा रही हैं, जिसका बच्चों के समाजीकरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। समाज में बदलाव की आवश्यकता है ताकि कामकाजी महिलाएं समानता का अनुभव कर सके।

अध्ययन का उद्देश्य

1.यह जानना कि वैश्वीकरण ने महिलाओं की कार्य स्थिति को कैसे प्रभावित किया है।

2. वैश्वीकरण का कार्यशील महिला पर सकरात्मक और नकरात्मक प्रभाव को जाना है।

शोध पद्धति - यह शोध पत्र गुणात्मक शोध पद्धति और द्वितीयक स्रोत पर आधारित है। जिसमें पत्र -पत्रिकाएं ,पुस्तकें और प्रकाशित व अप्रकाशित रेपोर्टों आदि का उपयोग किया गया है। शोध पत्र में वर्णात्मक विश्लेषण के रूप में सहायक सामग्री का प्रयोग करते हुए अपनी शोध पत्र के अनुरूप दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

वैश्वीकरण - ये शब्द 1980 के दशक के बाद से मीडिया द्वारा एक लोकप्रिय चर्चा का विषय बना। वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दुनिया के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक,राजनीतिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध मजबूत होते हैं। इसका मतलब है की विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था,बाजार,समाज और सांस्कृतिक एक - दूसरे पर निर्भर हैं। दूसरे शब्दों मे कहे तो वैश्वीकरण एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है जो राजनीति, अर्थव्यवस्था ,समाज और संस्कृति जैसे क्षेत्रों को शामली करती है।

एथनी गिडेन्स ने The consequences of modernity में वैश्वीकरण को विश्वव्यापी सामाजिक संबंधों की गहनता के रूप में परिभाषित किया। **डेविड हार्वे** इसे 'टाइम स्पेस कंप्रेशन' के रूप में पररिभाषित किया है। वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषता है - क्षेत्रीयता के परे ,अन्तरसंबंध ,गति,दीर्घकालीन प्रक्रिया ,अर्थव्यवस्था का उदारीकरण ,तकनीकी क्रांति ,लिंग आधारित भूमिकाओं मे परिवर्तन और बहुस्तरीय प्रक्रिया इत्यादि ।

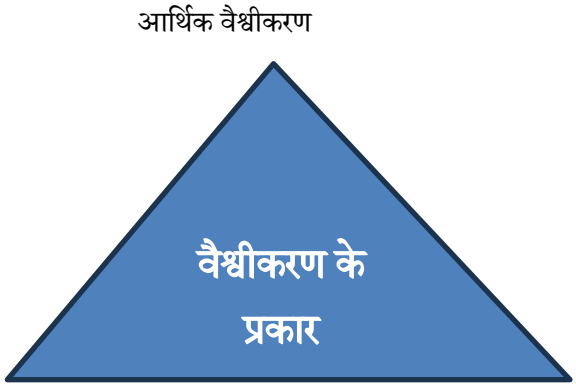

कार्यशील महिला - कार्यशील महिला शब्द को सुनकर समयतः नौकरी करने वाली महिला की छवि उभरती है। समाज की सामान्य धारणा के अनुसार , वह महिला जो नौकरी करती है किसी अन्य प्रकार की आर्थिक गतिविधियों मे भाग लेती है उसे कार्यशील महिला , है। अर्थात कार्यशील माहिलाएं घर के बाहर कहा जाता नियमित रूप से आर्थिक व व्यवसायकी गतिविधियों में भाग लेती हैं ।कपूर ने मे कार्यशील महिला का प्रयोग प्रायः नौकरी करने वाली महिला के लिए किया था। कार्यशील 1976महिला का तात्पर्य ऐसी महिला से है जिसे किसी भी प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक कार्य के बदले आर्थिक मूल्य प्राप्त होता है। कार्यशील महिलाओं की सामाजिक स्थिति अच्छी होती है का तात्पर्य महिला को उसके कार्यों के आधार पर समाज में प्राप्त प्रतिष्ठा से है ,।

कार्यशील महिला की विशेषता –

- आर्थिक रूप से सक्रिय
- पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह
- आत्मनिर्भर और स्वतंत्र
- सकारात्मक दृष्टिकोण

भारत में कार्यशील महिलाओं की स्थिति

भारत में कार्यशील महिलाओं की स्थिति मिश्रित है। एक तरफ, कई महिलाएं शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं, जबकि दूसरी तरफ, कई महिलाएं अभी भी सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रही हैं।

भारत में महिलाओं की कार्य शक्ति भागीदारी)Female Labour Force Participation - FLFP) एक जटिल सामाजिक,सांस्कृतिक और आर्थिक संरचना से प्रभावित होती रही है। हाल के दशकों में वैश्वीकरण के चलते कुछ क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि तो हुई है, किंतु समग्र रूप से यह भागीदारी असंतुलित और असमान रही है। भारत में महिला श्रम बल भागीदारी दर (FLFP) 41.7% है, (पीएलएफएस 2023-24, यह 2017-18 में 23.3% थी, जो 2023-24 में बढ़कर 41.7% हो गई है।

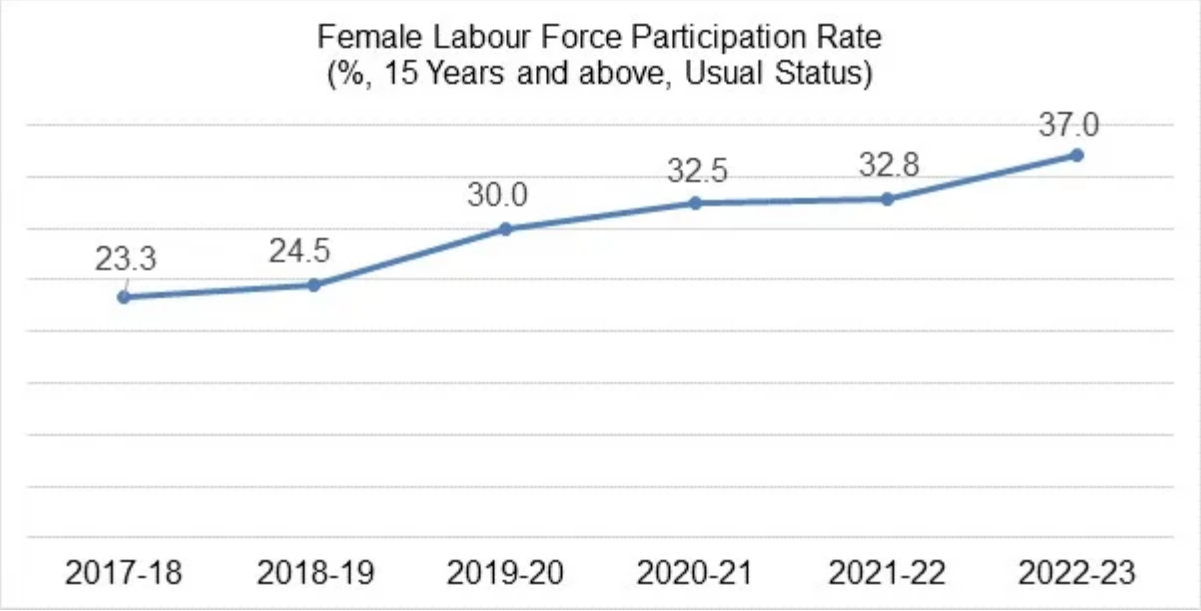

स्रोत - https://hindicurrentaffairs.adda247.com/female-labour-force-participation-rate

संगठित और असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति

संगठित और असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को वेतन, सामाजिक सुरक्षा, मातृत्व अवकाशऔर स्वास्थ्य बीमा जैसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं तथा कार्यस्थल अपेक्षाकृत सुरक्षित होता है, हालांकि उन्हें अब भी लैंगिक भेदभाव और पदोन्नति में 'ग्लास सीलिंग' जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत, असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएँ अत्यधिक असुरक्षित परिस्थितियों में कार्य करना होता हैं, जहाँ उन्हें न्यूनतम मजदूरी तक नहीं मिलती, सामाजिक सुरक्षा का पूर्ण अभाव होता है और शोषण की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है। वे घरेलू ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ आर्थिक दबाव भी झेलती हैं, जिससे उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः दोनों क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में असमानता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

संगठित क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी कम है जबकि असंगठित क्षेत्र में इनकी भागीदारी अधिक है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, 2011 में संगठित क्षेत्र में 20.5% महिलाएं थीं, जबकि असंगठित क्षेत्र में इनकी संख्या 97% थी। संगठित क्षेत्र में भी, महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है और वे विभिन्न प्रकार के भेदभाव का शिकार होती है। असंगठित क्षेत्र में, महिलाएं मुख्य रूप से अकुशल श्रमिक के रूप में काम करती हैं और उन्हें कम वेतन मिलता है।

कार्यशील महिला के लिए सामाजिक अवरोध - कार्यशील महिलाओं को निम्नलिखित सामाजिक अवरोधों का सामना करना पड़ता है जैसे -पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएं , पितृसतात्मक सोच ,घरेलू दायित्व का दबाव ,सामाजिक सुरक्षा की कमी ,कार्यस्थल पर भेद -भाव ,आर्थिक निर्भरता की सामाजिक स्वीकृति और दोहरी भूमिका का निर्वहन आदि।

वैश्वीकरण का कार्यशील महिलाओं पर प्रभाव: वैश्वीकरण ने कार्यशील महिलाओं के जीवन को कई स्तरों पर प्रभावित किया है। एक ओर यह प्रक्रिया महिलाओं के लिए नए अवसरों और सशक्तिकरण का माध्यम बनी, तो दूसरी ओर इसने असमानता, असुरक्षा और शोषण के नए रूप भी सामने लाए।वैश्वीकरण का महिलाओं पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव देखा जा सकता हैं। जो अग्रलिखित है -

1. सकारात्मक प्रभाव

रोजगार के नए अवसर- वैश्वीकरण के बाद आईटी, बीपीओ, बैंकिंग, टेलीकम्युनिकेशन, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे सेवा क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

आर्थिक स्वतंत्रता- कार्य में भागीदारी से महिलाओं को आत्मनिर्भरता मिली है, जिससे उनका निर्णय लेने का अधिकार और पारिवारिक भूमिका भी मजबूत हुई है।

शिक्षा और तकनीकी कौशल में वृद्धि- वैश्वीकरण के प्रभाव से महिलाओं में उच्च शिक्षा, कंप्यूटर ज्ञान और डिजिटल साक्षरता के प्रति रुझान बढ़ा है

उद्यमिता में बढ़ोतरी- महिलाएँ स्टार्टअप्स, होम-बेस्ड बिजनेस और ऑनलाइन उद्यमिता की ओर अग्रसर हुई हैं।

सांस्कृतिक बदलाव-पारंपरिक लिंग भूमिकाओं को चुनौती मिल रही है। परिवार और समाज में महिलाओं की भूमिका को लेकर सोच में परिवर्तन हो रहा है।

2- नकारात्मक प्रभाव

असंगठित क्षेत्र में महिलाओं का शोषण- वैश्वीकरण के कारण असंगठित क्षेत्रों का विस्तार हुआ, जिसमें महिलाएँ कम वेतन, अनिश्चित रोजगार और न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा के साथ कार्य कर रही हैं।

लैंगिक वेतन असमानता- संगठित क्षेत्र में भी महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है, चाहे कार्य और योग्यता समान हो।

कार्यजीवन में असंतुलन - वैश्वीकरण के साथ प्रतिस्पर्धा और कार्यभार बढ़ा है, जिससे महिलाओं को घरेलू और व्यावसायिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाना कठिन हो गया है।

सांस्कृतिक संघर्ष- आधुनिकता और परंपरा के बीच फंसी महिलाएँ सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के द्वंद्व से गुजरती हैं।

कार्यस्थलों पर असुरक्षा- यद्यपि कार्यस्थल पर महिला सुरक्षा के लिए कानून बने हैं (जैसे POSH Act 2013), फिर भी यौन उत्पीड़न और भेदभाव की घटनाएँ सामने आती रही है।

निष्कर्ष - वैश्वीकरण का कार्यशील महिलाओं पर एक मिश्रित प्रभाव पड़ा है। एक ओर जहां इसने महिलाओं को नई आर्थिक संभावनाएँ, स्वरोजगार के अवसर और कार्यस्थलों पर उपस्थिति बढ़ाने का अवसर प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर इससे उत्पन्न प्रतिस्पर्धा, कार्यदबाव, अस्थायी रोजगार, असमान वेतन तथा पारिवारिक-कार्य संतुलन की चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

यह अध्ययन दर्शाता है कि शहरी क्षेत्रों की महिलाएँ वैश्वीकरण से अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित हुई हैं, जबकि ग्रामीण और निम्नवर्गीय महिलाएँ अभी भी सामाजिक पूर्वग्रहों और संसाधनों की कमी से जूझ रही हैं। इसके अतिरिक्त, कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, असुरक्षा और कार्य की अनिश्चितता जैसी समस्याएँ भी बनी हुई हैं।

इस प्रकार, वैश्वीकरण का प्रभाव कार्यशील महिलाओं पर दोहरा रहा है—एक ओर यह सशक्तिकरण का माध्यम बना है, तो दूसरी ओर नई सामाजिक व आर्थिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। आवश्यकता इस बात की है कि नीतिगत स्तर पर ऐसे प्रयास किए जाएँ जो महिलाओं के लिए सुरक्षित, समान और स्थायी कार्य के अवसर सुनिश्चित करें तथा उन्हें वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भागीदारी के लिए सक्षम बनाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- जाट रामफुल (2022 ,कार्यशील माहिलाएं ऍवं पारिवारिक सामाजिक सामंजस्य इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च ,8(4) 2394-7500.
- अल्टेकर, ए० एस० (1956), पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली .
- कपूर, प्रमिला (1985), द चेंजिंग स्टेटस ऑफ द वर्किंग वीमेन इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली.
- माथुर, दीपा (1992), वीमेन, फैमिली एण्ड वर्क ऑर्गेनाइजेशन्स, कंचन पब्लिशर्स, जयपुर.
- श्रीवास्तव, सुधीर कुमार (1985), महिला सशक्तिकरण में महिलाओं की भूमिका, समाज कल्याण, अंक-12.
- व्यास, मीनाक्षी (2002), मध्यम एवं निम्न वर्गीय स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति, आस्था प्रकाशन, जयपुर.
- प्रसाद चंद्रिका (2018), महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (पटना शहर) ,आर्यावर्त शोध विकाश पत्रिका *9*(II), 96-98.
- वन्दना और अन्य(2018) में 'कामकाजी महिलाओं की प्रस्थिति एवं समस्याएँ : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च ,7(3) 2394-7500.
- सिंह प्रतिमा (2019) ,वैश्वीकरण का अवधारणात्मक विकस व महिला सशक्तिकरण,इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च ,7(3) 2394-7500.
- कपूर प्रमिला (2020),भारत में विवाह और कामकाजी महिला ,समय से संवाद :21 कामकाजी महिला ,अनन्य प्रकाशन दिल्ली .

- पाण्डेय, प्रतिभा (2007),भारतीय स्त्रीः दशा और दिशा , योजना पत्रिका, फरवरी.
- Jamil, F., Batool, Z., Saif-Ur-Rehman, Azeem, W., & Jamal, S. (2006), A Sociological Study of Factory Working Women: A Case Study of Faisalabad City. *Journal of Agriculture & Social Sciences*, *2*(1), 20-22.
- परमार शुभा ,(2015),नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार ,ओरिएंट ब्लैकस्वान दिल्ली .

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

समाजशास्त्र और खेल का समाजशास्त्र

डॉ संतोष कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
समता स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सादात, गाज़ीपुर

शोध सारांश–

खेल आधुनिक विश्व को समझने का एक महत्वपूर्ण साधन हैं।इसके द्वारा स्त्री–पुरुष, मलिक–मजदूर और आधुनिकता के संबंधों को आसानी से समझा जा सकता हैं। आधुनिक प्रजातंत्रात्मक समाज में सक्रिय रूप से भागीदारी निभाने के लिए खेल को एक संस्था के रूप में और संस्कृति के एक लक्षण के रूप में समझना आवश्यक हैं। अमेरिका जैसे विकसित समाजों और भारत जैसे विकासशील समाजों में खेल आजकल अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक बड़े व्यापार, लोकप्रिय संस्कृति और राजनीतिक महत्व का एक जरिया बन गया हैं। इसने सभी जगह एक राष्ट्रीय संस्कृति के उदय करने में महती भूमिका अदा की हैं। यही नहीं,यह हमारे रोजमर्रा के जीवन के लगभग सभी क्षेत्र में छा गए हैं। इसके संप्रेषण का अपना माध्यम है जिनकी अंतरराष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय संबंधों के ताने–बाने को निर्मित करने में अपनी एक भूमिका हैं। यही कारण है कि समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के अध्ययन का यह एक महत्वपूर्ण विषय हैं। खेल के समाजशास्त्र में मानवीय खेल के इतिहास,सिद्धांत, व्यवहार और संस्था का अध्ययन किया जाता हैं। खेलों के अलावा केलीकल्लोल, मनोविनोद, मनोरंजन अवकाश जैसे कई विविध विषयों के साथ भी इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध होता हैं। यही नहीं, आधुनिक खेलकूद कई विभिन्न रूप में व्यापार, युद्ध, हिंसा, शिक्षा, नैतिक चरित्र और अंतरराष्ट्रीयवाद से भी जुड़े होते हैं। अतः पिछले कुछ वर्षों से खेल के समाजशास्त्र से संबंधित विषयों के अध्ययन की लोकप्रियता बढ़ती जा रही हैं।इस क्षेत्र में आजकल कई लोग कई विभिन्न विषयों पर शोध कर रहे हैं।

अवधारणात्मक परिचय

खेल के समाजशास्त्र से तात्पर्य समाजशास्त्र की ऐसी शाखा से हैं जो खेलों को सामाजिक घटना के रूप में देखती हैं। यह खेल और समाज के बीच संबंधों, खेलों से जुड़े सामाजिक–सांस्कृतिक ढांचे, खेलों के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्रभावों का अध्ययन करती है। खेल का समाजशास्त्र, जिसे वैकल्पिक रूप से खेल समाजशास्त्र के रूप में भी जाना जाता है, समाजशास्त्र का एक उप–विषय है जो सामाजिक घटना के रूप में खेलों पर ध्यान केंद्रित करता है। यह समाजशास्त्र और खेल के बीच संबंधों से संबंधित अध्ययन का एक क्षेत्र है। साथ ही यह खेल से जुड़े विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक ढांचें, प्रतिमान, संगठन या समूह का प्रतिरूप भी हैं। अध्ययन का यह क्षेत्र समूह के व्यक्तियों और समाज पर आर्थिक, वित्तीय और सामाजिक रूप से खेलों के सकारात्मक प्रभाव पर चर्चा करता हैं। खेल का समाजशास्त्र एक समाजशास्त्री की नज़र से खेल की टीमों और उनके खिलाड़ियों के कार्यों और व्यवहार को देखने का प्रयास करता हैं।[1]

खेल के समाजशास्त्र के उद्भव की वैचारिक पृष्ठभूमि–

खेल के समाजशास्त्र के अध्ययन का उद्भव 19वीं शताब्दी के अंत से शुरू हुआ, जब प्रतियोगिता और गति–निर्माण के समूह प्रभावों से निपटने वाले पहले सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए। वस्तुतः सांस्कृतिक नृविज्ञान और मानव संस्कृति में खेलों में इसकी रुचि के अतिरिक्त, खेलों के बारे में अधिक सामान्य तरीके से अध्ययन करने वाले अग्रणी विद्वानों में जोहान हुइज़िंगा का होमो लुडेंस एवं थोरस्टीन वेब्लेन का लीज़र क्लास का सिद्धांत प्रथमतया विकसित हुआ था । होमो लुडेंस संस्कृति और समाज में खेल के तत्व के महत्व पर चर्चा करता है। हुइज़िंगा सुझाव देते हैं कि खेल संस्कृति वस्तुतः वर्तमान की पीढ़ी के लिए प्राथमिक और आवश्यक शर्त है । ऐसे ही अनेक लिखित कार्यों ने एक विषय के रूप में खेल के समाजशास्त्र के उद्भव में योगदान दिया। 1970 में, खेल के समाजशास्त्र ने अध्ययन के एक संगठित एवं वैध क्षेत्र के रूप में समाजशास्त्रीय जगत में अपना ध्यान समाजशास्त्रीयों की ओर आकर्षित किया।[4]

खेल के समाजशास्त्र का सैद्धांतिक स्वरुप –

खेल के समाजशास्त्र के अंतर्गत मुख्य रूप से चार प्रकार सैद्धांतिक स्वरूपों का प्रतिपादन किया गया है–

1. प्रकार्यवादी सिद्धांत
2. संघर्ष सिद्धांत
3. अंतःक्रियावादी सिद्धांत
4. नारीवादी सिद्धांत।

विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु उपरोक्त चारों सैद्धांतिक स्वरूपों का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है–

1. प्रकार्यवादी सिद्धांत–

प्रकार्यवादी सिद्धांत प्रत्येक खेल को पूरी दुनिया में उसके योगदान के रूप में विश्लेषित करता है। इस सिद्धांत का उपयोग करते हुए समाजशास्त्रीय शोध व्यक्ति और समाज दोनों के लिए खेलों के सकारात्मक परिणामों पर अपना ध्यान केंद्रित करते है। इस सिद्धांत के समर्थक विचारक संगठित खेलों के विकास और वृद्धि के अध्ययन पर बल देते हैं।

2. संघर्ष सिद्धांत–

संघर्ष सिद्धांत इस तथ्य पर बल देता है कि समाज आर्थिक ताकतों द्वारा निर्मित होता है और खेलों का अध्ययन पूंजीवादी विस्तार और आर्थिक शोषण के संदर्भ में किया जाना चाहिए। समाजशास्त्री प्रायः इस सिद्धांत का उपयोग इस बात पर प्रकाश डालने के लिए करते हैं कि खेल किस तरह समाज के मौजूदा अभिजात वर्ग के विशेषाधिकार और शक्ति को कायम रखते हैं। हालाँकि, इस सिद्धांत का उपयोग शायद ही कभी सांसारिक खेल प्रवचन में किया जाता है क्योंकि यह खेलों को एक अफीम के रूप में चित्रित करता हैं,जो सामाजिक मुद्दों के बारे में जागरूकता को कम करता है। इस सिद्धांत में एक कमी यह भी है कि यह केवल सामाजिक जीवन के आर्थिक निर्धारण पर जोर देता है और यह स्वीकार करने में विफल रहता है कि खेलों में भागीदारी सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से सशक्त बनाने वाला अनुभव भी हो सकता है।

3. अंतःक्रियावादी सिद्धांत–

अंतःक्रियावादी सिद्धांत इस तथ्य पर अपना ध्यान केंद्रित करता है कि खेलों और संस्कृतियों के साथ भागीदारी और अंतःक्रिया के कारण लोगों की पहचान कैसे बनाई जाती है और बनायी रखी जाती है। इस दृष्टिकोण से खेलों का अध्ययन करने वाले समाजशास्त्रियों का उद्देश्य खेल संघों को कम निरंकुश बनाना,अधिक लोकतांत्रिक बनाना और खेलों के पदानुक्रमित संगठन की निंदा करना है।[7]

4. नारीवादी सिद्धांत–

नारीवादी शोध के अध्ययन का केंद्र बिंदु यह हैं कि कैसे खेल कामुकता, शारीरिकता और शरीर से संबंधित लिंग आधारित विचारों और प्रथाओं को पुनरुत्पादित करते हैं।

खेल के समाजशास्त्र के अध्ययन का उद्देश्य –

खेल के समाजशास्त्र उद्देश्य को निम्नलिखित बिंदुओं में वर्गीकृत किया जा सकता हैं–

1. लोगों के जीवन और उनके द्वारा निर्मित समाज में खेल की भूमिका, कार्य और अर्थ की आलोचनात्मक जांच करना।
2. समय के साथ एवं विभिन्न समाजों में खेल के उद्भव और प्रसार का वर्णन एवं व्याख्या करना।
3. आधुनिक खेल के अंदर, उसके माध्यम से और उसके बाहर समाजीकरण की प्रक्रियाओं की पहचान करना।

खेल के समाजशास्त्र में वैचारिक और सैद्धांतिक मुद्दे –

1980 के दशक के मध्य तक खेल के समाजशास्त्र में अधिकांश शोध दो मान्यताओं पर आधारित थे। सबसे पहले, खेल को अन्य प्रमुख सामाजिक संस्थाओं के समान एक सामाजिक संस्था माना जाता था। दूसरे, खेलों को संस्थागत प्रतिस्पर्धी गतिविधियाँ माना जाता था जिसमें शारीरिक परिश्रम और व्यक्तिगत आनंद और बाहरी पुरस्कारों के संयोजन से प्रेरित व्यक्तियों द्वारा शारीरिक कौशल का उपयोग शामिल होता है। इन वैचारिक मान्यताओं ने खेल के समाजशास्त्र के केंद्र बिंदु की पहचान की और सामाजिक सिद्धांत और अनुसंधान के पारंपरिक मापदंडों के भीतर खेल पर सिद्धांत और अनुसंधान की वरीयता को रखा।

इन मान्यताओं पर आधारित सिद्धांत और शोध जानकारीपूर्ण थे। हालाँकि, इस क्षेत्र के कई विद्वानों ने महसूस किया कि जब विश्लेषणात्मक ध्यान संस्थागत और प्रतिस्पर्धी गतिविधियों पर केंद्रित होता है, तो ऐसे लोगों के जीवन को अनदेखा करने की प्रवृत्ति होती है जिनके पास न तो अपनी शारीरिक गतिविधियों को औपचारिक रूप से व्यवस्थित करने के लिए संसाधन होते हैं और न ही उन्हें प्रतिस्पर्धी बनाने की इच्छा होती है। विद्वान इस संभावना के प्रति संवेदनशील हो गए कि यह प्रवृत्ति सामाजिक संगठन के उन विचारधाराओं और रूपों को मजबूत कर सकती है, जिन्होंने समकालीन समाजों में लोगों के कुछ श्रेणियों और समूहों को वंचित किया है। इसने कुछ विद्वानों को समाज में विवादित गतिविधियों के रूप में खेलों के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया। नतीजतन, उनका शोध खेल, शक्ति और विशेषाधिकार की प्रणालियों के बीच संबंधों और समाज में खेल क्या हो सकते हैं और क्या होने चाहिए, इसके निर्धारण में अधिक लोगों को शामिल करने के लिए आवश्यक परिवर्तनों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने लगा है।

इन विद्वानों ने खेलों को परिभाषित करने के लिए एक वैकल्पिक दृष्टिकोण का उपयोग किया जो दो प्रश्नों के इर्द–गिर्द घूमता थारू समूह या समाज में किसको खेल माना जाता है? और किसके खेल को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है ? इन सवालों ने उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों पर अधिक सीधे ध्यान केंद्रित करने के लिए मजबूर किया जिसमें शारीरिक गतिविधियों और सामाजिक प्रक्रियाओं के बारे में विचार बनते हैं जो शारीरिक गतिविधियों के कुछ रूपों को विशेषाधिकार देते हैं। जिन लोगों ने इस दृष्टिकोण का उपयोग किया है, उन्होंने लोगों द्वारा खेलों की पहचान करने और उन्हें अपने जीवन में शामिल करने के तरीके में कई सांस्कृतिक अंतरों को भी देखा है। सहकारी संबंधों पर जोर देने वाली संस्कृतियों में, यह विचार कि लोगों को पुरस्कारों के लिए प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए, अनैतिक नहीं तो विघटनकारी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, और प्रतिस्पर्धा पर जोर देने वाली संस्कृतियों के लोगों के लिए, शारीरिक

गतिविधियाँ और ऐसे खेल जिनमें कोई विजेता नहीं होता, वे निरर्थक लग सकते हैं। ये सांस्कृतिक अंतर महत्वपूर्ण हैं क्योंकि खेलों के अर्थ, उद्देश्य और संगठन के बारे में कोई सार्वभौमिक सहमति नहीं है। इसी तरह, इस बारे में कोई सामान्य सहमति नहीं है कि कौन खेलों में भाग लेगा, किन परिस्थितियों में भागीदारी होगी, या कौन खेलों को प्रायोजित करेगा या प्रायोजन के कारण क्या हैं। खेलों का अध्ययन करने वाले विद्वानों द्वारा अब यह व्यापक रूप से माना जाता है कि ये कारक समय के साथ समूह दर समूह और समाज दर समाज में भिन्न–भिन्न रहे हैं और समाजशास्त्रीय शोध को इस संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि किसी विशेष समूह या समाज में किसी विशेष समय पर खेलों के बारे में किसके विचार प्रमुख हो जाते हैं। इसने बदले में खेल के समाजशास्त्र में सिद्धांत और अनुसंधान में संस्कृति और शक्ति संबंधों के मुद्दों को उजागर किया है।

खेल में समाजशास्त्र का महत्व–

खेलों का समाजशास्त्र समाजशास्त्र का एक ऐसा क्षेत्र है जो खेलों को सामाजिक दृष्टिकोण से देखता है। खेलों को सामाजिक दृष्टिकोण से देखना अप्रासंगिक हो सकता है, लेकिन खेलों के विभिन्न क्षेत्रों के सामाजिक पहलुओं को समझने से खेलों में समाजशास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका का पता चलता है। मैं इस क्षेत्र में आम तौर पर पाए जाने वाले कुछ द्विआधारी विभाजनों पर प्रकाश डालते हुए खेलों में समाजशास्त्र के महत्व पर संक्षेप में चर्चा करूँगा।

खेल प्रतिभागियों के बीच सामाजिक संबंधों को समझना समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से खेलों का अध्ययन करने की आवश्यकता का आधार है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से खेलों के अध्ययन में सामान्य द्विआधारी विभाजन इस क्षेत्र के महत्व को उजागर करते हैं। उदाहरण के लिए, शौकिया और पेशेवर के बीच साझा संबंधों का अध्ययन और विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

यह सामाजिक संबंध एक नेता और अनुयायी के बीच साझा सामाजिक संपर्क के समान है। शौकिया व्यक्ति पेशेवर के साथ सामाजिक संपर्क (खेलों में भाग लेना) करके खेल कौशल विकसित करता है जो संरक्षक के रूप में कार्य करता है। दोनों पक्षों के बीच स्थापित सामाजिक संबंध केवल शारीरिक प्रतिस्पर्धी गतिविधि से परे होते हैं और दोनों पक्षों द्वारा उनकी बातचीत से अनुभव किए गए परिवर्तन गतिविधि में समाजशास्त्र की उपस्थिति को प्रकट करते हैं।

खेल समाजशास्त्र के महत्व की गहरी समझ उन सामाजिक चरों की खोज के माध्यम से प्राप्त की जाती है जो खेल गतिविधियों में स्पष्ट हैं। खेलों द्वारा बनाए गए गुरु/शिक्षार्थी संबंधों की जांच करने के अलावा, इस अनुशासन का एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र खेलों में लैंगिक मुद्दों की उपस्थिति है। लैंगिक मुद्दे समाजशास्त्र के लिए केंद्रीय विषय हैं क्योंकि यह अनुशासन समाज के विभिन्न पहलुओं में पुरुषों और महिलाओं के खेलों के अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्र का उपयोग भूमिकाओं के रूप में परिभाषित करता है। किसी खेल या कुछ खेलों में महिलाओं की भागीदारी का अध्ययन खेल समाजशास्त्र का एक ऐसा पहलू है जिस पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। यह तथ्य कि महिलाएँ कुछ खेलों में कम शामिल हैं।यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका समाधान केवल समाजशास्त्र और खेलों को मिलाकर ही किया जा सकता है।

खेल के समाजशास्त्र को समाज पर खेलों के प्रभाव के व्यापक दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। समकालीन समाज ने विभिन्न खेल गतिविधियों और आयोजनों के प्रति अलग–अलग प्रतिक्रिया व्यक्त की है। खेल के बड़े आयोजनों को सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आयोजनों के रूप में वर्णित किया जा सकता है,

जिनका गहन अपील, व्यापक स्वीकृति और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्व होता है। यह स्पष्ट है कि खेल गतिविधियाँ अरबों व्यक्तियों तक प्रचार संदेश पहुँचाने का एक साधन हैं।

खेलों के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र का उपयोग –

दुनिया भर के समाजों में संगठित खेलों के पहले उदाहरण संभवतः शारीरिक गतिविधियों और धार्मिक अनुष्ठानों के विभिन्न संयोजनों के रूप में सामने आए (गुटमैन 1978)। वे खेल अपने समाजों में सामाजिक संरचनाओं, सामाजिक संबंधों और विश्वास प्रणालियों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। हालाँकि वे अक्सर सत्ता संबंधों और प्रमुख विचारधाराओं की मौजूदा प्रणालियों को फिर से बनाते और पुष्टि करते थे, लेकिन कभी–कभी वे प्रतिरोधी या विरोधी व्यवहारों के लिए जगह के रूप में काम करते थे। शारीरिक गतिविधियों और खेलों के रूपों और गतिशीलता में विविधता यह संकेत करती है कि वे सांस्कृतिक प्रथाएं हैं जो विभिन्न सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। शारीरिक गतिविधियाँ जिन्हें अधिकांश समाजशास्त्री ''आधुनिक खेल'' के रूप में पहचानते हैं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में युक्तिकरण, औद्योगिकीकरण, लोकतंत्रीकरण और शहरीकरण प्रक्रियाओं के संयोजन के संबंध में उभरी हैं। जैसे–जैसे शारीरिक गतिविधियों और खेल के विभिन्न रूपों को संस्थागत, प्रतिस्पर्धी, नियम–संचालित चुनौतियों और खेलों के रूप में निर्मित किया गया, वे समाजों में कई प्रक्रियाओं और संरचनाओं से जुड़ गए। अलग–अलग सेटिंग्स में अलग–अलग डिग्री तक, ''संगठित खेल'' सामाजिक विकास और पारिवारिक जीवन की संरचना, समाजीकरण और शिक्षा, पहचान निर्माण और सरकारी नीति, वस्तुकरण और अर्थव्यवस्था, और वैश्वीकरण और मीडिया की प्रक्रियाओं में शामिल थे। आज, खेल अधिकांश समाजों के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक ताने–बाने का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।[13]

सांस्कृतिक प्रथाओं के रूप में, संगठित खेल लोगों के जीवन और समूहों, संगठनों, समुदायों और समाजों में सामूहिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनते जा रहे हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक ध्यान आकर्षित करने के अलावा, वे सामाजिक वर्ग, लिंग, जाति और जातीयता, कामुकता और शारीरिक क्षमता से जुड़े शक्ति संबंधों और वैचारिक गठन में शामिल हैं। क्योंकि खेल सामाजिक निर्माण हैं, वे शरीर और मानव प्रकृति, लोगों को एक–दूसरे से कैसे संबंधित होना चाहिए, अभिव्यक्ति और क्षमता, मानव योग्यता और क्षमता, पुरुषत्व और नारीत्व, और जीवन में क्या महत्वपूर्ण और महत्वहीन है, के बारे में विशेष विचारों के आसपास विकसित हो सकते हैं। ये विचार आमतौर पर समाज में प्रमुख विचारधारा का समर्थन और पुनरुत्पादन करते हैं, लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता है। विचारधारा जटिल है; इसलिए, खेल और वैचारिक गठन और परिवर्तन के बीच संबंध कभी–कभी असंगत या विरोधाभासी भी होते हैं।

निष्कर्ष–

उपरोक्त समस्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कर सकते हैं कि खेल का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक उप शाखा है जिसके अंतर्गत खेल और समाज के बीच सामाजिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है एवं सामाजिक एकरूपता को बनाए रखने में खेल के महत्व की एक समझ आम जनमानस के सामने प्रस्तुत की जाती है समाज को समझने के लिए खेल का समाजशास्त्र अपनी अपनी एक नवीन दृ ष्टि समाज को देता है जिसके माध्यम से हम समाज को एकीकृत करने और वैज्ञानिक अध्ययन करने में सक्षम हो पाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Brohm, Jean-Marie (1978) Sport—A Prison of Measured Time, trans. I. Frasier. London: Ink Links.

2. Coakley, J. (1990) Sport in Society: Issues and Controversies, (4th ed.). St. Louis: Mosby.
3. Coakley, J., (1998) Sport in Society: Issues and Controversies, 6th ed. New York: McGraw-Hill.
4. Coakley, J., and P. Donnelly, eds. (1999) Inside Sports. London: Routledge.
5. Coakley, J., and P. Donnelly, eds. (2000) Handbook of Sport and Society. London: Sage.
6. Donnelly, P. (2000) ''Interpretive Approaches to the Sociology of Sport.'' In J. Coakley and E. Dunning. Eds., Handbook of Sport and Society. London: Sage.
7. Dunning, E., ed. (1971) The Sociology of Sport. London: Cass.
8. Dunning, E. (1992) ''Figurational Sociology and the Sociology of Sport: Some Concluding Remarks.'' In E. Dunning, and C. Rojek, eds., Sport and Leisure in the Civilizing Process. Toronto: University of Toronto Press.
9. Edwards, H. (1969) The Revolt of the Black Athlete. New York: Free Press.
10. Elias, N. (1978) The Civilizing Process, vol. 1: The History of Manners. Oxford, UK: Blackwell.
11. Elias, N., and E. Dunning, eds. (1986) Quest for Excitement: Sport and Leisure in the Civilizing Process. Oxford, UK: Blackwell.
12. Gramsci, A. (1971) Selections from the Prison Notebooks, trans. And ed. Q. Hoare and G. Smith. New York: International Publishers.
13. R. (1999) Class, Sports, and Social Development. Champaign, Ill. Human Kinetics.
14. Guttmann, A. (1978) From Ritual to Record: The Nature of Modern Sports. New York: Columbia University Press.
15. Guttmann, A. (1994) Games and Empires: Modern Sports and Cultural Imperialism. New York: Columbia University Press.
16. Hoch, P. (1972) Rip off the Big Game: The Exploitation of Sports by the Power Elite. Garden City, N.Y.: Anchor.

✶ ✶ ✶

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

विज्ञापन एवं मानसिक स्वास्थ्यः प्रभाव एवं चुनौतियाँ

अनिता यादव
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
डी.ए.वी पी.जी कॉलेज, लखनऊ

प्रो. (डॉ) संजय तिवारी
समाजशास्त्र विभाग
डी.ए.वी पी.जी कॉलेज, लखनऊ

सारांशः– *वर्तमान समय में विज्ञापन बाजार का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। एक आकाड़ें के अनुसार एक व्यक्ति औसत तौर पर प्रत्येक दिन 150–200 विज्ञापन देखता है। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर व्यक्ति के चयन सम्बन्धी फैसलों पर तो पड़ता ही है साथ ही साथ यह अत्यधिक हावी हो जायें तो उत्पादों के सम्बन्ध में व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर प्रभाव काफी नकारात्मक पढ़ता है। मौजूदा दौर में विज्ञापनों के द्वारा नवीन इच्छाओं को जन्म दिया जाता है तथा उन इच्छाओं को उत्तेजित करने हेतु आधुनिक तकनीकों का प्रयोग वृहद स्तर पर किया जाता है। जिस कारण व्यक्ति को उत्पादों के सन्दर्भ में अवसाद का सामना करना पड़ता है। विज्ञापनों द्वारा उत्पादों की महिमामण्डल इस प्रकार की जाती है कि उपभोक्ता उन वस्तुओं की पूर्ति हेतु ऋणग्रस्तता का शिकार हो जाता है। ऐसे में विज्ञापनों का समाज पर प्रभाव एवं दुष्प्रभाव स्पष्ट तौर पर प्राप्त होता है।*

मुख्य शब्दः– विज्ञापन, सौन्दर्य मिथक, अति उपभोक्तावाद, मानसिक तनाव, सापेक्षिक बंचना, मीडिया प्रभाप, ई विज्ञापन।

प्रस्तावनाः– एग्रेस नायरन और काडेलिया फाइन ''समकालीन विपणन तकनीकें जो उत्पादों को सकरात्मक उत्तेजनाओं से जोड़ती है, अचेतन, अतार्किक तरीकों से उस उत्पाद के लिए वरीयता या चुनाव को उजागर कर सकती है तथा सचेत रूप से रखे गए दृष्टिकोण को कमजोर कर सकती है।''

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि विज्ञापन आधुनिक समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो उपभोक्ताओं की भावनाओं, विचारों और व्यबहार पर गहरा प्रभावित करता है। हलाँकि विज्ञापनों का मुख्य उद्देश्य उत्पादों और सेवाओं को बेचने के लिए उपभक्ताओं को आकर्षित करना है, लेकिन उनका मानसिक स्वास्थ्य पर सकरात्मक और नकरात्मक दोनों प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं। विज्ञापन मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कई तरीकों से जुड़े होते हैं। सर्वप्रथम विज्ञापनो में दिए गए आर्दश शारीरिक रूप और जीवनशैली के मानक लोगों के आत्म–सम्मान और शरीर की छवि पर गहरा असर डाल सकते हैं। कई बार विज्ञापन में महिलाओं और पुरूषों की अत्यधिक सुंदरता, आर्दश वजन और सफलता को बढ़ा–चढ़ाकर दिखाया जाता है, जो आम लोगों के लिए हासिल करना मुश्किल होता है। जिससे व्यक्ति को मानसिक तनाव, अवसाद और चिंता जैसी समास्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

विज्ञपानों में अक्सर उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे खुशी और संतोष को उत्पादों और सेवाओं के उपभोग से जोड़ा जाता है। यह धारणा है कि, खरीदारी से जीवन बेहतर हो सकता है, लोगों में आर्थिक और मानसिक दबाव उत्पन्न कर सकते है, विशेष रूप से जब वह उत्पाद खरीदने में असर्मथ होते हैं। वही सकरात्मक पक्ष यह भी हैं कि कुछ विज्ञापन मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता फैलाने का काम भी करते हैं। वे मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं जैसे अवसाद, चिंता और तनाव को सामान्य बनाने में मदद कर सकते है, और लोगों को मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं की जानकारी प्रदान कर सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि विज्ञापन मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालते है। यह आवश्यक

है कि उपभोक्ता विज्ञापन को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखे ताकि इसके नकरात्मक प्रभावों से बचा जा सकें।

मानसिक स्वास्थ्य की संकल्पनाः विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू.एच.ओ.) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य खुशहाली एक ऐसी स्थिति है जिसमें वयस्कता अपनी क्षमताओं का एहसास करता है, जीवन के सामान्य तनावों का सामना कर सकता है, उत्पादक और लाभदायक रूप से काम कर सकता है और अपने समुदाय में योगदान करने में सक्षम होता है। शारीरिक स्वास्थ्य की तरह, मानसिक स्वास्थ्य भी जीवन के हर चरण में, बचपन और किशोरावस्था से लेकर वयस्कता तक महत्वपूर्ण है। डब्लू.एच.ओ. ने दुनिया भर में मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों को सम्बोधित करने के लिए और अधिक करवाई का आहवान् किया है। खासकर जब तक कोविड–19 महामारी को मानसिक स्वास्थ्य को कुप्रभावित करने में योगदान के रूप में उद्धृत किया गया है। लगभग एक अरब लोग जिनमें से 14ः किशोर थे, 2019 में किसी न किसी रूप में मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों के साथ जी रहे थे। कुछ के लिए यह आत्महत्या का कारण बना, जिसमें 100 में से एक की मृत्यु हुई, जिनमें से आधे से अधिक 50 वर्ष की आयु से पहले हुई। महामारी (2020) के पहले वर्ष में अवसाद और चिन्ता 25ः बढ़ गई। डब्लू.एच.ओ. के सभी 194 सदस्य राज्यों ने व्यापक मानसिक स्वास्थ्य कार्य योजना 2013–2030 को अपनाया है लेकिन इसकी गति धीमी रही है। महामारी के अलावा मानसिक कल्याण के लिए अन्य संरचनात्मक खतरों में सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ, सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात स्थित, युद्ध और जलवायु संकट शामिल है। मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों के साथ जीने वाले सामान्य आबादी की तुलना में लगभग दो दशक कम जीते हैं। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच खराब बनी हुई है। वैश्विक स्तर पर, 71ः मनोवृत्तियाँ रोगियों के उपचार पर्याप्त नहीं होता है। उच्च आय वाले देश 70ः मनोवृत्तियों रोगियों के उपचार प्रदान करते है। और कम आय वाले देश केवल 12ः के लिए इसका प्रबन्धन करते हैं। डब्लू.एच.ओ. की रिपोर्ट वयस्क (व्यापक) मानसिक स्वास्थ्य कार्य योजना 2013–2030 पर तेज करने के लिए तीन प्रमुख परिवर्तन के पथ को सूचीबद्ध किया गया है। इनमें मानसिक स्वास्थ्य में अधिक घरों, समुदायों, स्कूलों, कार्यस्थलों और स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं जैसे वातावरण को फिर से आकार देना शामिल है जो करते हैं और इसमें विविधता लाकर मानसिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित देखभाल की गुणवत्ता को मजबूत करते है।

साहित्य समीक्षाः– रानी, कविता (2023) ने ''द इम्पैक्ट आफ एडवरटीजमेन्ट आन टुडे यूथः ए कम्हरेशिव एनेलिसिस '' युवाओं पर विज्ञापन पर पढ़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने बताया है कि वर्तमान समय में युवाओं के व्यवहार, परिप्रेक्ष्य, उत्पाद चयन पर गहरा प्रभाव पढ़ रहा है। ऐसे में जहाँ विज्ञापन की उत्पादों के सन्दर्भ में जागरूकता का प्रचार प्रसार करने में सकरात्मक भूमिका रहती हैं वही इसके नकरात्मक प्रभाव भी देखने को मिलते है। ऐसे में समाज की यह जिम्मेदार है कि, विज्ञापन के सन्दर्भ में उचित कदम उठाया जाये ताकि विज्ञापन का अधिकतम सकरात्मक प्रभाव पड़े।

सुबामनीएन, के.आर. (2017) ''इम्पैक्ट आफ सोशल चेन्ज आन द रोल आफ एटवरट्राडिजिंग'' में विज्ञापन को परिभाषित किया है तथा इसे भुगतान की गई ऐसी रणनीति बताई गई है जिसके द्वारा अधिकतम उपभोक्ताओं को प्रभावित किया जा सकें इसके लिए मुख्य तौर पर टेलीविजन, सोशल मीडिया, पत्र–पत्रिकाये एवं समाचार पत्रों का प्रयोग किया जाता है हलाँकि विज्ञापनों का प्रयोग उत्पाद के सन्दर्भ में जागरूकता फैलाना होता है परन्तु कभी–कभी इसके बढ़ा–चढ़ाकर पड़ने वाले प्रभाव जैसे विज्ञापन उपभोक्ताओं पर गलत प्रभाव डालते है। अतः कम्पनीयों एवं मीडिया की जवाबदेही तय करनी जिसके द्वारा भाम्रक उत्पादों से उत्पभोक्ताओं को सुराक्षित रखा जा सकें।

सिंह, अरविन्द कुमार (2019) ''सोशल मीडिया का वर्तमान परिदृश्यः उपयोगिता एवं प्रभाव'' में सोशल मीडिया के प्रयोग के प्रति युवाओं के रूझानों का अध्ययन किया है तथा सोशल मीडिया का दिन–प्रतिदिन उपयोग युवाओं में बढ़ता जा रहा है। ऐसे में व्यक्तिपरक उत्पादों का निश्चित समय अन्तराल पर बार–बार विज्ञापन उन्हें ना सिर्फ अति उपभोक्तावादी बनी रही है। साथ ही साथ अनाश्यक वस्तुओं की आवश्यकता को जन्म दे रही है। लेखक का सुझाव है कि सोशल मीडिया पर आवश्यक आचार संहिता होना चाहिए ताकि इसका सकरात्मक प्रयोग किया जा सकें।

अति उपभोक्तावाद एंव मानसिक समस्याः– इन्वेशट इंडिया रिपोर्ट के अनुसार ''भारत मे ई–कार्मस क्षेत्र का कारोबार 325 बिलियन अमेरिकन डॉलर के बराबर हो जाएगा तथा ऑनलाइन शापिंग के मामले में भारत तीसरे स्थान पर होगा, ऐसे में स्पष्ट है कि उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति में दिन–प्रतिदिन वृध्दि हो रही है जहाँ पहले हम सापेक्षिक वंचना की संकल्पना भूमिका एवं परिस्थिति की सन्दर्भ में देखा जा सकता है। प्रायः विज्ञापनों का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जाता है कि वह उत्पाद ना सिर्फ आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा साथ ही साथ आपकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करेगा। इस वजह से एक उपभोक्ता में उत्पादो के प्रति साथ ही साथ कई बार यह देखा गया है कि उत्पादो के उपभोग के लिए व्यक्ति द्वारा उच्च दर पर उधार लिये जाते हैं जिस कारण उसे मानसिक समस्या का सामना तो करना पड़ता है। साथ ही साथ भव्याह परिस्थिति में आत्महत्या की घटनाएँ भी मिलती है। कभी–कभी विज्ञापनों में उन प्रलोभनपूर्वक प्रभावों का दावा किया जाता है। जिनका की वैज्ञानिक आधार नहीं होता है परन्तु इन विज्ञापनों के प्रभाव के कारण उपभोक्ता के अन्दर तीव्र परिवर्तन की भावना जन्म लेती है। परन्तु यह परिवर्तन ना होता देख उपभोक्ता मानसिक अवसाद ग्रस्त हो जाता है। उपरोक्त उदाहरण को चिकित्सा के क्षेत्र में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

विज्ञापन एवं सामाजिक आर्थिक परिदृश्यः– विज्ञापन ने समाज के सामाजिक आर्थिक परिदृश्य पर विस्तृत प्रभाव डाला है। विज्ञापनों द्वारा उत्पाद के सम्बन्ध में इस प्रकार सूचना फैलाई जाती है कि उपभोक्ता वस्तुओं के सन्दर्भ में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं अहम् को संतुष्ट करने लगता है। तथा युवाओं के सन्दर्भ में ऐसा देखा गया है कि कर्ज लेकर घी पीने की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। वर्तमान समय में प्रत्येक दिन नए उत्पादों का आविष्कार हो रहा है तथा इन आविष्कारों के उपभोग के प्रति हो रही अन्धी दौड़ का मुख्य कारण विज्ञापनों का आकर्षक स्वरूप है ऐसे में सामाजिक आर्थिक स्तर पर विज्ञापनों ने मनुष्य के मानसिकता पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला है।

निष्कर्ष एंव सुझावः– वर्तमान समय में समाज में उपभोक्तावादी समाज का विकास हुआ है तथा व्यक्ति की अनावश्यक आवश्यकताओं का जन्म विज्ञापनों द्वारा दिया जा रहा है। ऐसे में उत्पादों के सन्दर्भ में अंधी दौड़ ने मानसिक समास्याओं को जन्म दिया है। खासकर युवा पीढ़ी में ज्यादातर खरीदारी विज्ञापन से प्रभावित होकर किया जाता है। ऐसे में यह देखा जाता है कि उत्पादों की पूर्ति ना होने पर वे सापेक्षिक वंचना का शिकार हो जाते है। ऐसे में अपराध जन्य घटनाओं का होना। एक सामान्य प्रघटना बन चुकी है। अतः वर्तमान समय में यह आवश्यक है कि विज्ञापनों के सन्दर्भ में आवश्यक आचार संहिता एंव कढ़े नियम–कानूनों का विकास किया जाये ताकि विज्ञापनों का सकरात्मक प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर देखने को मिले। ऐसा देखा गया है कि बड़ी–बड़ी कम्पनीयाँ अपने उत्पादों के बिक्री के लिए समाज की भूमिका एवं परिस्थिति सम्बन्धी मूल्यों से उत्पादों को जोड़ने का प्रयास करती है। जिस कारण इन उत्पादों के उपभोग की तीव्र इच्छा जन्म लेती है जिसकी वजह से उपभोक्ता, कभी–कभी ऋणगस्ता, अवसाद तथा असन्तुष्टि का शिकार हो जाता है। ऐसे में सरकार एवं जन सहभगिता के द्वारा यह सुनिश्चिति कराना

अत्यन्त आवश्यक है कि कोई उत्पाद भी कुछ उपभोग सीमाएँ है न कि उनकी सीमा व्यक्ति की भूमिका परिस्थिति से ऊपर है।

उपभोक्ता व्यवहार प्रतिमान मुख्यतः 7 (0) फ्रेमवर्क पर काम करता है–

1. अधिवासी (Occupant)
2. वस्तु (Object)
3. उद्देश्य (Objective)
4. अवसर (Occasion)
5. दुकान (Outlet)
6. संचालन (Operation)
7. संगठन (Organization)

स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता हैं कि विज्ञापनों द्वारा उपरोक्त सभी बिन्दुओं को लक्षित करके उत्पादनों के सन्दर्भ में प्रचार प्रसार किया जाता है। जिस कारण उन उत्पादों के सन्दर्भ में उपभोक्ताओं में सकारात्मक रूझान विकसित किए जाते है परन्तु अति उपभोक्तवाद के इस अंधी दौड़ में उत्पाद के प्रभाव के सन्दर्भ में ऊंचे–ऊंचे वादे किए जाते हैं। प्रायः चिकित्सा के सन्दर्भ में ऐसा बहूत बार देखा गया है कि उपभोक्ता द्वारा चिकित्सकीय दवाओं का उपयोग बिना विशेषज्ञ चिकित्सक के सलाह किया जाता है। जिस कारण उपभोक्ता को गंभीर समस्या का सामना करना पड़ता है। ऐसे में यह अनिवार्य है कि शिक्षा, समाज एवं नैतिकता के स्तर पर उत्पादों का प्रभाव एवं दुष्प्रभाव के सन्दर्भ में समुचित जानकारी प्रदान किया जाए तथा ऐसी नियामक संस्थाओं का गठन किया जाए जिनके द्वारा भ्रामक विज्ञापनों का प्रचार प्रसार के सन्दर्भ में नियंत्रण स्थापित किया जाए तथा इसके अलावा प्राय यह देखा गया है कि अक्सर विज्ञापनों द्वारा व्यक्ति के व्यक्तिगत डाटा को विज्ञापन के नाम पर विज्ञापन कम्पनीयों द्वारा बेचा व खरीदा जाता है, जिस कारण उपभोक्ताओं को अनचाहे फोन कॉल, संदेशों अथवा ई–मेल द्वारा परेशान किया जाता है। हॉलिकि डिजिटल पर्सनल डाटा प्रोटेक्शन एक्ट 2023 में डाटा के सन्दर्भ में कड़े कानून बनाए गए हैं। परन्तु इन कानूनों को लागू करने के सन्दर्भ में कोई खास व्यवस्था नहीं की गई है। ऐसे में उपरोक्त सुझाव के आधार पर समुचित कदम द्वारा विज्ञापन के सकरात्मक प्रभाव को समाज में प्रसारित किया जा सकता है। इससे न सिर्फ उपभोक्ताओं को गुणवतापूर्ण उत्पादों की प्राप्ति होगी। साथ ही साथ उपभोक्ताओं के मानसिक स्वास्थ्य पर भी सकरात्मक प्रभाव पड़ेगा।

सन्दर्भ सूचीः–

- रानी, कविता (2023). द इम्पैक्ट ऑफ एडवरटीजमेन्ट ऑन टुडे यूथः ए कम्पहरेशिव एनालिसिस. एम.एम. विश्वविद्यालय।
- वेबस्टर, एफ. (2002) थ्योरीस् ऑफ इन्फॉरमेशन सोसाइटी. राउटेज
- वेल्स.डब्लू. बर्नेट, जे. एण्डमाइटरी एस. (2011). एटवरटाइजिंगः प्रिसिंपल एण्ड प्रेक्टिस. पीयरसन
- सुब्रहमण्यम, डॉ. के.आर (2017). इम्पैक्ट ऑफ सोशल चेन्ज ऑन द रोड ऑफ एडवरटाइजिंग. इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेड इन सोशल एण्ड डेवलपमेंट. संस्करण 4 (3). ISSN 2394–9333
- सिंह, अरविन्द कुमार (2019). सोशल मीडिया का वर्तमान परिदृश्यः उपयोगिता एवं प्रभाव।
- डब्लू.एच.ओ. रिर्पोट. विश्व मानसिक स्वास्थ्य रिर्पोट–जून (2022)
- श्रीवास्तव, डॉ. प्रियंका (2022). विज्ञापन का उद्दभव एवं विकास. अपनी माटी. चित्तौड़गण (राजस्थान)

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

हिंसा और बाल शोषण पर मीडिया के प्रभाव का अध्ययन

अवनीश प्रताप सिंह
शोधार्थी
राधा गोविन्द विश्वविद्यालय,झारखण्ड

सारांश–

संसार में बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें शिक्षा में रुचि ना हो आजकल ही नहीं बल्कि प्राचीन काल से ही शिक्षा का प्रयोग चला आ रहा है आज के भारतीय समाज में शिक्षा का मुख्य कार्य व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति करना है। शिक्षा मानवीय चेतना का वह सर्वांगीण विकास है और ज्योतिमय सुसंस्कृति पद है, जिसमें व्यक्ति का बहुमुखी विकास होता हैद्य शिक्षा किसी भी राष्ट्र का वह बिंदु है जिसके चारों ओर विकास का चक्र घूमता है, राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक आध्यात्मिक तथा मानवीय मानसिक विकास के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण हैद्य शिक्षा के बिना यह सब अधूरे हैं अर्थात शिक्षा वह क्रम है जिसके द्वारा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव है। यह आवश्यक नहीं है कि शिक्षा केवल विद्यालय या अन्य संस्थाओं से ही प्राप्त की जाए बल्कि किसी भी रूप में कभी भी प्राप्त किया जा सकता हैद्य मनुष्य की तीन मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए मनुष्य कार्य करने के लिए प्रेरित होता है

प्राचीन काल में शिक्षा व्यवस्था जटिल थी गुरु–शिष्य परंपरा थी गुरु अपने शिष्यों को शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के विकास के लिए शिक्षा देता था इसके परिणाम स्वरुप समाज में रहने वाले सभी लोग शिक्षित नहीं हो पाए थे लेकिन आज की प्रचलित भारतीय शिक्षा का प्रारंभ ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों द्वारा किया गया इनका उद्देश्य भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना तथा अंग्रेजों के व्यापार को बढ़ावा देना था।

प्रस्तावना–

शिक्षा का अनुकरण मानवीय विकृतियों को उत्पन्न करता है, जिसमें हिंसा एवं पाश्विक प्रवृत्ति मुख्य है विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार– हिंसा स्वयं के विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति या किसी समूह या समुदाय के विरुद्ध शारीरिक बल या शक्ति का सभी प्रायः उपयोग है चाहे धमकी स्वरूप या वास्तविक जिसका परिणाम या उच्च संभावना है कि जिसका परिणाम चोट मृत्यु मनोवैज्ञानिक नुकसान दुर्बलता या विकास के रूप में होता हैद्य कई बच्चों और किशोर में कभी–कभी दूसरों के साथ शारीरिक हाथापाई हो जाती है लेकिन अधिकांश बच्चे और किशोर हिंसक व्यवहार जारी नहीं रखते या हिंसा का अपराध में शामिल नहीं होते हालांकि जो बच्चे युवावस्था से पहले हिंसक हो जाते हैं उनसे अपराध होने का अधिक खतरा हो जाता है या हो सकता है इस बात की बहुत कम सबूत है कि हिंसक व्यवहार आनुवांशिक दोषों या गुणसूत्र असामान्यताओं की कारण होता है।

मीडिया– (जैसे सोशल मीडिया और समाचार प्लेटफार्मों) के माध्यम से हिंसा के खुलासे तथा बाल शोषण और घरेलू हिंसा की खुलासे से हिंसा और हथियारों तक पहुंच के बीच एक संबंध प्रतीत होता है वर्तमान समय में हिंसा और बाल शोषण के साथ मीडिया का भी प्रभाव देखा जा रहा है अभी कुछ समय

पहले महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने बच्चों के शोषण एवं ऑनलाइन यौन दुर्व्यवहार के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर एक गठबंधन बनाने की घोषणा की।

मंत्रालय का उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी व्यापक प्रणाली का विकास करना है जिसमें बच्चों के माता–पिता स्कूलों समुदायों और गैर सरकारी संगठनों स्थानीय सरकारों के साथ–साथ पुलिस वह वकील को भी शामिल किया जाना है। बच्चों के साथ शारीरिक, मानसिक अथवा भावनात्मक स्तर पर किया जाने वाला दुर्व्यवहार बाल दुर्व्यवहार कहलाता है हालांकि हम लोग दुर्व्यवहार में समानता यौनिक एवं शारीरिक शोषण को शोषण समझते हैं जबकि मानसिक तथा भावनात्मक स्तर पर होने वाला बच्चों के मनस पर दीर्घकालिक प्रभाव डालता है।

बाल यौन शोषण का दायरा केवल बलात्कार या गंभीर यौन आघात तक ही सिमटा नहीं है, बल्कि बच्चों को इरादतन यानि कृति दिखाना, अनुचित कामुक बातें करना, गलत तरीके से छुना, जबरन यौनकृतियों के लिए मजबूर करना, भोलेपन का फायदा उठाना, चाइल्ड पोर्नोग्राफी बनाना आदि बातें सोशल के अंतर्गत आते हैं। 2002 में जारी विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 18 वर्ष से कम उम्र के 7–9 प्रतिशत लड़के एवं 19–7 प्रतिशत लड़कियां यौन हिंसा की शिकार है।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार 2011 में बाल एवं शोषण के 33098 मामले दर्ज किए गए। भारत में प्रत्येक मिनट पर 16 से कम उम्र के एक बच्चे तथा प्रत्येक 13 घंटे पर 10 से कम उम्र के एक बच्चे का बलात्कार होता है। यूनिसेफ द्वारा 2005 से 2013 के बीच की यौन शोषण पर किए गए अध्ययन के आंकड़े बताते हैं कि भारत की 10 प्रतिशत लड़कियों को जहां 10 से 14 वर्ष से कम उम्र में यौन व्यवहार का सामना करना पड़ा वहीं 30 प्रतिशत ने 15 से 19 वर्ष के दौरान एवं दुर्व्यवहार को झेला।

बाल अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र का बाल अधिकार कन्वेंशन(बतब) एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जो सदस्य देशों को कानूनी रुप से बाल अधिकारियों की रक्षा के लिए बाध्य करता है। भारत में बाल एवं शोषण एवं दुर्व्यवहार के खिलाफ सबसे प्रमुख कानून 2012 में पारित किया उन्होंने शोषण के खिलाफ बच्चों का संरक्षण कानून (CRC) इस समय अपराधों को चिन्हित कर उनके लिए सख्त सजा निर्धारित की गई। साथ ही सुनवाई के लिए स्पेशल कोर्ट का भी प्रावधान है। स्कूलों में जहां अनिवार्य मनोवैज्ञानिक कैंप होने चाहिए तो वही डॉक्टर, मीडिया व पुलिस को भी इन घटनाओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।

बाल हिंसा एवं शोषण–

विधाता की सर्वोत्तम कृति मानव है व्यक्ति अपने जन्म के समय और असहाय होता है और दूसरों की सहायता से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जैसे–जैसे वह बड़ा होता है वैसे–वैसे वह उनका पूरा करना और अपने वातावरण में अनुकूलन करना सीखना है। अभी हाल ही में एक डाटा के अनुसार बिहार राज्य की मुजफ्फरपुर जिले में बालिका गृह कांड की एक समस्या सामने आई जिसमें टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस मुंबई की एक टीम द्वारा 2018 में एनजीओ सेवा संकल्प एवं विकास समिति सर्वेक्षण किया गया थाद्य इसी संस्था द्वारा मुजफ्फरपुर में बालिका गृह का संचालन किया जा रहा था। बता दे कि मुजफ्फरपुर के बालिका संरक्षण गृह में 34 छात्राओं की यौन उत्पीड़न की पुष्टि के बात हुई, इसमें मीडिया का बहुत बड़ा योगदान रहा पूछताछ में पता चला था की लड़कियों को नशीली दवाई देकर उनके साथ मारपीट कर शोषण किया जाता था इस मामले को सीबीआई जांच के बाद कोर्ट ने इस शेल्टर होम के संचालक और मुख्य आरोपी बृजेश ठाकुर को उम्रकैद की सजा सुनाई थी।

कैलाश सत्यार्थी का मूल नाम कैलाश शर्मा(जन्म 11 जनवरी 1954 विदिशा मध्य प्रदेश भारत)–भारतीय समाज सुधारक जिन्होंने इसके खिलाफ अभियान चलाया और भारत के अन्य जगहों पर बालश्रम और शिक्षा के सार्वभौमिक अधिकार की वकालत की 2014 में उन्हें किशोर पाकिस्तानी शिक्षा अधिवक्ता मलाला यूसुफजई के साथ "बच्चों और युवाओं के दमन के खिलाफ उनके संघर्ष और सभी बच्चों की शिक्षा के अधिकार के लिए नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

मलाला यूसुफजई (जन्म 12 जुलाई 1997 को बच्चों के अधिकारों की कार्यकर्ता होने के लिए माना जाता हैद्य वह पाकिस्तान के खैबर–पख्तूनरवा प्रांत के साथ जिले में स्थित मिंगोरा शहर की एक छात्रा है। 13 साल की उम्र में ही वह तारीफ–ए–तालिबान शासन के अत्याचारों के बारे में एकछन्हा नाम के तहत बीबीसी के लिए ब्लॉगिंग द्वारा स्वात के लोगों में नायिका बन गई।

आज हमारे देश भारत में आए दिन हिंसा और बाल शोषण हो रहा है कहीं ना कहीं मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुंचाने का कार्य किया जा रहा हैद्य लोकतांत्रिक देश में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका क्रिया–कलापों पर नजर रखने के लिए मीडिया को चौथे स्तंभ के रूप में जाना जा सकता हैद्य किसी भी सामाजिक बुराइयों को मीडिया दिखाने या उस पर रोक कैसे लगाया जाए किसी भी घटना के बारे में आम जनता तक पहुंचने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है।

"सब बच्चों को अधिकार एक समान।
बाल अधिकार इसी का नाम"।।

अर्थात हर बच्चा पढ़ेगा तभी तो जीवन में आगे बढ़ेगा देखा जाए तो बाल मजदूरी एक बच्चे के जीवन की हत्या करने के समान है। बाल संरक्षण वर्तमान अस्तित्व में भी कन्या भ्रूण हत्या की प्रथाएं प्रचलित है और दूसरी जो बच्चे पैदा होते हैं और जीवित रहते हैं, उन्हें कई उल्लंघनों का अनुभव होता है। दुनिया में सबसे ज्यादा कामकाजी बच्चे भारत में हैं। राष्ट्रीय अपराधी रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) ने 2018 में बच्चों के खिलाफ विभिन्न अपराधों के 39827 मामले दर्ज किया, जिनमें बालविवाह, आर्थिक शोषण, युवा लड़कियों को देवी देवताओं को समर्पित करने की देवदासी परम्परा जैसी प्रथाए इत्यादि अभी भी प्रचलित है, जिसको कहीं ना कहीं मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुंचा जा रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

1–हिंसा को कम करने में मीडिया के प्रभाव का अध्ययन।

2– बालक व बालिकाओं पर होने वाले हिंसा को रोकने में मीडिया का योगदान का अध्ययन।

3–बालिकाओं का हो रहे शोषण के खिलाफ प्रिंट मीडिया के योगदान का अध्ययन।

4– हिंसा और शोषण को कम करने में मीडिया के प्रभाव का अध्ययन।

सुझाव–

केवल मानव ही एक मात्र जैसा प्राणी है जो सदियों से एकत्र किए गए ज्ञान का लाभ उठा सकते हैं। संबंधित शोध अध्ययन से शोधकर्ता यह निश्चित कर सकता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शोध का संबंधित विषयों पर पहले कार्य किया जा चुका है अथवा नहीं। प्रस्तुत शोध की पृष्ठभूमि तथा परिप्रेक्ष्य में संबंधित साहित्य की खोज करना आवश्यक है। इस अध्ययन की आवश्यकता को प्रथम अध्याय में पहले ही निश्चित किया जा चुका है। वर्तमान शोध की परिप्रेक्ष्य में यह पता लगा लेना आवश्यक है कि इस क्षेत्र में कितने शोध हो चुके हैं तथा किस प्रकार की शोध अध्ययनों में किस प्रकार के उद्देश्य निश्चित किए गए हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कौन से शोध–उपकरण, शोध–प्रविधि, सांख्यिकी एवं तकनीकी का प्रयोग

किया गया है। इसके साथ ही यह ज्ञात करना आवश्यक है कि पूर्व में किए गए अध्ययनों के क्या परिणाम है। तथा उसके मुख्य निष्कर्ष क्या प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार की शोध अध्ययनों तथा अन्य संबंधित साहित्य से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में और उपयोगी अध्ययन क्या हो सकते हैं। इस प्रकार से संबंधित साहित्य का अध्ययन करने के उपरांत वर्तमान शोध अध्ययन हेतु उद्देश्य परिकल्पना शोधविधि उपयुक्त शोध उपकरण एवं सांख्यिकी तकनीकी का चयन करना सुविधाजनक हो जाता है। किसी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धांत एवं शोधों से अवगत होना चाहिए।

1– राज ब्यूरो पटना (2023)

राज्य में इस साल जनवरी से अगस्त माह के बीच 5958 बच्चे गायब हुए हैं। इनमें 5117 लड़कियां जबकि 841 लड़के हैं, बच्चों में 85 प्रतिशत लड़कियां हैं। पुलिस एवं मीडिया के सहयोग से 383 लड़कों और 2416 लड़कियों को बरामद किया गयाद्य राज्य से गायब हुए 3415 बच्चे अभी भी लापता है। इन सब मामलों में मीडिया को और अधिक पारदर्शिता रखनी चाहिए जिससे कि आम जनता को इसकी जानकारी दी जा सके और वो जागरूक हो सके।

2– एनसीआरबी की रिपोर्ट– कहती है कि बच्चों के साथ शारीरिक व्यवहार के मामले में उत्तर प्रदेश देश के अन्य राज्यों में सबसे आगे हैद्य इसके बाद महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश, दिल्ली में यह आंकड़ा 769 है वहीं जम्मू–कश्मीर में महज दो मामले ऐसे आए हैं।

3– नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (2016)

अपराध पर आधारित आखिरी रिपोर्ट पर नजर डाले तो देश भर में बच्चों पर आपराधिक गतिविधियों दर्ज हुआ है 2014 में बच्चों के साथ अपराध की 89423 घटनाएं दर्ज हुई है। इसके बाद 2015 में 94172 और 2016 में 106958 घटनाएं दर्ज हुई है इन तीन सालों में बच्चों के साथ अपराध की दर 24 प्रतिशत तक पहुंच गई है 2014–15 में 5.3 फीसदी की तुलना में 2015–16 में 13.6 फीसदी अपराध हुआ।

हिंसा और बाल–शोषण पर मीडिया का प्रभाव को देखा जा सकता है। शिक्षा के अभाव में हिंसा और शोषण की कल्पना करना अनुचित होगा मीडिया के विकास के लिए लोगों में सशक्तिकरण के साथ–साथ सामाजिक सशक्तिकरण एवं आर्थिक सशक्तिकरण की अत्यंत आवश्यकता है। जिसमें बालक एवं बालिकाओं का अपना सर्वांगीण विकास कर सके बालिका सशक्तिकरण के विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिया जा सकते है।

01–वर्तमान समय में बालिका के शैक्षिक विकास को ध्यान में रखते हुए हिंसा और बाल शोषण कार्यक्रम के अलावा समय–समय पर आवश्यकता के अनुसार अन्य बाल शोषण और हिंसा कार्यक्रम योजनाए चलाई जानी चाहिए।

02–बालिका और बालक शोषण को कम करने के स्तर को बढ़ाने के लिए बालको के भाति बालिकाओं को भी जागरुक

करना आवश्यक है।

03–हिंसा और बाल शोषण के बारे में बालक और बालिकाओं को शिक्षा एवं विद्यालय के माध्यम से बताया जाना

चाहिए।

04–बालिकाओं को आगे बढ़ाने के लिए उनको सही–गलत का ज्ञान कराया जाना चाहिए।

05–हिंसा को कम करने में मीडिया का प्रभाव के बारे में बालक एवं बालिकाओं को बताया जाय।

06–बालको को हिंसा के बारे में अवगत कराना साथ ही बालिकाओं को भी जानकारी देना।

07–बालिकाओं को सामाजिक रुप से सशक्त बनाने के लिए बालिकाओं की सुरक्षा को बढ़ाते हुए अन्य शहर राज्य व

देश में कार्य हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिससे उनमें पूर्ण विकास हो सके।

08–बालिकाओं को सशक्त बनाने के लिए बालिकाओं की शिक्षा प्रणाली में आधुनिक संचार साधनों का पूर्ण प्रयोग

तथा मीडिया के विभिन्न माध्यमों जैसे–टेलीविजन समाचारपत्र मासिक–पत्रिका तथा इंटरनेट के माध्यम से बालिका

सशक्तिकरण को बढ़ाया जा सकता है।

09–बालिकाओं एवं बालकों को हिंसा के बारे में जानकारी के साथ–साथ विचारों में भी अपनाने के लिए जोर दिया

जाये।

10–बालक एवं बालिकाओं को पूर्ण ज्ञान के साथ–साथ शोषण के विरुद्ध लड़ने के अधिकार से अवगत कराने के लिए

ग्रामीण एवं विकास खण्ड स्तर पर बालिका सशक्तिकरण समूह की स्थापना एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी

चाहिए।

आंकड़ों की संकलन एवं विश्लेषण–

अनुसंधान के लिए समस्या में संबंधित परिकल्पना के निर्माण के लिए उसके परीक्षण के लिए आंकड़ों का संकलन की आवश्यकता होती है इसके लिए विशिष्ट उपकरण जो कि उसे समस्या के अनुरूप है प्रयोग आंकड़ों के लिए किया जाता है यह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष अनेक शास्त्रों से उपलब्ध हो सकता है तथा वह उपकरण विश्वसनीय और वैद्या होना चाहिए। प्रस्तुत शोध के अंतर्गत हिंसा और बाल शोषण पर मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया गया है अतः प्रस्तुत शोध के इससे संबंधित आंकड़ों की व्याख्या विवेचना एवं निष्कर्ष के लिए चार परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है। वैशाली जिले के अंतर्गत ब्लाक लालगंज, भगवानपुर, वैशाली और हाजीपुर का चुनाव किया गया, जिसमें 80 उत्तर दाताओं का चयन किया गयाद्य उत्तर दाताओं से प्राप्त जानकारी आरेख के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैद्य

क्रम	विकास खंड का नाम	ग्राम पंचायत का नाम	हिंसा और शोषण वाले बच्चों की संख्या	योग
1	लालगंज	टोटहा समसपुरा	10 10	20
2	भगवानपुर	वानथु प्रतापताड	10 10	20

3	वैशाली	वालुकाराम महावीरपुरी	10 10	20
4	हाजीपुर	बागमली हथसारगंज	10 10	20

निष्कर्ष–

प्रस्तुत शोधकर्ता में प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए है।

उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि के लिए प्रदत्तो के विश्लेषण के आधार पर समस्त 80 उत्तरदाताओं में 95.78 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जहा शिक्षा को अनिवार्य मानते हुए साक्षर भारत कार्यक्रम में लाभांवित हुए वही 4. 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शिक्षा को उचित जानकारी के अभाव में साक्षर भारत कार्यक्रम से लाभांवित नहीं हुए।

अतः इस गणना से ज्ञात होता है। कि महिलाओं एवं पुरुषों में हिंसा और बाल शोषण पर मीडिया के प्रभाव का अध्ययन पाया जाएगा ।

निष्कर्ष की पुष्टि के लिए प्रदत्तो के विश्लेषण के आधार पर समस्त 80 उत्तरदाताओं में से 91.35 प्रतिशत जहां बालक और बालिकाओं को समान मानते हुए बालिकाओं के पक्ष में सकारात्मक विचार प्रकट किया वहीं 8.65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शिक्षा एवं बालिकाओं की जानकारी के अभाव में बालिकाओं को बालकों के समान मानते हुए अपना विचार नहीं के रुप मे प्रकट किया । अतः इस गणना से ज्ञात होता हैं । बलिका–बालक की हिंसा और शोषण को कम करने में मीडिया का प्रभाव पाया गया।

संदर्भित ग्रंथ सूची–

1– डब्ल्यू आर बोर्ज, 1978 " शैक्षिक अनुसंधान एवं विधिया," अग्रवाल पब्लिकेशन, मेरठ

2– राम सकल पाण्डेय, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, मेरठ

3– हिंदू लॉ, ईस्टर्न ला बुक कंपनी लखनऊ द्वितीय संस्करण 2003

4– प्लानिंग कमीशन (1956), सोशल लोजिस्लेशन इट्स रोल इन सोशल वेलफेयर

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

हथकरघा उद्योग में महिलाएँ : समस्याएँ और संभावनाएँ

नीतू कुमारी
शोध छात्रा
लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुगलसराय, चंदौली
डॉ. भावना
प्रोफेसर
लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुगलसराय, चंदौली

सार

हाल के दिनों में, महिला सशक्तिकरण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर समाज में महिलाओं की स्थिति, पर बढ़ती चिंता का विषय बन गया है। भारत में, जहां महिला कार्यबल प्रमुख है,इस चिंता यानी महिला सशक्तिकरण पर मुख्य रूप से गैर–औपचारिक क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। उनमें से एक है हथकरघा क्षेत्र, यह कृषि के बाद सबसे बड़ी आर्थिक गतिविधियों में से एक है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार प्रदान करती है और साथ ही मुख्य रूप से एक गैर–कृषि गतिविधि है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी से चला आ रहा है। औद्योगीकरण के मद्देनजर, हमारे देश के अपने पावरलूम और खादी आंदोलन ने हथकरघा और उसके बुनकरों की समग्र स्थिति को पूरी तरह से खराब कर दिया। मुख्य रूप से यह पुरुषों की तुलना में महिलाओं के जीवन पर बोझ डालता है, जो हथकरघा क्षेत्र में एक प्रमुख कार्यबल हैं। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने टिप्पणी की थी कि "किसी देश में सबसे बड़ी क्रांति वह है जो वहां की महिलाओं की स्थिति और जीवन स्थितियों को प्रभावित करती है (सेन गुप्ता, 1974)"। लगभग 78 प्रतिशत हथकरघा श्रमिक महिलाएं हैं, जिनमें से सिक्किम राज्य की संख्या सबसे कम है, जबकि असम राज्य की संख्या सबसे अधिक है। आम तौर पर अशिक्षा और गरीबी यह दो प्रमुख कारक हैं जो इन महिला श्रमिकों की उन्नति और आजीविका पर संदेह करते हैं। इस प्रकार, हथकरघा महिला श्रमिकों को वर्तमान परिदृश्य से लाभ मिलना चाहिए, इस क्षेत्र में आर्थिक स्थिति को प्राथमिक स्तर से ऊपर ले जाने की आवश्यकता है। कुल मिलाकर इस पेपर का उद्देश्य असंगठित महिला हथकरघा श्रमिकों की वर्तमान स्थिति और आजीविका की समस्याओं से परिचित कराना और सामाजिक संरक्षण और सुरक्षा के महत्व का प्रस्ताव रखना है।

कीवर्ड: कौशल विकास, आजीविका समस्याएं, हथकरघा उद्योग, महिला बुनकर, सामाजिक सुरक्षा।

परिचय

हथकरघा क्षेत्र, जो मुख्य रूप से एक ग्रामीण व्यवसाय है, भारत में कृषि के बाद सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। लगभग 23.77 लाख हथकरघा 43.32 लाख बुनकरों और संबद्ध श्रमिकों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करते हैं, जिनमें से 36.33 लाख श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों में और 6.98 श्रमिक शहरी क्षेत्रों में रहते हैं और 38.47 लाख वयस्क व्यक्ति देश में बुनाई और संबद्ध गतिविधियों में लगे हुए हैं, जिनमें से 77.9 प्रतिशत महिलाएं हैं, 10.13 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति हैं, 18.12 प्रतिशत अनुसूचित जाति से हैं, और 45.18 प्रतिशत ओबीसी और 26.57 प्रतिशत अन्य जातियों से हैं (हथकरघा जनगणना

2013)। हथकरघा बुनाई शिल्प कौशल वाले, कुशल व्यवसायों में से एक है जो पूरी प्रतिभा के साथ किया जाता है और यह पीढ़ियों से चला आ रहा है, लेकिन इस परंपरा के अनुयायी यानी हथकरघा बुनाई हमेशा एक कट्टर पदानुक्रमित प्रणाली का शिकार रहे हैं। व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण वे शोषण और उत्पीड़न के चरम रूपों का शिकार होते हैं। ब्रिटिश आक्रमण और उनकी मुक्त व्यापार नीतियों ने उन्हें समाज के सबसे निचले स्तर पर धकेल दिया। स्वतंत्र भारत में आशा थी कि हथकरघा बुनाई की कला को पुनः सज्जा मिलेगी और हथकरघा बुनकरों की स्थिति में विकास होगा, किंतु हुआ इसके विपरीत, हथकरघा श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में पहले की तरह गिरावट आई है।

वर्तमान परिदृश्य में, हथकरघा श्रमिक सबसे गरीब, सबसे कम सम्मानित, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित, कर्ज में जी रहे है और लगभग भारतीय समाज में एक द्वीप की तरह रह रहे थे। इसके अलावा, भारत के बड़े हिस्से में हथकरघा बुनाई ने अपनी प्रसिद्धि और समृद्धि खो दी। मूल रूप से हथकरघा बुनाई पुरुषों का क्षेत्र है लेकिन, हथकरघा जनगणना 2013 के अनुसार हथकरघा क्षेत्र में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करना चाहिए। महिला हथकरघा श्रमिक इसकी सबसे बड़ी संपत्तियों में से एक हैं। वे बुनकर समुदाय के स्तंभ और नींव हैं। यह कहना शानदार है कि एक प्राचीन परंपरा महिलाओं को रोजगार के बड़े अवसर प्रदान करती है, लेकिन वे परिवार के साथ–साथ समाज में भी पराधीनता की शिकार हैं। हथकरघा क्षेत्र में महिला श्रमिक कम आर्थिक स्थिति के कारण अधिकतर अशिक्षित और अर्ध–साक्षर हैं। इसके परिणामस्वरूप आजीविका असुरक्षा और सामाजिक असुरक्षा सामने आ सकती है। मुख्य रूप से, महिला श्रमिक, जो हथकरघा बुनाई परिवार से हैं, उन्हें बुनाई गतिविधि से परे जाकर सीखने की अनुमति नहीं है और उनका जीवन, पहचान का सामान आदि उनकी हथकरघा बुनाई से ही आता है। ये सभी परिणाम हथकरघा महिला श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा, और भविष्य की आकांक्षाएँ पर संदेह करते है।

हथकरघा क्षेत्र में महिला श्रमिक

यह उल्लेख किया जा सकता है कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के मद्देनजर औद्योगीकरण के उद्भव का भारत के हथकरघा क्षेत्र पर प्रभाव पड़ा। इसने हथकरघा में कई परिवर्तन लाए और इसका सीधा असर बुनकर समुदाय के सशक्तिकरण पर पड़ा। कार्ल मार्क्स (1853) का सही मानना है कि,"यह ब्रिटिश घुसपैठिया था जिसने भारतीय हथकरघा बुनाई को नष्ट कर दिया और चरखे को नष्ट कर दिया। इंग्लैंड ने भारतीय कपास को यूरोपीय बाजार से बाहर निकालने के साथ शुरुआत कीय इसके बाद इसने हिंदुस्तान में एक मोड़ लाया और अंत में कपास की मातृ भूमि को कपास से भर दिया।"दरअसल, इस बदलाव का नतीजा है कि इसका बोझ मुख्य रूप से महिला बुनकरों पर पड़ा है और उनकी अर्थव्यवस्था डांवाडोल हो गई है। जब भी हथकरघा संकट में होता है तो महिलाओं को सभी प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ता है, भले ही वे वर्षों के संकट और हथकरघा क्षेत्र में समस्याओं के माध्यम से प्रमुख स्थिरीकरण शक्ति रही हैं। दूसरी ओर, क्षणिक हथकरघा क्षेत्र महिलाओं को रोजगार का सबसे बड़ा अवसर प्रदान करता है, जो एक अद्वितीय स्थान रखती हैं और वे इस सदियों पुरानी परंपरा की मशाल वाहक हैं। इसके अलावा भारत के बड़े हिस्से में, हथकरघा क्षेत्र में सहायक श्रमिकों के रूप में महिलाओं की भागीदारी एक अवर्णनीय उपलब्धि है, लेकिन महिलाओं के काम को कोई मान्यता नहीं दी जाती है। तीसरी हथकरघा जनगणना, 2013 की रिपोर्ट है कि 3,846,835 महिला श्रमिक इस क्षेत्र में सक्रिय वयस्क श्रमिक हैं। 1,968,453 महिला श्रमिक असम से हैं, 202,742 महिला श्रमिक मणिपुर से हैं, 159,139 महिला श्रमिक तमिलनाडु से हैंय आंध्र प्रदेश में 186,569 वयस्क महिला श्रमिक हैं, और त्रिपुरा में 150,169 महिला श्रमिक हैं, आदि। भारत की

1,250,851 महिलाएँ अपने पूर्णकालिक पेशे के रूप में बुनाई कर रही हैं और 1002,171 महिला श्रमिकों के बाद से यह एक अंशकालिक पेशा है। ठीक 77.94: महिला हथकरघा श्रमिक बुनकरों और संबद्ध श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं, लेकिन इस प्रमुख कार्यबल को वैश्वीकरण, औद्योगीकरण और आर्थिक सुधारों के नाम पर अधीनता का शिकार बनाया गया है (तालिका 1 भारत में वयस्क हथकरघा श्रमिकों की संख्या दर्शाती है

तलिका 1 : भारत में वयस्क हथकरघा श्रमिकों की संख्या

राज्य	कुल वयस्क श्रमिक		
	पुरुष	महिला	कुल
आंध्र प्रदेश	149,896	156,569	306,465
अरुणाचल प्रदेश	291	29,275	29,566
असम	15,411	1,468,453	1,483,864
बिहार	14,997	22,728	37,725
छत्तीसगढ	2,673	2,218	4,891
दिल्ली	1,541	976	2,517
गुजरात	4,443	5,053	9,496
हरियाणा	6,239	1,625	7,864
हिमाचल प्रदेश	2,424	5,306	7,730
जम्मू एवं कश्मीर	5,776	14,973	20,749
झारखंड	10,360	8,081	18,441
कर्नाटक	35,377	41,472	76,849
केरल	3,732	10,786	14,518
मध्य प्रदेश	5,985	7,196	13,181
महाराष्ट्र	1,850	1,483	3,333
मणिपुर	1,577	202,742	204,319
मेघालय	97	12,828	12,925
मिजोरम	19,935	39,254	41,189
नगालैंड	7,881	57,422	65,303
ओडिशा	51,154	52,004	103,158
पुदुचेरी	1,122	1,584	2,706
पंजाब	1,551	967	2,518
राजस्थान	5,745	24,357	30,102
सिक्कइम	16	535	551
तमिलनाडु	149,373	169,139	318,512
त्रिपुरा	1,573	130,169	131,742

उत्तर प्रदेश	109,340	107,675	217,015
उत्तराखंड	6,415	8,185	14,600
पश्चिम बंगाल	249,699	415,307	665,006
अखिल भारतीय	848,473	2,998,362	3,846,835

स्त्रोत : तृतीय राष्ट्रीय हथकरघा जनगणना, 2013

महिला हथकरघा श्रमिक एवं कौशल विकास

1987 में, भारत सरकार ने बुनाई में कुशल और अर्ध–कुशल हथकरघा श्रमिकों के कौशल को उन्नत करने के लिए एक विकेंद्रीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम (डीटीपी) शुरू किया। डिजाइन प्रौद्योगिकी, रंगाई और उनके उत्पादों की विपणन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जाता है । इस योजना को बाद में 1995 में संशोधित किया गया। इस योजना को नई योजना एकीकृत हथकरघा विकास योजना में शामिल किया गया। यह योजना संबंधित राज्य सरकारों के सहयोग से बुनाई सेवा केंद्रों (डब्ल्यूएससी) के माध्यम से कार्यान्वित की गई है। बुनकर और संबद्ध श्रमिक इस कार्यक्रम के लक्षित लाभार्थी हैं । 1998–99 से 2002–03 तक की अवधि के दौरान, 15 चयनित राज्यों में कुल 10525 बुनकरों, डिजाइनरों और रंगरेजों को प्रशिक्षण दिया गया था, इनमें से 72.80 प्रतिशत को बुनाई में प्रशिक्षित किया गया था, डिजाइनरों में 9. 03 प्रतिशत और रंगाई में 18.18 प्रतिशत किया गया! विकेंद्रीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम (डीटीपी) का महिला बुनकरों और संबद्ध श्रमिकों के बीच अच्छा प्रभाव पड़ा। उनकी भागीदारी दर अच्छी थी, हालाँकि उन्हें दूर स्थित प्रशिक्षण स्थलों तक आने–जाने में समस्याओं का सामना करना पड़ा। भारत के अन्य राज्यों की तुलना में बुनाई में पूर्वोत्तर राज्य में महिलाओं के लिए बुनाई का व्यवसाय मुख्यतः एक व्यवसाय है। अतः इन राज्यों में महिला प्रशिक्षुओं की संख्या पुरुष प्रशिक्षु से अधिक थी, मणिपुर और सिक्किम में 100 प्रतिशत प्रशिक्षु महिलाएँ है उत्तर प्रदेश में (71.0 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश (34.8 प्रतिशत) और महाराष्ट्र (77.46 प्रतिशत) ऐसे राज्य है, जहां महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है तथा बिहार (18 प्रतिशत), उड़ीसा (19 प्रतिशत) और आंध्र प्रदेश (19.34 प्रतिशत) जैसे राज्यों को छोड़कर महिलाओं की अच्छी भागीदारी रही है । (हथकरघा बुनकरों के लिए विकेन्द्रीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन अध्ययन, 2013. कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली)

हथकरघा महिला श्रमिकों की स्थितियाँ एवं समस्याएँ

महिलाएं, जो बुनाई के पेशे को एक प्रमुख कार्यबल के रूप में पसंद करती हैं, जिसे वे सुरक्षित मानती है, हालांकि यह एक कमर तोड़ने वाला और गरीबी उन्मूलन पेशा है। वे प्रतिदिन दिन में 12 घंटे, महीने में 30 घंटे और साल में 12 महीने काम करती है। सिनेमा, पिकनिक, गपशप, बच्चों के साथ समय बिताना उनके पास अन्य कोई मनोरंजन का साद्यन नहीं है, ,जबकि उनके जीवनकाल में मनोरंजक संगीत कार्यक्रम ही एकमात्र साद्यन है, इनके बिना हथकरघा का काम बिल्कुल नीरस है। उनके जीवन में सबसे महत्वपूर्ण चीज अपने बच्चों को आगे बढ़ते हुए देखना है, अच्छा वेतन, इसके अलावा और कुछ नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है भारत के सभी राज्यों में हथकरघा महिला श्रमिक पहनावे, रहन–सहन, सामाजिक परंपराएँ, खान–पान और बच्चे का पालन–पोषण अभ्यास, के दृष्टिकोण में एक समान हैं वे हथकरघा बुनाई की ओर उन्मुखीकरण है वे इस काम को पसंद करती हैं क्योंकि यह उनकी परंपरा है। एक सामान्य ग्रामीण महिला की महत्वाकांक्षा कभी–कभी उनके जीवन काल में पूरी नहीं होती है। यद्यपि भारत के सभी राज्यों

की महिला हथकरघा, महिला श्रमिकों के पहनावे, रहन–सहन, सामाजिक परंपराओं, खान–पान की आदतों और बच्चों के पालन–पोषण के तौर–तरीकों में अंतर दिखाई देता है, लेकिन हथकरघा बुनाई के प्रति उनका दृष्टिकोण और अभिविन्यास समान है, वे इसे पसंद करती हैं क्योंकि यह उनकी परंपरा है. वे अपने करघे ऐसे चलाते हैं मानो वे उनके देवता हों।

हथकरघा महिलाओं के लिए प्रमुख शारीरिक समस्या मासिक धर्म हैं। उस दौरान परंपराओं और संस्कृति के नाम पर उन्हें काम करने की इजाजत नहीं होती। एक दिन में 12 घंटे से अधिक समय तक बुनाई करने के कारण उन्हें स्त्री रोग संबंधी समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। परिवारों के कर्ज, बीमारी और वैश्वीकरण, पावरलूम और औद्योगीकरण जैसे अन्य कारकों ने उन्हें निर्वाह के निम्नतम स्तर पर बनाए रखा। उनकी कम मजदूरी, कर्ज चुकाने में चली गई और वे हमेशा गरीबी और अभाव में रही है। उन्होंने बहुत मेहनत की, लेकिन प्रतिफल बहुत कम और बहुत ही कम मिला। दक्षिण भारत के अधिकांश बुनकर परिवारों में, पुरुष शराब की ओर मुड़ गए, काम की उपेक्षा करने लगे, बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करने लगे और धीरे–धीरे महिलाओं ने पूरे परिवार का बोझ अपने ऊपर ले लिया। परिणामस्वरूप, महिलाओं को सामाजिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं जैसे मानसिक विकार, क्रोध और निराशाओं पर क्रोध आदि का सामना करना पड़ा, व्यापार में आर्थिक सशक्तीकरण के मार्ग को भी महिला हथकरघा श्रमिकों की उपेक्षा की गई, जैसा कि सेंटर फॉर हैंडलूम द्वारा सूचित किया गया है, 28 अप्रैल, 2006 को हैदराबाद में सूचना और नीति, जहां सीएचआईपी ने एक राज्य का आयोजन किया वे काम उनके करघे को ऐसे जहाज पर भेजता है मानो वे उनके ही भगवान कि व्यापार नीति है। यह देखा गया कि महिलाएं राष्ट्रीय विदेश व्यापार नीति में शामिल नहीं है, मूल्य संवर्धन भूमिकाएँ और यह लापरवाही भी नियमित कार्यों में उनकी भूमिका कम हो जाती है और पुरुषों और महिलाओ के बीच असंतुलन बढ़ता है।

महिला हथकरघा श्रमिकों के लिए सामाजिक सुझाव और आर्थिक सशक्तिकरण

- भारत के दूरदराज के गांवों और अर्ध–शहरी क्षेत्रों के बड़े हिस्सों में महिलाएं बुनकर के रूप में काम करती हैं विशेष रूप ये महिला बुनकर सुरक्षा के लिए सहकारी समितियाँ , स्व–सहायता समूह बुनकर सह–स्थापना का अधिकार दिया जा सकता है
- राष्ट्रीय बजट और विकास कार्यक्रम के आवंटन में महिला हथकरघा बुनकर एवं सहयोगी श्रमिकों की विशिष्ट वृद्धि होनी चाहिए।
- साक्षरता कार्यक्रम उपलब्ध कराये जाने चाहिए, उनके जीवन स्तर और पलायन को बेहतर बनाने के प्रयास किया जाना चाहिए।
- बेचौन बुनाई गतिविधियों के परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में महिलाएं स्त्री रोग संबंधी समस्याएं से पीड़ित हैं भारत के सभी हिस्सों में हथकरघा क्लस्टर,विशेष तौर पर सरकार को ध्यान देना चाहिए गांवों और सुदूर इलाकों में हथकरघा में काम करने वाली महिलाओं के लिए निःशुल्क चिकित्सा शिविर और मोबाइल स्वास्थ्य केंद्र स्थापित किए जाने चाहिए।
- अनुसूचित जनजातियों के लिए आश्रम विद्यालयों की तरह, हथकरघा समूहों और गांव में स्कूल छोड़ने वालों के लिए ब्रिज स्कूलों को बनाना होगा।
- राष्ट्रीय रोजगार के अंतर्गत लाया गया गारंटी योजना, हथकरघा महिला श्रमिकों के लिए होनी चाहिए।

- महिलाओं को उचित और सक्षम बनाने के लिए न्यूनतम वेतन अधिनियम संशोधन किया गया, जबकि, उसे उनके काम के लिए उचित वेतन मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों के प्रति गतिशील होना चाहिए।
- भूख की समस्याओं से जूझ रहे हथकरघा परिवार को विशिष्ट रूप से राशन कार्ड प्रदान किया जाना चाहिए।
- महिला हथकरघा श्रमिक को प्राथमिकता उद्यमिता में भाग लेने में देनी चाहिए।
- भारत सरकार को उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए कच्चे माल सामग्री की लगातार आपूर्ति के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए।
- भारत के दूरदराज के इलाकों में कौशल विकास कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए, ताकि वे महिलाएं जो बहुत दूर से आ रही हैं उनके आवागमन को आसान बनाया जा सके।

निष्कर्ष

लगभग 2.57 लाख हथकरघा श्रमिक (महिलाओं सहित) अपनी आजीविका के लिए इस विकल्प का चयन किया है और यह दोगुनी या तिगुनी हो सकती है भविष्य में, अगर भारत सरकार द्वारा इसे संरक्षित, पोषित किया जाए तो। हालांकि भारत सरकार द्वारा हथकरघा बुनाई में असुरक्षा कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किये गये हैं, लेकिन फिर भी इनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में गिरावट देखी जा सकती हैं यहां तक कि वार्ड को भी बुनकरों के चयन में कोई दिलचस्पी नहीं है। जवाहरलाल नेहरू , भारत के पहले प्रधान मंत्री भी चाहते थे, कि बुनकर हथकरघा से हट कर, बुनाई के लिए मशीनीकरण का प्रयोग करें, वह कहते हैं, ''मुझे लगता है यदि औद्योगीकरण मे इनके अनुसार परिवर्तन नहीं किया तो हथकरघा बुनकर जीवित नहीं रह सकते!'' यह परिवर्तन की संरचनात्मक स्थिति में सुधार नहीं करता है महिलाएं, अपने कौशल में बदलाव को छोड़कर, केवल उनके शरीर पर बोझ बढ़ रहा है केवल दीर्घकालिक दृष्टि, मजबूत नीतियां और योजनाए, सामाजिक स्थिति, इससे महिलाओं और उनकी स्किलिंग को बढ़ावा मिलेगा!

संदर्भ सूची–

- व र्षिक रिपोर्ट, कपड़ा मंत्रालय, 2011– 2012.
- अप्पाराव.टी., वेंकटराव.पी.,(2012),'लिवली-हथकरघा बुनकर असुरक्षा और मुकाबला रणनीतियाँः तुलनात्मक अध्ययन", जनजातियाँ आदिवासी का अध्ययन, 10(1): 65– 72.
- आशालता पीएच., आचार्य.एम., (2009) '' मणिपुर की महिला बुनकर के बदलते परिवार और जीवन शैली।'' (अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान जर्नल)– आईएसएसएन 0974–2832 खंड 2, अंक–7.
- हथकरघा बुनकर के लिए विकेंद्रीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन अध्ययन 2010. कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन, योजना आयोग, भारतीय सरकार, नई दिल्ली।
- नरसिम्हा रेड्डी.डी. "लिंग और व्यापार नीति", हथकरघा सूचना और नीति केंद्र!
- पारिख, इंदिरा,एट अल., (1991), "महिला बुनकर", ऑक्सफोर्ड और आईबीएच प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, बॉम्बे और कलकत्ता!
- प्रेस सूचना ब्यूरो विज्ञप्ति, कपड़ा मंत्रालय, 2012
- तीसरी हथकरघा जनगणना रिपोट, 2013

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण एवं रूपांतरण

डॉ अभिषेक कुमार सरोज
(असि. प्रोफेसर– समाजशास्त्र)
उदित नारायण पीजी कॉलेज पडरौना कुशीनगर (उत्तर प्रदेश)

सारांश – *''भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण और रूपांतरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और तकनीकी बदलावों से संचालित हो रही है। पारंपरिक ग्रामीण संरचना कृषि पर आधारित थी, जिसमें जाति व्यवस्था, सामुदायिक जीवन और सीमित औद्योगिक विकास प्रमुख थे। हालाँकि, हरित क्रांति, ग्रामीण औद्योगिकीकरण, पंचायती राज व्यवस्था और डिजिटल तकनीकों के प्रसार से इस समाज में व्यापक परिवर्तन हुए हैं।शहरीकरण और प्रवासन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया, लेकिन साथ ही, सरकारी योजनाओं जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA) और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) ने बुनियादी ढांचे और रोजगार के अवसरों को मजबूत किया। डिजिटल इंडिया अभियान और ई–गवर्नेंस ने ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया। हालाँकि, बेरोजगारी, जल संकट, डिजिटल विभाजन और पर्यावरणीय असंतुलन जैसी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। इनके समाधान के लिए कृषि के आधुनिकीकरण, सतत विकास नीतियों और हरित ऊर्जा के उपयोग को प्राथमिकता देना आवश्यक है। इस शोधपत्र का निष्कर्ष यह है कि भारतीय ग्रामीण समाज का विकास समावेशी नीतियों, तकनीकी नवाचार और सामुदायिक भागीदारी से ही संभव है। यदि सरकार, निजी क्षेत्र और समाज मिलकर दीर्घकालिक विकास रणनीतियाँ अपनाते हैं, तो ग्रामीण भारत को आत्मनिर्भर और समृद्ध बनाया जा सकता है।''*

कुंजी भूत शब्द –बेरोजगारी, जल संकट, डिजिटल विभाजन, पर्यावरणीय,पुनर्निर्माण, रूपांतरण।

भारतीय ग्रामीण समाज समय के साथ विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गुजरा है। परंपरागत रूप से, यह समाज जाति व्यवस्था, सामूहिकता और कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर केंद्रित था, लेकिन आधुनिकता, औद्योगीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से इसमें व्यापक बदलाव आए हैं। कृषि से जुड़े लोगों की आजीविका में तकनीकी प्रगति और सरकारी नीतियों के कारण सुधार हुआ है, लेकिन इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसरों की तलाश में पलायन की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। शिक्षा और संचार माध्यमों की पहुंच बढ़ने से ग्रामीण समाज में जागरूकता आई है, जिससे सामाजिक भेदभाव में कमी आई है और महिलाओं की भूमिका सशक्त हुई है।

सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया में पंचायती राज व्यवस्था और ग्रामीण विकास की नीतियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वच्छ भारत अभियान, मनरेगा और डिजिटल इंडिया जैसी योजनाओं ने ग्रामीण जीवन को आधुनिकता की ओर बढ़ाया है। इसके साथ ही, स्वरोजगार और लघु उद्योगों के बढ़ावे से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली है। हालांकि, चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। भूमि विखंडन, जल संकट, बेरोजगारी और स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता ग्रामीण समाज के पुनर्निर्माण में बाधा बनती हैं। सतत विकास और समावेशी नीतियों के माध्यम से ही ग्रामीण समाज का संपूर्ण रूपांतरण संभव है, जिससे आर्थिक समानता और सामाजिक समरसता स्थापित हो सके।

भारतीय ग्रामीण समाज का पारंपरिक स्वरूप–

भारतीय ग्रामीण समाज की संरचना ऐतिहासिक रूप से कृषि आधारित रही है, जिसमें सामाजिक और आर्थिक गतिविधियाँ परंपरागत नियमों और सांस्कृतिक मान्यताओं पर निर्भर थीं। यह समाज सहकारी जीवनशैली, सामूहिक मूल्यों और प्राकृतिक संसाधनों के साथ संतुलन पर केंद्रित था। निम्नलिखित विशेषताएँ पारंपरिक ग्रामीण समाज की पहचान थीं।

1. भारतीय ग्रामीण समाज में जाति व्यवस्था का गहरा प्रभाव था। समाज विभिन्न जातियों में विभाजित था, और प्रत्येक जाति की अपनी विशिष्ट भूमिकाएँ, पेशे और सामाजिक प्रतिष्ठा होती थी। सामाजिक संबंधों, विवाह व्यवस्था और पेशागत कार्यों पर जाति व्यवस्था का नियंत्रण था। उच्च जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि निम्न जातियों को कई प्रकार के सामाजिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था। हालांकि, समय के साथ यह व्यवस्था कमजोर हुई और सामाजिक गतिशीलता बढ़ी।
2. ग्रामीण समाज में परिवार एक प्रमुख सामाजिक इकाई था, और संयुक्त परिवार प्रणाली आम थी। परिवारों में कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं, और सामूहिक निर्णय लेने की परंपरा थी। ग्राम समुदायों में आपसी सहयोग और सामूहिक जिम्मेदारियों की भावना प्रबल थी। विवाह, जन्म और त्योहारों को सामुदायिक भागीदारी के साथ मनाया जाता था, जिससे सामाजिक एकता बनी रहती थी।
3. ग्रामीण अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित थी। अधिकांश लोग कृषक थे और अपने स्वयं के खेतों में काम करते थे, जबकि कुछ लोग जमींदारों या बड़े किसानों के यहाँ मजदूरी करते थे। फसलों की खेती वर्षा और पारंपरिक कृषि तकनीकों पर निर्भर थी। कृषि के साथ–साथ पशुपालन, मत्स्य पालन और कुटीर उद्योग भी आजीविका के प्रमुख साधन थे। औद्योगिकीकरण से पहले ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर थी और स्थानीय संसाधनों पर निर्भर रहती थी।
4. कृषि के अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न कुटीर उद्योग भी प्रचलित थे, जैसे हथकरघा, कुम्हारी, बढ़ईगीरी, लुहारी और बुनाई। ये उद्योग स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकसित हुए थे और आर्थिक आत्मनिर्भरता का महत्वपूर्ण स्रोत थे। कई परिवार इन छोटे उद्योगों से अपनी जीविका कमाते थे। आधुनिक औद्योगिकीकरण और मशीनों के आगमन के बाद कुटीर उद्योगों का महत्त्व कम हुआ, लेकिन आज भी वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का हिस्सा बने हुए हैं।
5. ग्रामीण समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं का विशेष महत्त्व था। प्रत्येक गाँव में देवी–देवताओं की पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, त्यौहार और लोकपरंपराएँ प्रचलित थीं। विवाह, मृत्यु और जन्म से संबंधित रीति–रिवाज सामाजिक मान्यताओं से नियंत्रित होते थे। समाज में बुजुर्गों को विशेष सम्मान दिया जाता था, और उनके अनुभवों को जीवन जीने की दिशा के रूप में देखा जाता था।

भारतीय ग्रामीण समाज अपनी परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों और सामुदायिक संरचना के कारण विशेष रहा है। हालाँकि, समय के साथ शिक्षा, औद्योगिकीकरण, तकनीकी विकास और सरकारी नीतियों के कारण इसमें महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। फिर भी, इसकी मूलभूत संरचना और सांस्कृतिक विशेषताएँ अभी भी ग्रामीण जीवन का अभिन्न हिस्सा बनी हुई हैं पुनर्निर्माण के कारक –

भारतीय ग्रामीण समाज में हुए व्यापक बदलावों के पीछे कई आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी कारण हैं। इन परिवर्तनों ने ग्रामीण संरचना को नए स्वरूप में ढालने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(i) आर्थिक परिवर्तन– हरित क्रांति ने भारतीय कृषि में बड़ा बदलाव लाया। 1960 के दशक में उच्च उत्पादकता वाले बीज, रासायनिक उर्वरकों और सिंचाई प्रणालियों के उपयोग से फसल उत्पादन में वृद्धि

हुई। इसने खाद्यान्न की आत्मनिर्भरता बढ़ाई और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किया। कृषि सुधारों के तहत भूमि सुधार, सिंचाई योजनाएँ और किसानों को कर्ज सहायता जैसी पहलें की गईं।

पारंपरिक कृषि पर निर्भरता कम करने के लिए ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित किया गया। सरकार की विभिन्न योजनाओं, जैसे मुद्रा योजना और स्टार्टअप इंडिया, ने ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे व्यवसायों और स्वरोजगार के अवसर बढ़ाए। हस्तशिल्प, डेयरी उद्योग, जैविक खेती और टूरिज्म आधारित व्यवसायों को भी बढ़ावा मिला।

ग्रामीण क्षेत्रों में लघु और मध्यम उद्योगों की स्थापना से रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए। कृषि–आधारित उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ और हस्तशिल्प उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था के नए स्तंभ बने। इससे गाँवों में आर्थिक समृद्धि बढ़ी और पलायन की समस्या में कमी आई।

(ii) सामाजिक परिवर्तन– आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण और संविधान में दिए गए समानता के अधिकारों ने जाति–आधारित भेदभाव को कमजोर किया है। शहरीकरण और नई आर्थिक नीतियों ने पेशागत विविधता को बढ़ाया, जिससे जाति–आधारित पेशागत बंधन टूटने लगे। हालाँकि, कुछ क्षेत्रों में जातिगत असमानता अभी भी बनी हुई है, लेकिन समावेशी विकास के प्रयास जारी हैं।

ग्रामीण समाज में शिक्षा के बढ़ते प्रभाव ने सामाजिक परिवर्तन को गति दी। सरकारी योजनाओं जैसे सर्व शिक्षा अभियान, बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ और मध्याह्न भोजन योजना ने शिक्षा की पहुँच को बढ़ाया। इसके अलावा, महिला सशक्तिकरण के तहत महिलाओं को स्व–रोजगार, पंचायतों में भागीदारी और वित्तीय सहायता की सुविधाएँ दी गईं, जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

सड़कों, रेलवे और डिजिटल कनेक्टिविटी के विकास ने ग्रामीण और

शहरी क्षेत्रों के बीच की दूरी कम कर दी है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार, व्यापार और शिक्षा के अवसरों की वृद्धि हुई है। इसके कारण ग्रामीण लोग अधिक रोजगारपरक और जागरूक हुए हैं।

(iii) राजनीतिक परिवर्तन– 1992 में 73वें संविधान संशोधन के तहत पंचायती राज व्यवस्था को सशक्त किया गया। इससे गाँवों में स्वशासन की प्रक्रिया मजबूत हुई और स्थानीय विकास कार्यों में जनता की भागीदारी बढ़ी। महिलाओं और पिछड़े वर्गों को आरक्षण देकर लोकतंत्र को अधिक समावेशी बनाया गया।

शिक्षा और मीडिया की पहुँच से ग्रामीण जनता में राजनीतिक जागरूकता बढ़ी। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अपने अधिकारों को समझने लगे और चुनावों में अधिक सक्रियता से भाग लेने लगे। इससे न केवल ग्रामीण नेतृत्व उभरा, बल्कि ग्रामीण समाज की समस्याओं के समाधान के लिए भी नई नीतियाँ बनाई गईं।
(पअ) तकनीकी और डिजिटल बदलाव– डिजिटल इंडिया मिशन के तहत गाँवों में इंटरनेट, मोबाइल नेटवर्क और डिजिटल सेवाओं की पहुँच बढ़ाई गई। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में ई–गवर्नेंस, ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल बैंकिंग जैसी सुविधाएँ सुलभ हुईं।

सस्ते मोबाइल डेटा और स्मार्टफोन की उपलब्धता से गाँवों में सूचना क्रांति आई। किसान ऑनलाइन जानकारी प्राप्त करने लगे, युवा ऑनलाइन शिक्षा और नौकरियों के अवसर तलाशने लगे, और डिजिटल लेन–देन सामान्य हो गए।

सरकारी योजनाओं और सब्सिडी का लाभ सीधा लाभार्थियों के बैंक खातों में ट्रांसफर होने लगा। डिजिटल भुगतान प्रणाली, जैसे न्च् और मोबाइल वॉलेट, ने ग्रामीण व्यापार और वित्तीय लेन–देन को आसान बनाया। इससे भ्रष्टाचार में कमी आई और ग्रामीण अर्थव्यवस्था अधिक पारदर्शी बनी।

भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण कई कारकों के प्रभाव से हुआ है। आर्थिक सुधारों, सामाजिक जागरूकता, राजनीतिक भागीदारी और तकनीकी विकास ने गाँवों को एक नई दिशा दी है। हालाँकि, अभी भी कुछ चुनौतियाँ बनी हुई हैं, लेकिन सतत विकास और नीतिगत सुधारों के माध्यम से ग्रामीण भारत को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

रूपांतरण की प्रक्रिया –

भारतीय ग्रामीण समाज में परिवर्तन धीरे–धीरे लेकिन प्रभावी तरीके से हुआ है। यह रूपांतरण शहरीकरण, सरकारी नीतियों और सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव से संचालित हुआ। निम्नलिखित प्रमुख कारक इस प्रक्रिया को गति देने में सहायक रहे हैं:

- **शहरों की ओर तेजी से पलायन –** रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवनशैली की तलाश में ग्रामीण लोग बड़े पैमाने पर शहरों की ओर पलायन करने लगे। कृषि में कम आमदनी, प्राकृतिक आपदाओं और ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित सुविधाओं के कारण यह प्रवृत्ति बढ़ी। प्रवासन के कारण शहरों में श्रमिकों की संख्या बढ़ी, लेकिन गाँवों में कामगारों की कमी भी महसूस होने लगी।
- **ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव–** शहरीकरण के कारण गाँवों में श्रम शक्ति की कमी हुई, जिससे पारंपरिक कृषि और कुटीर उद्योग प्रभावित हुए। हालाँकि, प्रवासी मजदूरों द्वारा गाँवों में भेजे गए धन (रेमिटेंस) से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समर्थन मिला। इसके अलावा, शहरीकरण से उपभोक्ता संस्कृति बढ़ी, जिससे ग्रामीण बाजारों में व्यापार और सेवा क्षेत्र का विस्तार हुआ।
- **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA)–** यह योजना ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए लागू की गई। इसके तहत गाँवों में श्रम आधारित कार्यों के लिए 100 दिन की गारंटीकृत रोजगार सुविधा दी जाती है। इसने प्रवासन को रोकने और स्थानीय स्तर पर आजीविका के साधन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)–** इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों को शहरों से जोड़ना है। अच्छी सड़क सुविधाओं से व्यापार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक ग्रामीणों की पहुँच आसान हुई। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिली और उत्पादों को बाजार तक पहुँचाने में सहूलियत हुई।
- **ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान–** डिजिटल इंडिया मिशन के तहत इस अभियान को लागू किया गया, जिससे गाँवों में इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं का विस्तार हुआ। ग्रामीण लोग डिजिटल लेन–देन, ऑनलाइन शिक्षा, कृषि संबंधित जानकारी और ई–गवर्नेंस सेवाओं का उपयोग करने लगे। इससे ग्रामीण समुदायों में जागरूकता और आर्थिक अवसरों की वृद्धि हुई।
- **दलित और आदिवासी आंदोलन –** दलित और आदिवासी समाज ने अपने अधिकारों और सामाजिक न्याय की मांग को लेकर कई आंदोलन चलाए। इन आंदोलनों ने जातिगत भेदभाव को कम करने, आरक्षण व्यवस्था लागू करने और शिक्षा तथा रोजगार में समान अवसर प्राप्त करने में सहायता की। इससे ग्रामीण समाज में सामाजिक समानता की दिशा में सकारात्मक बदलाव आया।
- **महिला अधिकार और सशक्तिकरण अभियान–** महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए कई संगठनों और आंदोलनों ने कार्य किया। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी में महिलाओं की भूमिका को मजबूत किया गया। स्व–सहायता समूहों (ैभ्ळ), महिला आरक्षण और कानूनी सुधारों ने ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया और उनके सामाजिक दर्जे में सुधार किया।

भारतीय ग्रामीण समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया कई स्तरों पर विकसित हुई है। शहरीकरण और प्रवासन, सरकारी योजनाओं और सामाजिक आंदोलनों ने ग्रामीण जीवन को आधुनिक बनाया है। हालाँकि, संतुलित विकास के लिए अभी भी समावेशी नीतियों और योजनाओं की आवश्यकता बनी हुई है, ताकि ग्रामीण और शहरी विकास के बीच समरसता बनी रहे।

चुनौतियाँ –

भारतीय ग्रामीण समाज में सुधार और विकास के बावजूद कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। जो इस प्रकार हैं।

1. बेरोजगारी और गरीबी – ग्रामीण भारत में बेरोजगारी और गरीबी एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। इसकी मुख्य वजहें निम्नलिखित हैं:

- **रोजगार के सीमित अवसर –** ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के साधन मुख्यतः कृषि और उससे जुड़े कार्यों पर निर्भर हैं। उद्योग, सेवा क्षेत्र और अन्य व्यावसायिक अवसरों की कमी के कारण युवाओं को रोजगार के लिए शहरों की ओर पलायन करना पड़ता है।
- **कृषि पर अत्यधिक निर्भरता –** पारंपरिक कृषि में अत्यधिक निर्भरता के कारण किसानों की आय अस्थिर रहती है। प्राकृतिक आपदाओं, सूखे, बाढ़ और फसल के उचित मूल्य न मिलने से आर्थिक संकट बढ़ता है।
- **शिक्षा और कौशल विकास की कमी –** ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण के अवसर सीमित हैं, जिससे युवा रोजगार के नए अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते।
- **गरीबी का दुष्चक्र** – बेरोजगारी और कम आय के कारण कई परिवार गरीबी के चक्र में फंसे रहते हैं। उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य मूलभूत सुविधाओं तक समुचित पहुँच नहीं मिल पाती, जिससे उनका सामाजिक–आर्थिक विकास बाधित होता है।

2. जल संकट और पर्यावरणीय समस्याएँ – जल संकट और पर्यावरणीय असंतुलन ग्रामीण जीवन पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसके मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:

बढ़ता जल संकट – अनियमित वर्षा, भूजल का अत्यधिक दोहन और जल संरक्षण के उचित उपायों की कमी के कारण कई ग्रामीण इलाकों में जल संकट गहराता जा रहा है।

वनों की कटाई और भूमि क्षरण – अंधाधुंध वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ रहा है। इससे मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है, जिससे कृषि उत्पादन घटता है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव – अनिश्चित मानसून, सूखा और बाढ़ जैसी समस्याएँ कृषि को सीधे प्रभावित करती हैं, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

- **जैव विविधता की हानि –** वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट होने से जैव विविधता में कमी आ रही है, जिसका प्रभाव पूरे पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है।

3. डिजिटल विभाजन – तकनीकी प्रगति के बावजूद ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच डिजिटल असमानता बनी हुई है, जिसके कारण ग्रामीण समुदाय आधुनिक डिजिटल सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं।

- **इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी –** दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट सेवाएँ या तो उपलब्ध नहीं हैं, या फिर उनकी गति और गुणवत्ता खराब है।

- **डिजिटल साक्षरता का अभाव** – ग्रामीण समुदायों में डिजिटल तकनीक का सीमित ज्ञान होने के कारण वे ऑनलाइन सेवाओं, डिजिटल बैंकिंग और ई–गवर्नेंस सुविधाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाते।
- **तकनीकी संसाधनों की अनुपलब्धता** – कंप्यूटर, स्मार्टफोन और अन्य डिजिटल उपकरणों की कमी के कारण डिजिटल सुविधाओं तक पहुँच सीमित रहती है।
- **ऑनलाइन शिक्षा में बाधा** – डिजिटल संसाधनों की अनुपलब्धता से ग्रामीण छात्र ऑनलाइन शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते, जिससे उनकी शिक्षा प्रभावित होती है।

भारतीय ग्रामीण समाज की चुनौतियों के समाधान– भारत के ग्रामीण समाज को आत्मनिर्भर और समृद्ध बनाने के लिए सतत विकास, तकनीकी नवाचार और सामाजिक सुधार आवश्यक हैं। बेरोजगारी, जल संकट और डिजिटल विभाजन जैसी समस्याओं को दूर करने के लिए दीर्घकालिक और प्रभावी रणनीतियों की जरूरत है। नीचे प्रमुख समाधान दिए गए हैं:

1. कृषि के आधुनिकीकरण पर बल – कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है, लेकिन पारंपरिक खेती में उत्पादकता कम होने और जलवायु परिवर्तन के कारण किसानों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसे सुधारने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

तकनीकी नवाचार और आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग

- **ड्रिप सिंचाई और जल संरक्षण तकनीक** – जल संकट से निपटने के लिए जल प्रबंधन तकनीकों जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई को अपनाना जरूरी है।
- **स्मार्ट कृषि तकनीक** – सेंसर आधारित खेती, ड्रोन तकनीक और डेटा विश्लेषण से किसानों को फसल की स्थिति, जल आवश्यकता और उर्वरक उपयोग की सटीक जानकारी मिल सकती है।
- **जैविक और प्राकृतिक खेती** – जैविक खादों, कीटनाशकों और पारंपरिक बीजों के उपयोग को बढ़ावा देकर खेती को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है।

सरकार और निजी क्षेत्र की भागीदारी

- **किसानों को वित्तीय सहायता** – उचित मूल्य पर ऋण, बीमा योजनाएँ और सब्सिडी देकर छोटे और मध्यम किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त किया जा सकता है।
- **कृषि प्रशिक्षण और अनुसंधान** – किसानों को आधुनिक तकनीकों की जानकारी देने के लिए कृषि प्रशिक्षण केंद्र और किसान हेल्पलाइन स्थापित किए जाने चाहिए।

बाजार तक सीधी पहुँच

- **डिजिटल मार्केटिंग और ई–नाम (E&NAM)** – किसानों को डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से अपने उत्पादों को सीधे बाजार में बेचने का अवसर मिलना चाहिए, जिससे बिचौलियों की भूमिका कम होगी और किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिलेगा।

2. ग्रामीण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार– ग्रामीण विकास के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का मजबूत होना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का विस्तार

- **डिजिटल शिक्षा और ऑनलाइन संसाधन** – स्मार्ट क्लासरूम, मोबाइल शिक्षा ऐप और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जा सकती है।

- **व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास** – कृषि, मशीनरी, डिजिटल मार्केटिंग, हैंडीक्राफ्ट और अन्य कौशल आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे ग्रामीण युवा आत्मनिर्भर बन सकें।
- **शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता में सुधार** – ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति और स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण

- **टेलीमेडिसिन और मोबाइल स्वास्थ्य सेवाएँ** – दूरस्थ गाँवों में स्वास्थ्य सेवाओं को पहुँचाने के लिए मोबाइल क्लीनिक और ऑनलाइन परामर्श सेवाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- **प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या बढ़ाना** – गाँवों में बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए अधिक अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए।
- **मातृ और शिशु स्वास्थ्य पर ध्यान देना** – गर्भवती महिलाओं और नवजात शिशुओं के लिए विशेष स्वास्थ्य योजनाएँ चलाई जानी चाहिए, जिससे कुपोषण और शिशु मृत्यु दर को कम किया जा सके।

3. सतत विकास नीतियाँ और हरित ऊर्जा का उपयोग

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के लिए हरित ऊर्जा और प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है।

स्वच्छ ऊर्जा और जल संरक्षण

- **सौर और पवन ऊर्जा का उपयोग** – ग्रामीण क्षेत्रों में सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई पंप, स्ट्रीट लाइट और घरेलू बिजली आपूर्ति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- **वर्षा जल संचयन और जल पुनर्चक्रण** – गाँवों में जल संरक्षण के लिए पारंपरिक तालाबों और झीलों का पुनरुद्धार किया जाना चाहिए।

वृक्षारोपण और जैव विविधता संरक्षण

- **वनों की कटाई रोकना** – वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकने और वृक्षारोपण अभियान चलाने से पर्यावरण को संतुलित किया जा सकता है।
- **जैव विविधता को संरक्षित करना** – प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग से मिट्टी की उर्वरता और पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखा जा सकता है।

स्वच्छता और कचरा प्रबंधन

- **स्वच्छ भारत अभियान को और मजबूत बनाना** – ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता अभियान चलाकर जागरूकता बढ़ाई जानी चाहिए।
- **कचरा प्रबंधन और पुनर्चक्रण** – गाँवों में ठोस और जैविक कचरे के उचित निपटान और पुनर्चक्रण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

भारतीय ग्रामीण समाज का पुनर्निर्माण और रूपांतरण कई आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी बदलावों का परिणाम है। पारंपरिक ग्रामीण संरचना, जो मुख्य रूप से कृषि और जाति–आधारित सामाजिक व्यवस्थाओं पर निर्भर थी, अब आधुनिकरण, शहरीकरण और डिजिटल क्रांति से प्रभावित हो रही है। हरित क्रांति, औद्योगीकरण, डिजिटल इंडिया अभियान और पंचायती राज व्यवस्था जैसे कारकों ने ग्रामीण जीवन को नई दिशा दी है। शिक्षा और महिला सशक्तिकरण ने सामाजिक सुधारों को

गति दी, जबकि सरकारी योजनाओं, जैसे मनरेगा और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, ने आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा दिया। हालाँकि, बेरोजगारी, जल संकट, पर्यावरणीय असंतुलन और डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए कृषि के आधुनिकीकरण, सतत विकास नीतियों और डिजिटल समावेशन पर ध्यान देना आवश्यक है। तकनीकी नवाचारों, हरित ऊर्जा और सामाजिक जागरूकता अभियानों से ग्रामीण क्षेत्रों का संतुलित और समावेशी विकास संभव है।भारतीय ग्रामीण समाज का भविष्य समृद्ध और आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक है कि सरकार, निजी क्षेत्र और समाज मिलकर एक समावेशी विकास मॉडल अपनाएँ। इससे न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी, बल्कि सामाजिक और पर्यावरणीय संतुलन भी बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह, योगेन्द्र (2000). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन। दिल्लीः रावत पब्लिकेशन।
2. शर्मा, के. एल. (2013). भारतीय ग्रामीण समाज का समाजशास्त्र। जयपुरः रावत पब्लिकेशन।
3. देसाई, ए. आर. (2005). भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन। मुंबईः पॉप्युलर प्रकाशन।
4. भारत सरकार (2023). राष्ट्रीय ग्रामीण विकास रिपोर्ट। नई दिल्लीः ग्रामीण विकास मंत्रालय।
5. चटर्जी, दीपांकर (2018). भारत में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन। कोलकाताः ओरिएंट ब्लैकस्वान।

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

CONSTRUCTION OF STANDARDIZED SOCIO-ECONOMIC STATUS SCALE QUESTIONNAIRE

Prof. Surendra Pal
Department of Teacher Education
D.A.V. (P.G.) College, Muzaffarnagar, U.P.
Prof. Rakesh Kumar Sharma
Department of Education
C.C.S. University, Meerut
&
Mr. Praveen Kumar
Research Scholar
C.C.S. University, Meerut

Abstract

Socio-economic status scale has been considered as an important tool to know about the progress status of any country. With the help of socio-economic status scale, we can gather information about health, birth and death rate ratio, education level, their interest area, human relations, acceptance of different types of goods, etc. of the population at a particular time and the trend as well. In the past, many sociologists, educationists and psychologists have worked in the direction of measuring the socio-economic status of family and establishing the status of the person in the society. But as a matter of fact, that Socio-economic status is a continuously changing process in a decade's time every time the tool is need to modified to new version or the new scale should be prepared by the investigator at the time of research. Due to this very reason, in the project sanctioned by the U.P. Govt. Higher Education Department, researchers felt the need to prepare the new standardized test for measuring the Socio-economic Status of B.Ed. students. In this regard, the present paper delt with the construction and standardized of Socio-economic Status Scale questionnaire.

Key Words: Socio-economic status, Item-analysis, Reliability, Validity. Norms

Introduction:

Socio-economic status (SES) refers to an individual's or family's position in a social hierarchy based on their economic standing, education, and occupation. It is a broad marker of social standing, affecting access to resources and opportunities, and influencing various aspects of life, including health and well-being. Determinants of social position are a matter of social change. It varies with time, region, culture and paying capacity of people. Growing economy of India, and implementation of New Pay Scales as recommended by Seventh Pay Commission, technological explosion, impact of electronic media, print media and education has changed many parameters of social position in last decades. Now a days, number of followers of a person in social networking sites like Facebook, Twitter or Instagram also counts the ability of that person to influence mass and so as his/her level of social status is determined. Today we are running in the

digital era where globalization, liberalisation and privatization has the major influence in the society. Today modernity is regarded as more important than all other aspects. The level of education, modern life styles, kinds of gadgets, facilities and services that a person is enjoying are the major determinants of the social position of a person.

Although, number of socio-economic status scale are developed in recent past years but due to fast changing society with respect to economic and technological advancement, most of them are not able to meet these changing parameters. For example, few years back, Mobile Phone was a Luxurious item of aristocrat families now it has become necessity of layman. Now people are concerned about branded items irrespective of their high prices. Because of this, a new way of thinking has emerged to define social position of an individual. Though Indian society is still struggling with some traditional social diversification of cast, class, race and power yet in recent years emerging awareness through electronic and print media has developed a new social pattern in India. Now caste is not considered as important factor in determining status of individual as once it was considered. Education, modern lifestyle, socio-cultural participation, ability to influence mass, future possibilities of a person, health status, enjoyment of modern facilities including modern technology, various services and leisure-enjoyment has become more in determining wealth of a person.

Many factors directly and/or indirectly influence the all-round development of the students. The social, emotional, educational, health and personality development etc. are mostly depends on and are generally influenced by economic status of the family and the social status the family carries in the society. Many researchers by their researches have emphatically established that socio-economic status of the family carries greater influence along with the other external factor on the development of the individuals. It is a fact that there is a change in economic standard of a person in every decade. The purchase power also enhances. It has also been felt that there is a drastic change in the social scenario after the independence. Now there is more openness in social situations, breakup of old joint family system, migration of villagers towards urban area, liking for education and especially high technical and professional education etc. are prominent now a days.

Therefore, the researchers felt the need of such a socioeconomic status scale which is capable of measuring in present socio-economic situation where the old theory of luxury, comfort and necessity has almost completely changed and the things which are used to be in category of luxury are in the necessary category of today's life even in middle economic groups. These changes have been noticed in both urban and rural areas and the gadgets like T.V., Motor cycle/scooter Electricity Car/Jeep, iPhone, Dish TV, and A.C. etc. can be seen even in village homes. In this regard, the researchers constructed this test which could be into the present-day scenario of socio-economic zone availability.

Development of the Tool:

Socioeconomic scale is designed to measure the social position of a person in the present-day socio-economic scenario. Socio-economic status of a person in this scale refers to the 'status of his/her family in relation to their level of socio-cultural participation, ability to influence mass,

level of education, kind of occupation, financial position, health well-being, lifestyle, level of aspiration, kind of gadgets, services and leisure facilities that the family enjoys. This is scale is an endeavour to ascertain the socio-economic status of an individual based on current social structure within new thinking.

The scale has been developed in Hindi language. It was divided into six major dimensions which are Personal & Family Related Information, Socio-cultural Related Information, Education Related Information, Income Related Information, Information about Possession of Goods and Services and Health Related Information. Initially 45 items in the above mentioned five dimensions were constructed and this list of 45 items was given to panel to 10 experts belonging to the field of sociology, education and psychology. On the recommendation of these experts and their agreement and suggestion regarding the items, 40 items were retained in the first format of the scale. The first format of the scale was given to 200 college students. After scoring and Item-analysis was done on the basis of 27% top and bottom dichotomy. The 't' test was applied to each item and only those items were retained which are significant at 0.05 level of significance i.e. 95% minimum agreement. Following table shows the 't' values of each item in the first initial draft of the test:

Table 1: Item-Analysis of each item

Statement S. No.	't' Value	Result at 0.05 Level of Significance	Remark
1.	4.96	Significant	Accepted
2.	2.67	Significant	Accepted
3.	7.57	Significant	Accepted
4.	3.81	Significant	Accepted
5.	1.10	Insignificant	**Rejected**
6.	1.84	Insignificant	**Rejected**
7.	2.96	Significant	Accepted
8.	4.57	Significant	Accepted
9.	3.92	Significant	Accepted
10.	2.67	Significant	Accepted
11	2.99	Significant	Accepted
12.	1.92	Insignificant	**Rejected**
13.	3.49	Significant	Accepted
14.	2.72	Significant	Accepted
15.	4.67	Significant	Accepted
16.	3.58	Significant	Accepted
17.	1.88	Insignificant	**Rejected**
18.	5.77	Significant	Accepted
19.	1.45	Insignificant	**Rejected**
20.	6.57	Significant	Accepted

21.	5.32	Significant	Accepted
22.	1.82	Insignificant	**Rejected**
23.	5.66	Significant	Accepted
24.	3.84	Significant	Accepted
25.	1.75	Insignificant	**Rejected**
26.	4.99	Significant	Accepted
27.	3.62	Significant	Accepted
28.	4.92	Significant	Accepted
29.	1.89	Insignificant	**Rejected**
30.	3.71	Significant	Accepted
31.	3.82	Significant	Accepted
32.	6.74	Significant	Accepted
33.	6.28	Significant	Accepted
34.	3.94	Significant	Accepted
35.	4.79	Significant	Accepted
36.	1.78	Insignificant	**Rejected**
37.	3.89	Significant	Accepted
38.	4.86	Significant	Accepted
39.	1.52	Insignificant	**Rejected**
40.	3.95	Significant	Accepted

The item number with serial no. 5,6,12, 17, 19, 22,25,29,36 & 39 has 't' value less than table value 1.96 at 0.05 level of significance. Therefore, these items are rejected in the final form of the draft.

Final Draft:

Finally, out of forty items thirty items that are significant at both 0.05 and 0.01 level of significance were included in the final draft of the test. As such 30 items were sorted out and the final form the scale has 30 items. These thirty items include six different dimensions of socio-economic parameters. The distribution of items with dimensions of Socio-economic Status scale is given below:

Table 2: Different Dimensions of Socio-economic Status Scale Questionnaire

Sections	Dimensions	Items	Total Items
Part-I	Personal & Family related Information	1 to 6	06
Part-II	Socio-cultural Related Information	7 to 10	04
Part-III	Educational Information	11 to 14	04
Part-IV	Income Related Information	15 to 20	06
Part-V	Information about Possession of Goods and Services	21 to 25	05
Part-VI	Health Related Information	26 to 30	05
	Total		**30**

Scoring Procedure:

The scoring of Socio-economic Status Scale is easy and objective. To find the total score in Socio-economic status scale the examiner should add the scores where the respondent has put a tick (√) mark as is his/her response. Total score of Socio-economic Status Scale is obtained after adding scores of all the Six sections i.e. from item number 1 to 30.

Reliability:

Reliability of the scale has been measured by Split-half and Test-retest method. To measure the reliability of the test it was administered on 100 college students. To measure the Test-retest reliability it was re-administered after a gap of 15 days. The results are given below and indicates that the scale is highly reliable.

Table 3: Reliability of the test

S.No.	Type of Reliability	Reliability Co-efficient
1.	Test-Retest Reliability	0.82
2.	Split-Half Reliability	0.73

Validity:

The researchers have determined following types of validity:

Face validity: Face validity technique was applied to know the validity of Socio-economic Status Scale. Subject Experts found in their investigation that the scale measure the decided purpose of the scale.

Content Validity: For the purpose of content validity, the scale was tested against the parallel form, via Socio-economic Status Scale developed by Dr. Abhaya R. Joglekar and Dr. Rupa Salhotra and the coefficient of correlation obtained was 0.63 which is significant at 0.01 level of significance. This indicates that the present test developed is valid scale.

Norms:

Data of 1000 respondents were gathered from the various district of Uttar Pradesh. Varanasi (150), Kushinagar (150), Bulandshar (150), Guttam Buddh Nagar (150), Meerut (150), Muzaffarnagar (150), Saharanpur (100). The statistics of this sample are as follows:

Table 4: Statistics of the Sample

S.No.	Statistics	Values
1.	Total Sample	N=1000
2.	Mean	M= 69.82
3.	Standard Deviation	σ= 14.58

With the help of Normal Probability Curve the Socio-economic status was divided into five categories Very Good, Good, Average, Poor and Very Poor. The corresponding scores that fall in these categories are mention in the following table:

Table 5: Norms of the test

S. No.	Test Scores	Categories of Socio-economic Status
1.	Above 96.04	Very Good
2.	78.56 to 96.04	Good
3.	61.07 to 78.56	Average
4.	43.58 to 61.07	Poor
5.	Below 43.58	Very Poor

Limitations of the Scale:

The Socio-economic Status Scale has the following limitations:

1. The scale is not suitable for small children (below age of 15) who do not possess adequate knowledge of their family and family members.
2. It is a verbal test and only literate persons are able to respond.

Conclusion:

The researcher has developed this tool for measuring the Socio-economic Status as one of the predictors in selection in profession course of teaching, i.e. specially B.Ed. The is also useful to other researcher if they wish to measure the Socio-economic Status of college going students.

Acknowledgement:

This research paper is an outcome of the project sanctioned & funded by **Department of Higher Education, U.P. Government**, Lucknow vide letter no. - Govt. Order No.- 23/2022/116/Seventy-4-2022-4(28)/2021, Serial No. 06 dated 31/03/2022 to P.I. Dr. Surendra Pal and Co-P.I. Dr. Rakesh Kumar Sharma for the research topic "**Analysis of Predictors for the Selection in Professional course of Teaching."**

References:

- Anastasi, A. (1971), 'Psychological Testing' (Third Indian Print), New Delhi: Oxford and IBH Publishing Co.
- Best, John W. & Khan, James V. (2018), 'Research in Education' Noida: Pearson Indian Education Services Pvt. Ltd. South Asia.
- Gupta, S.P. (2020), 'Research Introductory: Concepts, Methods and Techniques', Prayagraj: Sharda Pustak Bhavan.
- Joglekar, A.R. & Sahotra, Rupa (2015), 'Socio-economic Status Scale', Agra: National Psychological Corporation.
- Kalia, A.K.& Sahu, S. (2012), 'Socio-economic Status Scale (Urban & Rural)', Agra: National Psychological Corporation.
- Kapoor, S.D. & Singh, R.N. (1998), 'Socio-economic Status Scale Questionnaire (SESSQ-Urban)', New Delhi: Psycho Centre.
- Pareek, U. & Trivedi, G. (1964) 'Categorisation of rural socio-economic groups' Journal of Social Work, 24, 293-303.
- Shah, B. (1986), 'Social Distance Scale', Agra: Psychological Research Cell.

- Sharma, R.A. (2015), 'Advanced Statistics in Education and Psychology', Meerut: R. Lall Book Depot.
- Singh, R.A. & Saxena, 'S.K. (1981), Socio-economic Status scale', Agra: Agra Psychological Research Cell.
- Pal, Surendra (2017), 'Assessment for Learning', New Delhi: Arjun Publishing House.
- Upadhyay, S.K. & Saxena, A. (2008), 'Socio-Economic Status Scale', Agra: H.P. Bhargav Book House.
- Verma, R.P., Saxena, P.C. & Mishra, U. (2008), 'Socio-economic Status Index', Agra: National Psychological Corporation.
- Warner, W.L. et. Al. (1969), 'A manual of procedures for Measurement of Social Status', New York: Harper Torch Books. The Academy Library, Harper Brothers 1-44.

****

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

विजयलक्ष्मी पंडित का योगदानः संक्षिप्त जीवनी एवं भारत निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का अध्ययन

तलत परविन
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविधालय, धनबाद
E-mail : pravintalat21@gmail.com

अमूर्त :–

प्रस्तुत शोध पत्र में विजयलक्ष्मी पंडित के जीवन की झलक, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भूमिका तथा राष्ट्रीय एवं अंराष्ट्रीय राजनीति में विजयलक्ष्मी पंडित के योगदानों का उल्लेख किया गया है। राजनीति में महिलाओं को शामिल होने और अपने लिए जगह बना पाने में काफी चुनौतियों का सामना करना पङता है, लेकिन इसके बावजूद भी महिलाओं ने न सिर्फ राजनीति में अपने लिए जगह बनाई बल्कि उन्होंने अपनी सूझबूझ और कार्य से अपने देश को भी गौवान्वित किया। देश दुनियाँ की राजनीति में ऐसी कई महिलाएँ रही हैं जो महिला सशक्तिकरण की उदाहरण हैं, इन्हीं महिलाओं में से एक महिला विजयलक्ष्मी पंडित भी हैं जिन्हों ने अपने जीवन में अनेको संघर्ष किए और खूब यश कमाया, वे महिला सशक्तिकरण की उदाहरण बनी। विजयलक्ष्मी एक अग्रणी राजनीतिज्ञ और राजनयिक भी रही हैं, जिन्हें उनकी प्रतिभा और आकर्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी सराहा भी गया है। वे भारत की पहली महिला थीं जिन्होंने बुद्धिमत्ता के साथ–साथ देश का नेतृत्व किया और अंतर्राष्ट्रीय जगत को बताया कि महिलाओं में अदम्य शक्ति और साहस है, वे किसी भी तरह से पुरूषों से कम नहीं हैं। विजयलक्ष्मी शांति के लिए सबसे प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय आवाजों में से एक बन गईं।

मूल शब्दः– विजयलक्ष्मी, योगदान, भारत, राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय, सशक्तिकरण

प्रस्तावना :–

भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की बहन विजयलक्ष्मी पंडित भारतीय स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ–साथ एक राजनेत्री और दुनियाँ के कई प्रमुख देशों में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली राजदूत थी। उनका जन्म 18 अगस्त 1900 ई0 को उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद (प्रयागराज) में हुआ था, वह प्रसिद्ध वकील मोतीलाल नेहरू की दूसरी संतान थी, उनकी माता का नाम स्वरूपरानी थुस्सू था। वह अपने बङे भाई जवाहर लाल नेहरू से 11 वर्ष छोटी थीं, उनके बच्चपन का नाम स्वरूप कुमारी था। उनकी शिक्षा प्रमुख रूप से घर में ही हुई थी। शिक्षा के अलावा साहित्य, राजनीति और घुङसवारी में भी उनकी रूची थी। नेहरू परिवार में जन्मी स्वरूप कुमारी का प्रारम्भिक जीवन बिल्कुल राजकुमारी की तरह रहा, उन्हें धन दौलत और ऐशो आराम की कमी न थी। 19 साल की उम्र में उन्होंने एक मुस्लिम युवक से शादी करने की इच्छा जताई थी, जिस पर घरवालों ने नाराजगी जाहिर की, जिसके बाद 1921 ई0 में उनकी शादी काठियावाङ के प्रसिद्ध वकील और इतिहासकार रंजीत सीतारात पंडित से हुई। शादी के बाद स्वरूप कुमारी ने अपना नाम विजयलक्ष्मी पंडित कर लिया था। उनके पति भी स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते रहे थे और 1944 में जेल में ही उनका देहांत हो गया था।[1] विजयलक्ष्मी चुँकी राजनीति में रूची रखती थीं सबसे पहले उन्होंने मात्र 16 वर्ष की छोटी आयू में ही अपनी पहली राजनीतिक बैठक में भाग लिया था, जो राजनीतिक बैठक उनकी चचेरी बहन रामेश्वरी नेहरू द्वारा दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मजदूरों के साथ हो रहे व्यवहार के विरोध में चर्चा करने के लिए आयोजित की गई थी।[2] नेहरू परिवार की सदस्य और एक प्रसिद्ध वकील

और इतिहासकार की पत्नी होने के बावजूद भी विजयलक्ष्मी को राजनीतिक क्षेत्र में कई कठिनाइयों का सामना करना पडा, लेकिन उन्होंने कभी परिस्थिति के आगे हार नही मानी और अपनी मेंहनत और साहस से राजनीति में अपनी जगह बनाने में सफल रहीं। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी एक सुलझी हुई अनुभवी राजनीतिज्ञ के रूप में अपना नाम दर्ज कराया। वह हमारे देश का गौरव और नए आजाद भारत का चमकता चेहरा थीं। उन्होंने तीन अलग–अलग देशों में भारत देश का प्रतिनिधित्व भी किया था।[3]

शोध के उद्देश्यः–

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य विजयलक्ष्मी पंडित की जीवन एवं संघर्ष की व्याख्या करना तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भूमिका तथा राष्ट्रीय एवं अंराष्ट्रीय राजनीति में विजयलक्ष्मी पंडित के योगदानों का अध्ययन करना है।

शोध प्रविधिः–

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीय स्त्रोतों जिसमें, पुस्तकें, लेख, समाचारपत्र, वेबसाइट के आधार पर डेटा का संग्रह किया गया है तथा इस अध्ययन हेतु वर्णानात्मक पद्धति का प्रयाग किया गया है।

साहित्य समीक्षाः–

भगवान, (2023),[4] 'विजयलक्ष्मी पंडित ए ऑटोबायोग्राफफी', इस पुस्तक में राजनेता के रूप में विजयलक्ष्मी की भूमिका पर विस्तार से चर्चा की गई है। विजया लक्ष्मी पंडित एक लोक सेवक,एक बेहतरीन राजनीतिज्ञ और अदभुत वक्ता थीं। वह अपने राजदूत पदों के माध्यम से राष्ट्रों के समुदाय में भारत की प्रतिष्ठा बढने में समक्ष थीं साथ ही संयुक्त राष्ट्र में भी, जहाँ उन्होंने महासभा की अध्यक्षता की थी वह विदेशों में भी अच्छी तरह से जानी जाती थीं। **गुथरी,** (1962),[5] 'मैडम एम्बेसडर द लाईफ ऑफ विजयलक्ष्मी पंडित', इस पुस्तक से विजयलक्ष्मी पंडित के जीवन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इस में बताया गया है कि कैसे पंडित ने न सिर्फ पुरूष प्रधान समाज में राजनीति में प्रवेश किया,(महिलाओं के लिए राजनीति में प्रवेश करना बहुत कठिन था) बल्कि कई संघर्षों का सामना करने के बाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश कर एक मजबूत महिला के रूप में विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाई। **गैलब्रेथ,** (2018),[6] 'विजयलक्ष्मी पंडितःप्रिजन डेज', इस पुस्तक में उनके जेल के अनुभव और उन कठिनाइयों का वर्णन किया है जो विजयलक्ष्मी ने स्वतंत्रता की लडाई में शामिल होने के दौरान झेली थी,राशन में मिट्टी और पत्थर मिला हुआ था,पानी और सैनिटरी सुविधाएँ, 9 आने प्रतिदिन के भत्ते पर जीवित रहना,केवल सोने के लिए कठोर जमीन। इस पुस्तक में विजयलक्ष्मी पंडित के जेल में सामना की गई सभी कठिनाइयों का उल्लेख किया गया है जो महत्वपूर्ण है। **लॉट,** (2018),[7] 'द वूमन हु स्वेड अमेरिकाः विजयलक्ष्मी पंडित,1945,' इस पत्रिका के माध्यम से पता चलता है के विजया लक्ष्मी ने अनेकों संघर्षों का सामना करते हुए किस प्रकार आगे बढती गई। विजयलक्ष्मी पंडित और संयुक्त राज अमेरिका में उनके समर्थकों की कुशल समयबद्धता और अथक उर्जा ने भारत दावों के लिए प्रचार की बाढ ला दी है, ऐसे समय में जब दुनियाँ के लोग अपने भाग्य को आकार देने के लिए सिद्धांतों और नीतियों के निर्माण के लिए सम्मेलन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। **रजनी,** (2024),[8] 'रोल ऑफ विजयलक्ष्मी पंडित इन फ्रीडम स्ट्रगल', इस पत्र में विजयलक्ष्मी के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का वर्णन मिलता है। इसमें पंडित के सामने आने वाली कठिनाईयों का वर्णन किया गया है साथ ही साथ उनके द्वारा असहयोग आंदोलन में भाग लेने, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं 1942 का भारत छोडो आंदोलन में भाग लेने का वर्णन भी मिलता है। **अनुजा,** (2023),[9] 'ए फ्रीडम फाईटर,डिप्लोमैट एंड पोलिटिशियन–द विजयलक्ष्मी पंडित,' इस पत्र में विजयलक्ष्मी पंडित के प्रारंभिक जीवन, उनकी शिक्षा, उनके निजी जीवन, उनके करियर, तथा उनके जीवन–यात्रा तथा उनकी

पुस्तकों आदि का वर्णन मिलता है। विजयलक्ष्मी पंडित ने अपने मेहनत के दम पर बहुत ही महत्वपूर्ण और उच्च पद धारण किय, भारत की महिलाओं के लिए मार्गदर्शक बनी। 1975 के आपातकाल के दौरान वे इंदिरा गांधी की आलोचक भी रहीं और कांग्रेस पार्टी को छोंड कर अन्य दल में शामिल हो गई थीं, वे अपने विचारों और साहस के बलबूते पर वो स्थान प्राप्त कर पाई जो किसी महिला के लिए आसान नही है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में विजयलक्ष्मी पंडित का योगदान

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में कई महिलाओं ने योगदान दिया था लेकिन देश के पहले प्रधानमंत्री की बहन विजयलक्ष्मी पंडित का देश के आजादी के पहले और बाद में योगदान अद्वितीय था।[10] राजनीतिक परिवार में जन्मी और अपने परिवार को राजनीति से जुडा देख वह भी अपने पिता मोती लाल नेहरू, भाई जवाहर लाल नेहरू और चचेरी बहन रामेंश्वरी नेहरू की तरह आंदोलनों में रूची लेने लगी, उनका परिवार महात्मा गांधी जैसे महान विचारकों और नेताओं से काफी अधिक प्रभावित था, यही कारण है कि जब 1919 ई0 में महात्मा गांधी आनन्द भवन आए तो विजयलक्ष्मी पंडित उनसे मिली। महात्मा गांधी से मिलने के बाद वह उनके विचारधराा से काफी प्रभावित हुईं और गांधीजी के आंदोलन में भाग लेने की इच्छा जताई, और आगे चल कर उन्होंने महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया, बाद में उन्होंने 1930 और 1931–32 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया, उन्होंने व्याख्यान दिए और जुलूस का नेतृत्व किया। वे महिलाओं में जागरूकता लाने में जुट गई और स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए महिलाओं में उत्सुक्ता जगाने का कार्य किया। सन् 1940 में गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया और इसमें केवल कुछ चुनिंदा कार्यकर्ताओं को ही भाग लेने की अनुमति दी, उनमें विजयलक्ष्मी भी एक थीं उन्हें गिरफतार का लिया गया लेकिन चार महिने के बाद वह जेल से छूट गई थीं, बाद में 1942 में भारत छोडो आंदोलन भाग लेकर स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत बनाने में पूरी जान लगा दि।[11] उन्होंने महिलाओं के अंदर देशभक्ती की भावना जगाई और बडी संख्या में महिलाएँ आंदोलन का हिस्सा बनी। विजयलक्ष्मी देश को विदेशी शक्ति से मुक्त कराने में महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू का हर कदम पर साथ दिया।[12] वह एक बहादूर महिला की तरह हर आंदोलन में सबसे आगे रहती थीं, अंग्रेजो के खिलाफ आवाज उठाती और महिलाओं को आंदोलन में शामिल होने की सलाह देती, जैसे–जैसे ये सफर आगे बढता गया वे महिलओं की आवाज बनती चली गई, लेकिन इस बीच उन्हें कई बार जेल भी जाना पडा और जेल में उन्हें कई प्रकार की तकलीफें भी सहनी पडी थी। इस दौरान उन्हें तीन बार जेल जाना पडा था, वे पहली बार 1932 से 1933 तक जेल गई, फिर 1940 में दूसरी बार और फिर 1942 से 1943 तक तीसरी बार उन्हें जेल जाना पडा था। वह जेल में भी रह कर आंदोलन के बारे में ही सोंचती और योजना बनाती रहती थीं।[13] जेल की सजा और यातनाओं के बावजूद भी उनके साहस और हौसले में कभी कमी नहीं आई। जेल से बाहर आते ही नई उर्जा और स्फूर्ती के साथ आंदोलन को पहले से ज्यादा मजबूत और सफल बनाने में जुट जाती थीं जो उनके सच्चे देशभक्त होने का परिचायक थीं।[14]

विजयलक्ष्मी पंडित की राजनीतिक उपलब्धियाँ

विजयलक्ष्मी पंडित विश्व राजनीति के इतिहास में अपनी प्रतिभा और राजनीतिक दृढता के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने अपने आधिकारिक राजनीतिक जीवन की शुरूआत 30 के दशक की शरूआत में की थी, वे अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में शामिल हुईं। विजयलक्ष्मी ने राजकुमारी अमृत कौर के साथ मिल कर अखिल भारतीय महिला सम्मेलन को इस विश्वास पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया कि राजनीति और कल्याण परस्पर अनन्य और विरोधाभाशी हैं। विजयलक्ष्मी ने 1941 से 1943 तक अखिल भारतीय

महिला सम्मेलन का नेतृत्व किया, वे स्वतंत्रता पूर्व भारत में कैबिनेट पद के लिए चुनी जाने वाली पहली महिला बनी।[15] अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने 1935 के अधिनियम की निंदा करते हुए एक प्रस्ताव पेश किया और अपने पदों से इस्तीफा दे दिया था, कुछ समय बाद वह 1946 तक भारतीय संविधान सभा की सदस्य रहीं, आपातकाल के दौरान इंदिरा गांधी की नीतियों को आलोचना करने वाली वह एक मात्र महिला थीं, उन्होने इंदिरा को हराने के लिए जनता पार्टी का समर्थन भी किया और कांग्रेस पार्टी को छोङ दिया था। इतना ही नहीं 1977 ई0 में उन्होंने राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार के प्रयास भी किए जिसके लिए उन्होंने प्रचार भी किया था लेकिन उस समय नीलम संजीव रेड्डी को सर्वसम्मती से राष्ट्रपति चुन लिया गया था। कुछ समय बाद विजयलक्ष्मी पंडित का 1 दिसंबर 1990 में देहांत हो गया।[16]

उनकी अपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. 1937 ई0 में विजयलक्ष्मी पंडित ने ब्रिटिश भारत के संयुक्त प्रांत की कैबिनेट मंत्री के रूप में कार्य किया।
2. 1937–1939 ई0 तक वे स्थानीय स्वशासन एवं स्वास्थ्य विभाग में नियुक्त हुई,इन्ही के कारण देश में पंचायती व्यवस्था लागू हुई।
3. 1946–1950 तक वह संविधान सभा की सदस्य रहीं।
4. 1947 ई0 में वे रूस में भारतीय राजदूत बनी जहाँ उन्होंने 1949 ई0 तक कार्यभार सम्भाला।
5. 1953 ई0 मे वे संयुक्त राष्ट्र महासभा की अध्यक्ष बनने वाली वह विश्व की पहली महिला बनी।
6. 1962– 1964 ई0 तक वह महाराष्ट्र की छठी राज्यपाल रहीं।
7. 1946 ई0 में फूलपुर लोकसभा सीट से चुनाव लङकर वह लोकसभा में पहुँची।
8. 1979 ई0 में उन्हें संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में भारत का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया।[17]

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्धियाँ

आजादी के बाद भी उन्होंने संयुक्त राष्ट्र और दुनियाँ के कई देशों में भारत का प्रतिनिधित्व किया और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारतीय महिला शक्ति को एक पहचान दिलाने का काम किया।[18] विजयलक्ष्मी भारत के संविधान सभा की सदस्य के रूप में निर्वाचित हुई और देश की आजादी के बाद से उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कूटनीतिक सेवाओं में प्रवेश किया और 1947 से 1949 तक वे सोवियत संघ में भारतीय राजदूत के तौर पर रहीं।[19] इसके बाद 1951 तक अमेरिका और मैक्सिको, 1955 से 1961 के बीच आयरलैंड में भारतीय राजदूत रहीं, यूनाइटेड किंगडम में भारतीय हाई कमिश्नर रहीं और 1958 से 1961 तक वे स्पेन में भारतीय राजदूत रहीं,[20] लेकिन विजयलक्ष्मी पंडित को सबसे ज्यादा लोकप्रियता संयुक्त राष्ट्र में मिली 1946 से लेकर 1968 के बीच उन्होंने समय–समय पर संयुक्त राष्ट्र में भारतीय प्रतितिधिमंडल की अगुआई की और 1953 में तो उन्हें संयुक्त राष्ट्र महासभा की पहली महिला अध्यक्ष होने का गौरव भी हासिल हुआ इसके बाद 1978 में उन्होंने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में भारत का प्रतिनिधित्व भी किया।[21]

विजयलक्ष्मी पंडित के साम्राज्यवाद सम्बंधी विचार

विजयलक्ष्मी ने संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा की इस दौरान उन्होंने उपनिवेशवाद की समस्याओं और उपनिवेशित देशों पर साम्राज्यवाद के प्रभाव के बारे में बात की। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन, फ्रांस और नीदरलैंड ने इस क्षेत्र में अपने औपनिवेशिक कब्जे पर फिर से नियंत्रण स्थापित किया।[22] विजयलक्ष्मी ने देशों को मानवीय गरीमा समानता और अधिकारों के लिए जवाबदेही ठहराए जाने पर जोर दिया। वह समानता में दृढता से विश्वास रखती थीं और उपनिवेशवाद के साथ आने वाले अंतर्निहित नस्लवाद की निंदा करती थीं।[23]

निष्कर्ष

अंत में यही कहा जा सकता है की विजयलक्ष्मी पंडित इतिहास में दर्ज एक ऐसा नाम है जिन्होंने महिलाओं को आशा की नई रौशनी दिखाई। वह भारत में ही नही बल्कि भारत के बाहर अन्य देशों में महिला संगठनो से जुड़ी थी। वे लाखों पीडित लोगों के जीवन के बेहतर बनाने के लिए अथक प्रयास भी किए, उन्होंने विस्टन चर्चिल के साथ तीखी नोंकझोंक की, जान स्मट्स को मात दी और जेम्स कैग्नी से ज्यादा ध्यान आकर्षित किया। वे भारत ही नही बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला सशक्तिकरण की बेहतरीन उदाहरण हैं।

संदर्भ

1. गुथरी, ऐनी, 'मैडम एम्बेसडर द लाईफ ऑफ विजयलक्ष्मी पंडित', मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड,लन्दन, 1962, पृ0 सं0–5–11
2. रॉय,राम प्रकाश, 'रीडर व्यूःमिसट्रेस पंडित,'टाईस ऑफ इडिया, 5 जून, पृ0 सं0–4
3. हूज, माक्यूज,हू, हू वाज हू इन अमेरिकाःविथ वर्ल्डनोटेबल, वाल्यूम–5, 1967–1973 विथ इंडेक्स टू ऑल हू वाज हू वाल्यूमस,शिकागो,1973, पृ0सं0–535
4. भगवान मनु, 'विजयलक्ष्मी पंडित ऑटो बायोग्राफी,' पेंगुइन रैंडम हाउस, इंडिया 2023, पृ0 सं0–193–198
5. गुथरी, ऐनी, 'मैडम एम्बेसडर द लाईफ ऑफ विजयलक्ष्मी पंडित',मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड, लन्दन,1962, पृ0 सं0–65,79
6. गैलब्रेथ,जॉन केनेथ, विजयलक्ष्मी पंडितःप्रिजन डेज, स्पीकिंग टाईगर पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2018, पृ0 सं0–171
7. लॉट जूली, 'द वूमेन हू स्वेड अमेरिका विजयलक्ष्मी पंडित 1945,(डी.ई.पी)डिर्पोटेड इसुली,प्रुफ,रिविस्टा टेलिमेसिया दी स्टूडी सूल्ला मेमोरिया फेमिनाईल 2018, पृ0 सं0–26–31
8. बाला,रजनी, 'रोल ऑफ विजयलक्ष्मी पंडित इन फ्रीडम स्ट्रगल', जर्नल ऑफ रिसर्च इन हयूमिनिटीज एंड सोशल साइंस, वाल्यूम–12 इशू–3, 2024, पृ0 सं0–362–363
9. सूतार,अनुजा,विशाल, 'ए फ्रीडम फाईटर,डिप्लोमैट एंड पोलिटिशियन–द विजयलक्ष्मी पंडित,' विवेक रिसर्च ई– जनर्ल,वाल्यूम–7 ईशू–2, 2023, पृ0 सं– 43–46
10. नेहरू,कृष्णा, 'विथ नो रिग्रेटःएन ऑटोबायोग्राफी', द जॉन डे कम्पनी, न्यूयार्क, 1945, पृ0 सं0–36
11. बाला,रजनी, 'रोल ऑफ विजयलक्ष्मी पंडित इन फ्रीडम स्ट्रगल', जर्नल ऑफ रिसर्च इन हयूमिनिटीज एंड सोशल साइंस, वाल्यूम–12 इशू–3, 2024, पृ0 सं0–362–363
12. मूर,विलियम, इंडियन वूमेन ट्वीस्ट द टेल ऑफ ब्रिटिश लायन,' डेली ट्रिब्यून, शिकागो, 1945, पृ0 सं0–6
13. भगवान,मनु, 'इंडिया एंड द क्वेस्ट फॉर वन वर्ल्ड'द पीसमेकर्स,' मैकमीलन, न्यूयार्क, पृ0 सं0–31
14- https:navbharattime-indiatime.com…
15. महिला स्वतंत्रता सेनानी विजयाल... https://hindi.webdunia.com/inspiring-p
16. https://feminisminindia.com/2017/03/02/vijay-lakshmi-pandit
17. https://ravivarvichar.in /nazariya/vijaya,..

18. प्रासर,भारती,आर्चीवस रेडियो बायोग्राफी विजयलक्ष्मी पंडित फ्रीडम फाइटर एंड यूनाइटेड नेशन डिप्लोमेट
19. राबट,ट्रम्बल, 'मिस्ट्रेस पंडित अर्ज यू एस इंडियन लिंक',न्यूयार्क टाईम्स,24 अप्रील,1949,पृ0 सं0–6
20. मूर,विलियम, इंडियन वूमेन ट्वीस्ट द टेल ऑफ ब्रिटिश लायन,'डेली ट्रिब्यून,शिकागो,1945,पृ0 सं0–4
21. https://hindi.news18.com/news/knowledge/vijaya-lakshmi-pandit-birth-anniversary-internationally-fame-sister-of -jawaharlal-nehru-viks-
22. मार्क,माजोवेर, नो इंचैन्टेड पैलेसः द इंड ऑफ एम्पायर एंड द आइडियोलॉजी ओरिजिन ऑफ द यूनाईटेड नेशन', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंस्टन पृ0 सं0–10
23. https://m-hindi-webdunia.com/independance-day-special/about-vivayalakshmi-pandit...

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

21 वी सदी के ग्रामीण भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता एवं असंगठित क्षेत्रों में कार्यस्थल पर लैगिंक उत्पीड़न की समस्या : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अतुल कुमार सिंह,
शोध छात्र (विधि)
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
E-Mail : atulsinghbhu19@gmail.com
Mob. No. +91-7054990191

सारांश

*वर्ष 2025 महिला अधिकारों की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्ष माना जा सकता है। 2025 में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस का विषय होगा ''सभी महिलाओं और लड़कियों के लिए : अधिकार। समानता। सशक्तिकरण।'' गौरतलब है कि यह महिला अधिकारों और समाज के विभिन्न स्तरों पर महिलाओं की भूमिका से जुड़ी दो बड़ी घटनाओं की 30 वीं वर्षगाँठ का वर्ष है। इस वर्ष ''भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति'' (CSWI) द्वारा संयुक्त राष्ट्र को ''समानता की ओर'' या ''टुवर्डस इक्वालिटी'' (Towards Equality) नामक रिपोर्ट को प्रस्तुत किये हुए लगभग 30 वर्ष पूरे हो गए हैं। इस रिपोर्ट में भारत में महिलाओं के प्रति संवेदनशील नीति निर्माण पर ध्यान केंद्रित करते हुए लैंगिक समानता पर एक नवीन दृ ष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया गया। साथ ही वर्ष 2025 में ''**बीजिंग प्लेटफार्म फॉर एक्शन**'' की स्थापना की 30 वीं वर्षगाँठ भी है। बीजिंग घोषणापत्र और कार्रवाई मंच, महिलाओं और लड़कियों के अधिकारों के लिए सबसे प्रगतिशील और सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत वैश्विक ढांचा है, जो समाज में महिलाओं की स्थिति और सरकारों के नेतृत्त्व में उनके सशक्तीकरण के प्रयासों के विश्लेषण के लिए एक बेंचमार्क है। पिछले दो दशकों में भारत में महिला अधिकारों की रक्षा हेतु कई बड़े प्रयास किये गए और इनके व्यापक सकारात्मक परिणाम भी देखने को मिले हैं, हालाँकि 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका और इससे जुड़ी चुनौतियों की समीक्षा कर अपेक्षित नीतिगत सुधारों को अपनाना बहुत आवश्यक है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था मुख्यतः असंगठित क्षेत्रों पर आधारित है। अधिकारिक आंकड़ों के अनुसार देश के कुल महिला श्रम बल का लगभग 90 % भाग असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत है, जो समाज के सबसे कमजोर, अशिक्षित एवं हाशिये पर स्थित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न की घटनाएं बहुत सामान्य है या यू कहें कि रोजमर्रा की हकीकत बन चुकी है। इसमें से अधिकतर घटनाएँ कभी रिपोर्ट नहीं हो पाती है।*

प्रस्तावना

भारत के श्रम एवं रोजगार मंत्रालय के वर्ष 2022–23 के रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल महिला कर्मकारों की संख्या 15 करोड़ है। जिसमें से लगभग 3.6 करोड़ कृषक है, 6.2 कृषि कार्यों से सम्बन्धित श्रमिक, 0.80 करोड़ घरेलू सहायक और 4.3 करोड़ अन्य असंगठित उपक्रमों जैसे– ईंट भट्ठा, निर्माण कार्य इत्यादि क्षेत्रों में कार्यरत है।[1] ग्रामीण महिलाएं श्रम शक्ति के रूप में विभिन्न कृषि प्रथाओं से निकटता से जुड़ी हुई हैं। कृ षि विकास वैश्विक स्तर पर गरीबी उन्मूलन के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है और 2050 तक 9.7 बिलियन लोगों को भोजन उपलब्ध कराने की हमारी आवश्यकता को देखते हुए यह अपरिहार्य है,

लेकिन ग्रामीण महिलाओं की स्थिति और सशक्तीकरण में सुधार के बिना, ग्रामीण कृषि गतिविधियाँ अच्छी तरह से आगे नहीं बढ़ सकती हैं।

ग्रामीण महिलाएँ एक परिवर्तनकारी अर्थशास्त्र की प्राप्ति और दुनिया भर में ग्रामीण समुदायों की संरचना और कार्य के विकास में उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकती हैं। हालाँकि, अपर्याप्त सुविधाओं के कारण ग्रामीण महिलाएँ लंबे समय से गरीबी का सामना कर रही हैं। किसी देश का समग्र आर्थिक विकास इस बात पर निर्भर करता है कि हम ग्रामीण महिलाओं को कैसे बढ़ावा देते हैं और उन्हें कैसे सशक्त बनाते हैं। ग्रामीण महिलाओं को कृषि पद्धतियों पर प्रशिक्षण देकर, उन्हें प्राथमिक शिक्षा प्रदान करके और ग्रामीण विपणन और खाद्यान्न भंडारण के लिए सहायता प्रदान करके उन्हें मजबूत बनाना आवश्यक है। हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था एक कृषि प्रधान देश होने के नाते मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्रों पर निर्भर है। ग्रामीण परिवेश में एक बड़ी आबादी असंगठित क्षेत्रों में कार्य कर रही महिलाओं की है। असंगठित क्षेत्रों से तात्पर्य मूल रूप से उन उद्यमों से है, जो व्यक्तियों के निजी स्वामित्व एवं संचालन में है और एक या एक से अधिक कर्मचारियों को नियमित रूप से नियोजित रखते हैं।

अन्तर्राष्ट्रिय श्रम संगठन के अनुसार विश्व की लगभग 60% आबादी अनौपचारिक क्षेत्र से सम्बन्धित है। अधिकारिक आंकड़ो के अनुसार भारत में कुल कार्यबल का लगभग 90% असंगठित कामगार है। कार्य के असंगठित क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं के लिए एक मुख्य समस्या कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न की है। असंगठित क्षेत्रों में तो कार्य कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की घटनाएँ बहुत ही सामान्य है या यूं कहे तो उनकी रोजमर्रा की हकीकत बन चुकी हैं चूंकि ये महिलाएं समाज के सबसे कमजोर अशिक्षित एवं हाशिये पर स्थित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसलिए समस्या यह है कि ऐसी घटनाएँ अधिकांशतः रिपोर्ट ही नहीं हो पाती और महिलाएं भी इस पर बात करने से बचती है।

ग्रामीण भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी

भारत में महिला रोजगार संबंधी आँकड़े देश के आर्थिक विकास, कम प्रजनन दर और स्कूली शिक्षा की दर में वृद्धि जैसे संकेतकों से मेल नहीं खाती। वर्ष 2004 से वर्ष 2018 के बीच स्कूली शिक्षा के मामले में घटते लैंगिक अंतराल के विपरीत कार्य क्षेत्रों में भागीदारी के संदर्भ में लैंगिक अंतराल में भारी वृद्धि देखने को मिली। हाल ही में जारी 'आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण , 2018–19 के अनुसार, कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी में भारी गिरावट देखने को मिली है। वर्ष 2011–19 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यस्थलों पर महिलाओं की भागीदारी 35.8% से घटकर 26.4% ही रह गई। वर्ष 2019 में 'विश्व आर्थिक मंच' (World Economic Forum & WEF) की 'वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट' में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी और इसके लिये उपलब्ध अवसरों के संदर्भ में भारत को 153 देशों की सूची में 149 वें स्थान पर रखा गया था। अक्तूबर 2020 में जारी आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के अनुसार, अक्तूबर–दिसंबर 2019 में महिला बेरोजगारी की दर 9.8% रही जो वर्ष 2019 में जुलाई–सितंबर की तिमाही के आँकड़ों से अधिक है, गौरतलब है कि COVID–19 महामारी के बाद देशभर में बेरोजगारी के आँकड़ों में व्यापक वृद्धि देखी गई। कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी लगभग 60% है परंतु इनमें से अधिकांश भूमिहीन श्रमिक हैं। जिन्हें स्वास्थ्य, सामाजिक या आर्थिक सुरक्षा से संबंधित कोई भी सुविधा नहीं प्राप्त होती है। वर्ष 2019 में मात्र 13% महिला किसानों के पास अपनी जमीन थी और वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, यह अनुपात मात्र 12. 8% था। इसी प्रकार विनिर्माण क्षेत्र (लगभग पूरी तरह असंगठित) में महिला श्रमिकों की भागीदारी लगभग 14% ही है। सेवा क्षेत्र में भी अधिकांश महिलाएँ कम आय वाली नौकरियों तक ही सीमित हैं, 'राष्ट्रीय

प्रतिदर्श सर्वेक्षण' 2005 के अनुसार, 4.75 मिलियन घरेलू कामगारों में से 60% से अधिक महिलाएँ हैं। किसी देश की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बहुत मायने रखती है। अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन की ताजा रिपोर्ट के अनुसार एशियाई देशों की दृष्टि से भारत और पाकिस्तान में सबसे कम महिला श्रमिक हैं। नेपाल, वियतनाम, कंबोडिया जैसे देशों में इनकी संख्या बहुत अधिक है। श्रम में महिलाओं की भागीदारी का एक कारण भारतीयों की आय में वृद्धि को बताया जाता है। पुरूष की आय पर्याप्त होने पर महिला को खेतों और निर्माण केंद्रों पर कठोर श्रम में संलग्न होने की आवश्यकता नहीं रह गई है। इसलिए वे परिवार के रखरखाव पर ध्यान दे रही हैं। इससे अलग एक और कारण सामने आता है, जो यद्यपि निराशावादी है, किंतु वास्तविकता के अधिक नजदीक लगता है। ऐसा माना जा रहा है कि खेतों के छोटा होने, बढ़ते मशीनीकरण और कृषि में मजदूरों की मांग घटने के कारण महिलाओं के पास काम नहीं है। अगर यह सत्य है, तो भविष्य में स्थिति और भी बदतर होती जाएगी।

वस्तुतः महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाने के लिए देश में कुछ जमीनी परिवर्तन करने होंगे। शोधों से पता चलता है कि अगर महिलाओं को काम करने के अवसर मिलें, तो वे इन्हें सहर्ष स्वीकार करती हैं। यह भी पता चलता है कि मनरेगा के माध्यम से 45% ऐसी महिलाओं को वैतनिक श्रम उपलब्ध कराया जा सका है, जो उन्हें पहले कहीं नहीं मिला था। इससे परिवार के फैसलों में उनकी भूमिका अहम हो गई है। समस्या यह है कि मनरेगा में पूरे वर्ष रोजगार के अवसर नहीं मिल पाते। इसके लिए हमें महिलाओं को कृषि–कर्म से गैर कृषि–कर्म में रोजगार के अवसर देने होंगे। दूसरे, हमें कार्यस्थल के वातावरण को महिलाओं के इतना अनुकूल बनाना होगा कि ग्रामीण, शहरी और शिक्षित महिलाएं वैतनिक रोजगार को अपना सकें। मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय की एक समाजशास्त्री ने अपने शोध में पाया कि जिन गांव में सड़क के निर्माण कार्य हुए हैं, वहाँ पर पुरूषों की तुलना में महिला श्रमिकों की संख्या अधिक रही। साथ ही अच्छी सड़क बनने से परिवहन की सुविधा बढ़ी। इसके चलते एक गाँव के श्रमिक (अधिकतर महिलाएं) काम की तलाश में अन्य गाँव और कस्बों में जाने में सक्षम हो सकीं। भारतीय समाज में महिलाओं के काम करने को लेकर दृष्टिकोण अभी भी बहुत संकुचित है। घरेलू कामों और बच्चों की देखभाल की पूरी जिम्मेदारी महिलाओं को ही सौंपी जाती है। भारतीय संस्थानों में बहुत कम ऐसे हैं, जो काम और परिवार के बीच संतुलन पर ध्यान देते हों। कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि कनाडा की तुलना में भारत में कोई व्यक्ति प्रति सप्ताह दस घंटे ज्यादा काम करता है। कार्यावधि की ऐसी कठिन शर्तों में अगर महिलाओं को कामकाजी बनाना है, तो पुरूषों को घरेलू कामों और बच्चों की देखभाल को साझा करना होगा। औपचारिक (Formal Sector) क्षेत्र के उच्च श्रेणी रोजगार में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए कंपनियों के वातावरण को पारिवारिक जीवन के अनुकूल लचीला बनाना होगा। इसके साथ ही कार्यस्थलों को भी परिवार के आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील बनाने की जरुरत है, जिससे महिलाएं दोनों ओर बराबर समय और क्षमता दे सकें।

असंगठित क्षेत्रों में कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न

ऑक्सफैम इंडिया द्वारा 2012 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न की सबसे अधिक शिकार होने वाली महिलाओं में से 29% मजदूर हैं, 23% घरेलू कामगार हैं और 16% लघु उद्योगों में काम करती हैं। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के लिए नौकरी की गुणवत्ता, नौकरी की सुरक्षा, अच्छी कामकाजी परिस्थितियाँ और काम के अनुपात में पारिश्रमिक, कर्मचारी अधिकारों के प्रति निष्ठा, सामाजिक सुरक्षा जैसे तत्वों का अभाव हैं।[2] असंगठित क्षेत्र जैसे छोटे कारखानों में महिलाओं ने पीढ़ियों से दब्बू होना और अश्लील टिप्पणियों, शारीरिक दंड और क्रूर दुर्व्यवहार और यौन हमलों को सहन

करना सीखा है, क्योंकि उनकी आजीविका कमाने की आवश्यकता, कार्य स्थल पर लैंगिक उत्पीड़न के समस्या से कही ज्यादा गंभीर समस्या है । इस कारण कार्य स्थल पर इन क्षेत्रों में कार्यस्थल पर यौन और शारीरिक उत्पीड़न इतना नियमित और सहनीय है कि कभी भी कोई औपचारिक शिकायत ही नहीं की जाती है। यौन उत्पीड़न को सहन करना मुख्य रूप से पीड़ित की वित्तीय असुरक्षा का भी एक कारण है। यहां तक कि अगर बार–बार यौन उत्पीड़न होता है, तो उनके पास इसे ''व्यावसायिक खतरे'' के रूप में लेने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है। कई बार असंगठित क्षेत्र में नियोक्ता और कर्मचारी के बीच सीधा संबंध नहीं होता है। अनुबंध किसी तीसरे पक्ष या एजेंट के साथ किया जाता है और इसलिए शोषण नियोक्ता–कर्मचारी संबंध से परे होता है। दिहाड़ी मजदूरों और निर्माण श्रमिकों के लिए तो सड़कें ही उनका कार्यस्थल हैं। भद्दी टिप्पणियों और अभद्र संकेतों से लेकर यौन उत्पीड़न के गंभीर रूपों तक, इन महिलाओं को उन परिसरों में सुरक्षा की कमी के कारण सब कुछ झेलना पड़ता है, जहाँ वे काम करती हैं क्योंकि सड़कें किसी भी नियोक्ता के अधिकार क्षेत्र में नहीं आती हैं या अक्सर इन श्रमिकों का कोई नियोक्ता ही नहीं होता जैसे – फेरीवाले और विक्रेता।

उपचार तंत्र

कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013, कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न के निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोषण हेतु एक विशिष्ट अधिनियम है, जो 9 दिसम्बर, 2013 को प्रवृत्त हुआ। यह अधिनियम परिवादों के निवारण एवं प्रतितोषण हेतु मुख्यतः दो प्रकार के परिवाद समिति के गठन का प्रावधान करता है। **आन्तरिक परिवाद समिति**[3] संगठित क्षेत्रों के लिए जहाँ 10 या उससे अधिक कर्मचारी नियोजित हो और **स्थानीय परिवाद समिति**[4] असंगठित क्षेत्रों के लिए जहाँ 10 से कम कर्मचारी नियोजित हों।

स्थानीय शिकायत समिति

इस समिति के दायरे में काम की वह जगहें आती हैं, जहां दस से कम कर्मचारी हों और जहां आन्तरिक शिकायत समिति का गठन न हुआ हो। इसके अलावा जहां शिकायत खुद मालिक के खिलाफ हो, वैसे मामले भी इन समिति के पास जायेंगे। घरेलू श्रमिक के मामले में भी शिकायत इसी समिति के पास जायेगी। जिलाधिकारी स्थानीय शिकायत समिति का गठन करता है। स्थानीय शिकायत समिति में पाँच मुख्य सदस्य होने चाहिए।

1. इस समिति की अध्यक्ष सामाजिक कार्यों में सक्रिय कोई मशहुर महिला होगी।
2. एक महिला जिसका चुनाव ब्लाक, तालुका, तहसील, वार्ड या नगर पालिका स्तर से हुआ हो।
3. दो सदस्य गैर सरकारी संगठन से हों, जिन्हे महिलाओं के मुद्दों या यौन उत्पीड़न के रोकथाम का अनुभव हो तथा उनके पास इस क्षेत्र में पाँच वर्षों का अनुभव होना चाहिए।
4. जिले में समाज कल्याण एवं महिला बाल विकास विभाग का अधिकारी भी इस समिति का सदस्य होगा। इसके अलावा गैर सरकारी संगठन के दो सदस्यों में से एक सदस्य अनुसूचित जाति, जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग से जुड़ी महिला होनी चाहिए। सदस्यों के चुनाव में यह ध्यान रहे कि वे कानून के बारे में जानकारी रखते हों।

इस समिति में भी 50 प्रतिशत सदस्य महिला होनी चाहिए यानि पाँच में तीन सदस्य महिला होनी चाहिए। इस समिति के गठन के अलावा जिलाधिकारी को ग्रामीण क्षेत्रों से हर ब्लाक, तहसील, तालुका और शहरी क्षेत्र में वार्ड या म्युनिसिपैलिटि से एक नोडल अधिकारी को नियुक्त करना होगा, जिनकी यह जिम्मेदारी

होगी कि वह अपने क्षेत्रों से शिकायतों को इकट्ठा करके उन्हे स्थानीय शिकायत समिति के पास सात दिन के अन्दर भेजें।

स्थानीय शिकायत समितियों के गठन में शिथिलता

''Martha Farrel Foundation'' द्वारा वर्ष 2018 में कराये गए अध्ययन में सूचना के अधिकार के तहत माँगी गयी जानकारी में पाया गया कि देश के 665 जनपदों में बहुतों में अभी तक स्थानीय शिकायत समिति का गठन नहीं किया है। मात्र 29 प्रतिशत जनपदों ने स्थानीय शिकायत समिति का कठन होना बताया, जबकि 15 प्रतिशत ने बताया कि अभी तक उनके यहाँ स्थानीय शिकायत समिति का गठन नहीं हो पाया है। 56 प्रतिशत जनपदों का कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।[5] हाल ही में *अरिलियानो फनाडिर्स बनाम गोवा राज्य* [6] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कार्यस्थल पर **लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष) अधि0, 2013** के लागू होने के 1 दशक बीत जाने पर भी अधिनियम के क्रियान्वयन में शिथिलता और अनिश्चितता को लेकर नाराजगी व्यक्त की है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र, राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों को यह सुनिश्चित करने के लिए कहा है कि सभी सरकारी कार्यालयों में **आन्तरिक शिकायत समिति** का गठन अधिनियम के दिशानिर्देशों के अनुसार किया जाए।

निष्कर्ष

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न सर्वव्यापी है, लेकिन असंगठित क्षेत्र की महिलाएँ बेहतर आर्थिक और सामाजिक स्थिति वाली और संगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं की तुलना में अधिक असुरक्षित हैं। इसके अलावा, असंगठित क्षेत्र की महिलाएँ यौन उत्पीड़न के बारे में किसी भी कानून के बारे में जागरूकता की कमी के कारण भी यौन उत्पीड़न के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। आधी आबादी कही जाने वाली हमारे देश की महिलाऐं देश के विकास में अपेक्षित योगदान दे सकती है और निःसंदेह वर्तमान में दे भी रही है। यदि हम कार्यस्थलों पर एक स्वस्थ और अनुकूल वातावरण अपनी देश की महिलाओं को दे पाते हैं, तो हम अपने देश के इस मानव संसाधन का और बेहतर उपयोग देश और समाज के विकास के लिए कर पायेंगे। स्वामी विवेकानन्द जी का कथन है **''सभी देशों ने महिलाओं को उचित समय देकर महानता हासिल की है। वह देश और राष्ट्र जो महिलाओं का सम्मान नहीं करता है कभी महान नही बन सका।''**

सन्दर्भ सूची–

1. वार्षिक रिपोर्ट 2022–23, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय (भारत सरकार), पृ0सं0 109
2. https://www.ungender.in/different-manifestations-of-sexual-harassment-faced-by-women-in-unorganized-sector/
3. धारा 4, महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और परितोष) अधिनियम, 2013
4. धारा 6, महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और परितोष) अधिनियम,
5. स्वराज चौधरी, ''रिएड्रेसिंग द रोल ऑफ लोकल कम्प्लेन कमेटी, वाल्यूम–1 इश्यू–3, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ पॉलिसी साईंस एण्ड लॉ, (2011), पृष्ठ–1663
6. सिविल अपील संख्या 20014 का 2482
7. https://pib.gov.in/newssite/printrelease.aspx?relid=114520

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

जनजाति की आर्थिक एवं व्यावसायिक पृष्ठभूमि

धीरेन्द्र प्रताप
शोधछात्र– किसान पी.जी. कॉलेज, बहराइच
(सम्बद्ध : डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या)
डॉ. सूर्यभान रावत
प्रोफेसर : समाजशास्त्र
किसान पी.जी. कॉलेज, बहराइच (उ.प्र.)

सारांश

किसी भी समुदाय के भौतिक विकास के लिए आर्थिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं का विशेष महत्व होता है। इसके बिना कोई भी समाज अपना विकास नहीं कर सकता है। यही बात थारू जनजाति पर भी लागू होती है। ये जनजाति प्रायः पूर्व में जंगलों के समीप निवास करती थी। इनका निवास स्थान ऐसा था कि दूसरे समुदाय या वर्ग के लोगों से दूर रहे। थारू जनजाति प्रायः जंगल से लकड़ी काटकर अपनी अर्थव्यवस्था चलाते थे, लेकिन विकास होने के साथ ही अब जंगल से बाहर निकलकर अपना आवास बना लिये हैं तथा कृषि कार्य में लग गये है। अतः इनकी अर्थव्यवस्था जंगल और कृषि दोनों पर आधारित है। कृषि पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था है, जिसे देश की रीढ़ माना जाता है।[1] धन के उत्पादन वितरण और उपभोग के लिए ग्रामीण समाज में अनेक आर्थिक एवं व्यावसायिक संगठन हैं। किसी समाज की अर्थव्यवस्था को इन्हीं संस्थाओं पर आधारित माना जाता है। मानव के सामाजिक जीवन को अन्य पहलुओं के साथ आर्थिक पहलू भी प्रभावित करता है। साम्यवादी विचारक कार्लमार्क्स ने सभी घटनाओं के पीछे आर्थिक तथा व्यावसायिक कारण को ही जिम्मेदार माना है।

मुख्य शब्द– आर्थिक एवं व्यावसायिक पृष्ठभूमि, थारू जनजाति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, जनजाति का मुख्य व्यवसाय, अर्थव्यवस्था, रोजगार, व्यावसायिक गतिशीलता।

अन्य समाजों की तरह आर्थिक एवं व्यावसायिक संस्थाएँ थारू जनजाति की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को निर्धारित एवं प्रभावित करती हैं। आर्थिक संस्थाएँ ही उन विचारों एवं प्रभावों को विकसित कर रही हैं, जिसके द्वारा सम्पूर्ण पर्यावरण को नियन्त्रित किया जाता है। इस सम्बन्ध में डेविस का कहना है कि आर्थिक एवं व्यावसायिक संस्था से तात्पर्य उन प्रमुख विचारों, मान्यताओं एवं परिस्थितियों से है, जो प्रत्येक समाज में सीमित वस्तुओं की स्थिति का निर्धारण करती हैं।[2] थारू जनजाति क्षेत्र में भी आर्थिक एवं व्यावसायिक पक्ष को महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली माना गया है।

थारू जनजाति का परम्परागत आर्थिक एवं व्यावसायिक जीवन में जंगलों में लकड़ी काटकर बिक्री करना, मछली पकड़ना, मुर्गी पालना, जंगलों से शहद (मधु) निकालना है। जंगलों में शिकार करके मांस का सेवन करना और उसकी बिक्री करना भी इनका व्यवसाय था, लेकिन अब धीरे–धीरे इस जनजाति में भी सामाजिक भावनाएँ बढ़ रही हैं। अन्य व्यवसायों की तरफ से इनकी भावना अब कृषि क्षेत्र की तरफ आकर्षित हो रही है। सरकार द्वारा ग्रामीण विकास की अनेक योजनाएँ कार्यान्वित किये जाने से थारू जनजाति की आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन हुआ। थारू जनजाति प्रायः ग्रामीण क्षेत्र में निवास कर रहे हैं और इस क्षेत्र में खेती ही प्रमुख व्यवसाय है, जहाँ अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल जाता है।[3] नागरिकों को अपना पेट भरने के लिए भोजन की व्यवस्था खेती से ही हो रही है। इस जनजाति में

अधिकांश लोग गरीब एवं निर्धन हैं, जिनके लिए अन्न काफी महत्वपूर्ण है। इसकी पूर्ति कृषि क्षेत्र से होने के कारण ये जनजाति कृषि कार्य में लगने लगी है, जिसे ग्रामीण विकास के साथ जोड़कर देखा जा रहा है।

शोधार्थी का अध्ययन बहराइच जनपद की थारू जनजाति की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर आधारित है। जिसमें आर्थिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। किसी भी व्यक्ति या समाज की आर्थिक मजबूती के लिए व्यावसायिक सफलता महत्वपूर्ण होती है। ये कभी जंगल के समीप झुग्गी–झोपड़ी में निवास करके जंगल से लकड़ी काटकर मुख्य धन्धा मानते थे, लेकिन सरकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त करके तथा शिक्षा प्राप्त करने से लकड़ी से अच्छा व्यवसाय कृषि को समझने लगे। जिससे ये ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हुए खेती से जुड़ गये। जनजाति के लोग पहले जंगली पेड़ों या बस्तियों से शहद निकालने का काम करते थे। तालाबों एवं नदियों में इनके द्वारा मछनी पकड़ने का कार्य किया जाता था और आज भी यह कार्य जारी है, भले ही मछली पकड़ने तथा बिक्री करने वालों की संख्या कम हो गयी हो। मुर्गी पालने, जंगलों में शिकार करने और कृषि पर आधारित लघु एवं कुटीर उद्योगों में कार्य करना थारू जनजाति का व्यवसाय रहा है। इससे आर्थिक क्षेत्र की पूर्ति करके अपनी जीविका चलाने में ये सफल रहे हैं। आज भी थारू जनजाति की अर्थव्यवस्था वन एवं कृषि क्षेत्र पर आधारित है।[4] ये जनजाति पशुपालन का भी कार्य कर रही है, जिसे कृषि से ही सम्बन्धित माना जाता है।

थारू जनजातियों में आपसी घनिष्ठता, सम्बन्ध में निरन्तरता एवं स्थिरता होती है। जब तक व्यक्ति अधिक समय तक अपने परिवार, समुदाय, पास–पड़ोस और समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ रहता है, तो उनमें निकटता बनी रहती है। मनुष्यों के बीच अन्तःक्रिया, सामाजिक समन्वय और सजातीय पृथकता के नये–नये प्रतिमान विकसित होते हैं। थारू जनजाति का निवास स्थल एक समुदाय के रूप में होता है, इसलिए उनमें आपसी समन्वय बना रहता हैं अतः आस–पास के लोगों के साथ समन्वय एवं सहभागिता बनी रहती है।.[5]

आर्थिक एवं व्यावसायिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण तथ्य आयु है। आयु ही व्यक्ति की शारीरिक क्षमताओं, व्यक्तित्व, व्यावसायिक प्रस्थिति का निर्धारण करता हैं व्यक्ति का शारीरिक विकास विभिन्न सोपानों में होता है। किशोर होने के बाद ही प्रायः व्यक्ति का मस्तिष्क व्यवसाय की तरफ जाता है। आधुनिक थारू जनजाति समाज में व्यक्ति की आयु के सम्बन्ध में कुछ भिन्नता दिखलायी दे रही है। परिवार में प्रौढ़ सदस्य ही जीविकोपार्जन की जिम्मेदारी निभाता है। उसे अब अन्य सदस्यों की तुलना में अधिक शक्तियाँ मिलती जा रही हैं। अतः व्यक्तित्व विकास के बाद ही व्यक्ति आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों में शामिल होता है। प्रायः आर्थिक एवं व्यावसायिक की तरफ व्यक्ति का ध्यान युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही जाता है।

आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता का एक प्रभावशाली माध्यम शिक्षा है। थारू जनजाति के विकास की बाधा के रूप में निरक्षरता को माना जाता है। इसका सीधा सम्बन्ध व्यवसाय से होता है। परिवार में जो सदस्य शिक्षित होता है प्रायः उसी के ऊपर आर्थिक जिम्मेदारी होती है। इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए वह कोई व्यवसाय करता है या फिर किसी नौकरी की तलाश में रहता है। थारू जनजाति में प्रायः किसी व्यवसाय की तलाश की जाती है।

ग्रामीण भारत में परिवर्तन और किसानों के बदलते जीवन पर प्रकाशित हो रही विभिन्न रिपोर्टों में यह तथ्य रेखांकित हो रहा है कि भारत के ग्रामीण परिवेश में सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है। किसानों की आमदनी बढ़ने से उनका जीवन स्तर सुधर रहा हैं हाल ही में प्रकाशित मैकिन्से ग्लोबल फार्मर्स इनसाइट सर्वे 2024 में कहा गया है कि भारतीय किसान तेजी से डिजिटल भुगतान को अपना रहे हैं। वर्ष 2024 में

40 फीसदी किसानों ने भुगतान डिजिटल माध्यम से किया। वर्ष 2022 में केवल 11 फीसदी किसान ही डिजिटल भुगतान का इस्तेमाल कर रहे थे। किसानों के बीच डिजिटल भुगतान का चलन बढ़ने का कारण सस्ता डाटा और यूपीआई सेवा को माना गया है।

रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2022 में देश में फसल बीमा का इस्तेमाल करने वाले महज आठ फीसदी किसान थे, जो वर्ष 2024 में 37 फीसदी हो गये। यह भी पाया गया कि 11 फीसदी किसान वर्ष 2024 में जैविक उत्पादों का इस्तेमाल कर रहे हैं, जबकि वर्ष 2022 में यह आंकड़ा दो प्रतिशत ही था। इस रिपोर्ट का यह निष्कर्ष भी महत्वपूर्ण है कि भारत के किसान औपचारिक ऋण की ओर बढ़ रहे हैं। वर्ष 2024 में 36 फीसदी किसानों ने बैंक से कर्ज लिया, जो वर्ष 2022 में केवल नौ फीसदी था। वहीं, 26 फीसदी किसानों ने सब्सिडी वाले सरकारी ऋण का उपयोग किया, जबकि वर्ष 2022 में यह आंकड़ा सिर्फ एक फीसदी था। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि भारत के 53 फीसदी किसान फसल चक्रीकरण जैसे टिकाऊ खेती के तरीकों को अपनाने के लिए सरकारी सब्सिडी पर निर्भर हैं। सरकार कई तरह से सहायता प्रदान कर रही है, जैसे–लागत में छूट, कार्बन क्रेडिट से आय बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन आदि।

हाल ही में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (एसबीआई) रिसर्च की रिपोर्टों के अनुसार, शहरों के बजाय ग्रामीण इलाकों में गरीबी तेजी से कम हुई है। वर्ष 2011–12 में ग्रामीण गरीबी 25.7 प्रतिशत और शहरी गरीबी 13.7 प्रतिशत थी। वर्ष 2023–24 में ग्रामीण गरीबी घटकर 4.86 प्रतिशत और शहरी गरीबी घटकर 4. 09 प्रतिशत पर आ गयी। वर्ष 2009–10 से 2023–24 के बीच शहरी इलाकों में एमपीसीई 1,984 रुपये से बढ़कर 6,996 रुपये और ग्रामीण इलाकों में यह खर्च 1,054 से बढ़कर 4,122 रुपये हो गया। निस्संदेह ग्रामीण एवं कृषि विकास के विभिन्न अभियानों के कारण देश में ग्रामीण गरीबी में तेजी से कमी आ रही है। यह पिछले वर्ष 2024 में घटकर पांच प्रतिशत से भी कम रह गयी। साथ ही ग्रामीणों की आमदनी और क्रयशक्ति बढ़ी है।[6]

डिजिटल तकनीक की मदद से बेहतरीन डाक्टर और अस्पताल भी गांवों से कनेक्ट हो रहे हैं। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के जरिये देश के किसानों को तीन लाख करोड़ रुपये की आर्थिक मदद दी जा रही है। बीते दस वर्षो में कृषि ऋण साढ़े तीन गुना बढ़ गये हैं। अब पशुपालकों और मछली पालकों को भी किसान क्रेडिट कार्ड दिये जा रहे हैं। बीते दस वर्षों में फसलों पर दी जाने वाली सब्सिडी और फसल बीमा की राशि को बढ़ाया है। स्वामित्व योजना जैसे अभियान चलाये हैं, जिनके जरिये गांव के लोगों को सम्पत्ति के दस्तावेज दिये जा रहे हैं। गांव में युवाओं की मुद्रा योजना, स्टार्टअप इण्डिया, स्टैंडअप इण्डिया जैसी योजनाओं के जरिये मदद की जा रही है। यह भी महत्वपूर्ण है कि डिजिटल इण्डिया, शौचालय, स्वच्छ पेयजल और स्वच्छ ईंधन के लिए उज्ज्वला योजना, सभी घरों में बिजली के लिए सौभाग्य योजना जैसे अभियानों से भी ग्रामीण भारत में गरीबी में कमी आ रही है।[7]

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के तहत 80 करोड़ से अधिक गरीब व कमजोर वर्ग के लोगों को मुफ्त खाद्यान्न कार्यक्रम ने भी ग्रामीण भारत में गरीबी को कम करने में अहम भूमिका निभाई है। निश्चित रूप से ग्रामीण भारत में सकारात्मक परिवर्तन, कृषि और ग्रामीण विकास तथा किसानों की आमदनी को बढ़ाने के मद्देनजर केन्द्रीय बजट 2025–26 एक और आाश की किरण लेकर आया है। ग्रामीण विकास मंत्रालय के लिए इस बार केन्द्रीय बजट 2025–26 में 1,88,754 करोड़ का प्रावधान किया गया है। नये बजट में कृषि एवं किसान कल्याण का बजट आवंटन 1.71 लाख करोड़ रुपये किया गया है, जो पिछले वर्ष के बजट की तुलना में 11 फीसदी अधिक है। तमाम सुविधाओं के बावजूद अभी ग्रामीण भारत और किसानों की प्रगति के लिए काफी कुछ करना है। करीब 42 फीसदी किसानों का कहना है कि उन्हें ऑनलाइन

विक्रेताओं से पर्याप्त ग्राहक सेवा और लचीला भुगतान का विकल्प नहीं मिलता है। ऐसी कठिनाइयों को दूर करना होगा।

सन्दर्भ सूची–

1. जी.के. अग्रवाल, डॉ. एस.एस. पाण्डेय, ग्रामीण समाजशास्त्र, पृ. 301–03
2. दोषी एवं जैन, भारतीय समाज संरचना एवं परिवर्तन, पृ. 106
3. अमर उजाला, 11 फरवरी, 2025, क्या गाँव वाकई बदल रहे हैं, जयन्तीलाल भण्डारी
4. डॉ. गिरिजाप्रसाद दूबे आदि, जनजातीय समाज का समाजशास्त्र, पृ. 55
5. श्यामाचरण दूबे, मानव और संस्कृति, पृ. 101
6. अमर उजाला, 11 फरवरी, 2025, पूर्वोक्त
7. पूर्वोक्त

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

दिव्यांग महिलाओं की वर्तमान सामाजिक दशा एवं दिशा

एकता कुशवाहा
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी

शोध सार

साधारण शब्दों में कहें तो दिव्यांगता मस्तिष्क या शरीर की एक ऐसी दशा या स्थिति है जो व्यक्ति के कार्य करने को प्रभावित करती है तथा रोजमर्रा की गतिविधि में भाग लेने की उनकी योग्यता में हस्तक्षेप करती है। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, दिव्यांगता किसी व्यक्ति की सिर्फ चिकित्सकीय समस्या ही नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक समस्या भी है। उदाहरण के लिए, यदि किसी महिला की देखने की क्षमता समाप्त हो गई है तो यह उसका अन्धापन है किन्तु उसके आसपास का परिवेश उसके कामकाज को कठिन और खतरनाक बना देता है। इस प्रकार वह महिला 'दिव्यांग' बन जाती है और उसके जीवन की गुणवत्ता दुष्प्रभावित होती है। इस प्रकार दिव्यांगता के मुद्दे के दो आयाम हैं–चिकित्सकीय और सामाजिक। दिव्यांग व्यक्तियों का समूह समाज में महिलाओं के समूह के बाद सबसे बड़े अल्पसंख्यक समूह का प्रतिनिधित्व करता है। दिव्यांगता व्यक्ति के जीवन में कभी भी आ सकती है, ज्यों–ज्यों स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार होता जाएगा और व्यक्ति का जीवन दीर्घकालीन होता जाएगा तो उम्र बढ़ते जाने से जुड़ी दिव्यांगता की आशंकाएँ भी बढ़ती जाती हैं। इसके अतिरिक्त, दुर्घटनाएँ और चोट लगना अपंगता और दिव्यांगता के प्रमुख कारण हैं। यह सही कहा गया है कि हम सभी लोग 'अस्थायी रूप से गैर–दिव्यांग' हैं। इस प्रकार दिव्यांगता केवल दिव्यांग घोषित व्यक्तियों का ही विशिष्ट अनुभव नहीं है, बल्कि हम सभी अपने जीवन में कुछ समय के लिए इस प्रकार का अनुभव पाते हैं।

परिचय

दिव्यांग व्यक्ति भी दिव्यांगता के प्रकार एवं दिव्यांगता की मात्रा की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त जेंडर, वर्ग, जाति, नस्ल, नृजातीयता, यौनिकता, निवास तथा अन्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारक यह तय करते हैं कि दिव्यांगता को किस प्रकार अनुभव किया जाता है और किस प्रकार उसे समझा जाता है। उदाहरण के लिए, किसी ग्रामीण एवं कृषि समुदाय में किसी व्यक्ति का हाथ–पैर कट जाना एक गम्भीर दिव्यांगता समझी जाएगी क्योंकि इससे खेत में काम करके जीविका चलाना प्रभावित होता है द्यबौद्धिक दिव्यागंता वाला व्यक्ति यदि खेत में काम कर सकता है तो उसे दिव्यांग बिल्कुल नहीं माना जाएगा हालाँकि, उसे मूर्ख कहकर उसका उपहास उड़ाया जाएगा किन्तु शहरी जीवन में बौद्धिक दिव्यागं ता या मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति को भारत में अधिक समस्या हो सकती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि शहरी जीवन में अकादमिक निष्पादन तथा नौकरी पाने को अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

मुख्य बिन्दु– भेदभाव , नकारात्मक मनोभाव, अनुभूतियां , पुर्नवास, वैधानिक तन्त्र, सुगम्यता

समाज में दिव्यांग व्यक्तियों की जनसंख्या–

भारत की जनगणना (2011) के अनुसार, भारत में 2.68 करोड़ लोग किसी न किसी रूप में दिव्यांगता के शिकार हैं। यह भारत की समस्त जनसंख्या का 2.11 प्रतिशत है। इन कुल दिव्यांगजनों में से 1.5 करोड़ लोग पुरुष हैं और 1.18 करोड़ लोग महिलाएँ हैं। इस प्रकार कुल दिव्यांगजनों में महिलाओं का 44 प्रतिशत से थोड़ा ही अधिक है। इन आँकड़ों को रूढ़िवादी माना जाता है क्योंकि जनगणना में कुछ

सीमित प्रकार की दिव्यागंताओं का ही उल्लेख किया जाता है। यदि दिव्यांगता की व्यापक परिभाषा का प्रयोग करें, जिसके अन्तर्गत मधुमेह और हृदय सम्बन्धी बीमारियों की दशाएँ भी शामिल की जाती हैं तो विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) का आकलन है कि जनसंख्या के 6 से 10 प्रतिशत हिस्से को पहचान योग्य शारीरिक या मानसिक दिव्यांगता का सामना करना पड़ रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में 7 करोड़ से अधिक लोग दिव्यांग हैं। इस बात को रेखांकित किया जाना चाहिए कि किसी देश में दिव्यागंजनों की कुल संख्या का आकलन कुछ कारकों पर निर्भर है और इसलिए यह आकलन परिवर्तित होता रह सकता है। ये आधार हैं–दिव्यांगता की वह परिभाषा, जिसका प्रयोग किया गया है, शरीर में क्षति की मात्रा, सर्वेक्षण प्रविधि, जिसमें शामिल हैं। दिव्यागंता की स्थितियों की पहचान और मापन के लिए प्रयोग किए जाने वाले वैज्ञानिक उपकरण। युद्धों और संघर्षों, एचआईवीध्एड्स, औद्योगिक चोटें, और सड़क पर होने वाली दुर्घटनाएँ दिव्यांगजनों की संख्या को बढ़ा रही हैं। जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, जीवन प्रत्याशा में हुई बढ़ोत्तरी ने अधिक उम्र के कारण होने वाली बीमारियोंधदिव्यागंताओं तथा दीर्घकालिक बीमारियों के कारण होने वाली दिव्यांगताओं में समस्त दुनिया में वृद्धि की है।

समाज के हासियें पर दिव्यांग महिलाएँ–

दिव्यांग व्यक्ति जनसंख्या के सर्वाधिक तिरस्कृत एवं अशक्त वर्ग में हैं। हाशिये पर होने के कारण, उन्हें अपने मौलिक, नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार तक नहीं मिल पाते जिनकी लोकतन्त्र में गारंटी दी जाती है। दिव्यांग महिलाओं की दुर्दशा तो और भी अधिक बुरी होती है क्योंकि उन्हें जेंडर और दिव्यांगता के दोहरे दमन का सामना करना पड़ता है। दरअसल, दिव्यांग महिलाओं की श्रेणी न सिर्फ सामाजिक रूप से अदृश्यमान है बल्कि उनकी दुर्दशा दिव्यांग पुरुषों आरै गैर–दिव्यांग महिलाओं दोनों की तुलना में बहुत ही अधिक होती है। एक दिव्यांग लड़की को परिवार के लिए अभिशाप समझा जाता है और अक्सर उसके साथ दुर्व्यवहार और उत्पीड़न किया जाता है।

समाज में दिव्यांग पुरुषों की अपेक्षा दिव्यांग महिलाओं की अधिक दुर्दशा–

दिव्यांग महिलाओं की दुर्दशा दिव्यांग पुरुषों की तुलना में बहुत ही अधिक होती है क्योंकि उन्हे पुरुष प्रधान समाज में एक महिला के रुप में तथा स्वस्थ शरीर को ही 'आदर्श' समझने वाली दुनिया में दिव्यांग बनकर रहना पड़ता है। दिव्यांगता को लेकर दिव्यांग व्यक्ति का अपना अनुभव कैसा होता है और किस तरह उसे अन्य लागे महससू करते हैं, यह बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि दिव्यागंव्यक्ति पुरुष है या महिला। उदाहरण के लिए, मिशेल फाइन तथा एडेरीने एश ने इस तरफ ध्यान दिलाया है कि दिव्यांग महिलाओं को "स्तम्भविहीन लिंगभेद "(म•पेउ ूपजीवनज च्मकमेजंस, 1988 पृष्ठ 1)" का अनुभव करना पड़ता है यानी उन्हें दोहरा नुकसान उठाना पड़ता है। न केवल वे दिव्यांगता के कारण भेदभाव का शिकार होती हैं अपितु वे लैंगिक भेदभाव का भी सामना करती हैं। इसके अतिरिक्त, गैर–दिव्यांग महिलाएँ माँ या पत्नी के रूप में जो दावा कर सकती हैं उस दावे तक दिव्यांग महिलाओं की पहुँच भी नहीं बन पाती। दिव्यांग पुरुष भी अपने पुरुषत्व के लिए उसी प्रकार की प्रताड़ना झेलते हैं आरै उन्हे इस कारण शर्मिंदा होना पड़ सकता है कि वे 'पर्याप्त रूप से पुरुष' नहीं हैं या परिवार के ऊपर निर्भर हैं और एक बोझ बन गए हैं। यह उनके आत्मसम्मान को बहुत ठेस पहुँचा सकता है क्योंकि पारम्परिक रुप से पुरुषों से यह अपेक्षा की जाती रही है कि वे घर में सभी सुविधाएँ जुटाएगें तथा परिवार के मुख्य नीति–निर्णयकर्ता होगें। जैसा कि पहले बताया गया हैं 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में दिव्यांग महिलाओं की संख्या 1.1 करोड़ है, जो जनसंख्या का लगभग 4 प्रतिशत है। कुछ शोध बताते हैं कि भारत में दिव्यांग महिलाओं की संख्या 3.5 करोड़ से अधिक है (बैक्यर एवं शर्मा, 1997)। कुछ अन्य शोध इस सख्ंया को 2 करोड़ बताते हैं। दिव्यागों

में से 98 प्रतिशत निरक्षर हैं और 1 प्रतिशत से भी कम दिव्यांग स्वास्थ्य और पुनर्वास सेवाओं को हासिल कर सकते हैं (एक्शन एड, 2003, पृष्ठ 15) किन्तु जब हम दिव्यांगों के जीवन का अंग बन चुकी उपेक्षा, अलगाव बोध, लांछन तथा वंचित होने को लेकर सोचते हैं, तो यह अहसास होता है कि ये गणनाएँ तो विशाल हिमखण्ड के एक सिरे जितनी ही हैं। भारत में अधिकांश दिव्यांग महिलाएं तिहरे भेदभाव का शिकार होती हैं। महिला होने के कारण, दिव्यांग होने के कारण तथा गरीब होने के कारण।

दिव्यांग महिलाओं के विवाह और पारिवारिक जीवन–

एक दिव्यांग महिला के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह गृह–निर्मात्री, पत्नी और माँ की मानकीय स्त्रैण भूमिकाओं को निभाने में समर्थ नहीं होती है। तब सामान्य महिला के लिए सुन्दर शारीरिक छवि की जो रूढ़िबद्ध धारणा है, वह उस धारणा में भी उपयुक्त नहीं बैठती। चूँकि महिला से परिवार का सम्मान भी जुड़ा होता है इसलिए परिवार दिव्यांग लड़कियों को छिपाकर रखता है और उसे बाहर निकलने तथा शिक्षा या रोजगार हासिल करने जैसे मूलभूत अधिकारों तक से वंचित कर दिया जाता है। दिव्यांग पुरुषों की तुलना में दिव्यांग महिलाओं के विवाह की संभावना कम होती है। यौनिक साझेदार, गृहिणी तथा माँ के रूप में दिव्यांग महिलाओं की क्षमता पर सन्देह करते हुए उन पर सवाल उठाया जाता है। यह माना जाता है कि दिव्यांग महिलाएँ घर के कामकाज को अच्छी तरह से नहीं कर सकेगी, वे सार्थक यौन सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकेंगी और वे स्वस्थ बच्चों को जन्म नहीं दे सकेंगी या बच्चों का भली भाँती पालन–पोषण नहीं कर सकेंगी। इन परिस्थितियों में उनका विवाह पहले से शादीशुदा उम्रदराज व्यक्ति या अस्वस्थ व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। संक्षेप मे, दिव्यागं महिलाओं के पास विवाह आरै मातृत्व पाने का विकल्प गैर–दिव्यांग महिलाओं के विकल्पों जैसा नहीं रहता। पालन–पोषण एवं देखभाल करना महिलाओं की पहचान तथा 'उचित' स्त्रीत्व की सास्ंकृतिक अपेक्षाओं के महत्वपूर्ण पहलू हैं किन्तु दिव्यांग महिलाओं को तो स्वयं ही देखभाल की आवश्यकता होती है। इस प्रकार उनको पूर्ण महिला नहीं समझा जाता।

दिव्यांग महिलाएँ हिंसा और उत्पीड़न के शिकार–

उपेक्षित और गुमनाम होने के कारण दिव्यांग महिलाएं हिंसा और उत्पीड़न के लिए बहुत सुभेद्य होती हैं। इसके अलावा दैनिक जीवन के कार्यों, जैसे कपड़े पहनने, भोजन करने तथा अन्य शारीरिक गतिविधियों में पराश्रित होने के कारण दिव्यागं महिलाएँ दोनों जगह– घर पर भी और संस्थाओं में भी उत्पीड़न के लिए और अधिक सुभेद्य बन जाती हैं। जोखिम की स्थिति में वे अपनी रक्षा करने में कम सक्षम होगी क्योंकि वह भाग भी नहीं सकेंगी और चीखकर सहायता भी नहीं माँग सकेंगी। विकासात्मक दिव्यांगता के शिकार व्यक्ति भी दूसरों पर अधिक विश्वास करने को विवश होते हैं औ उन्हें आसानी से कोई चाल चलकर, रिश्वत के फेर में या बलपूर्वक शिकार बनाया जा सकता है। हो सकता है कि उन्हें 'अच्छे स्पर्श' और 'बुरे स्पर्श' का अन्तर ही न पता हो। मानसिक या बौद्धिक रुपसे दिव्यागं लड़कियों तथा महिलाओं के साथ उत्पीड़न के ज्यादातर मामले ऐसे आते है जहाँ उनका उत्पीड़न, उनकी सुरक्षा और देखभाल का जिम्मा लेने वाले व्यक्ति द्वारा किया गया होता है। उत्पीड़क आश्वस्त रहता है कि पीड़िता अपने साथ हुए उत्पीड़न की शिकायत नहीं कर सकेगी और उत्पीड़क पकड़ा नहीं जा सकेगा। उत्पीड़क जानते हैं कि मूक और बधिर दिव्यांग, संचार कौशल के अभाव के कारण, अपनी बात ठीक तरीके से कह ही नहीं पाएँगे। अतः वे अपनी शिकायतें दर्ज नहीं करा पाएँगे। इतना ही नहीं, चूँकि दिव्यांगजनों को प्रायः आज्ञाकारी और निष्क्रिय रहना सिखाया जाता है, चूँकि उन्हें अपने व्यवहार पर नियन्त्रण रखना सिखाया जाता है, इसलिए उनके लिए उत्पीड़न का शिकार हो जाना बहुत आसान हो जाता है।

दिव्यांग महिलाओं के जीवन में शारीरिक सुगमता और आवागमन का अभाव–

हमारे देश में कार्य करने या घूमने के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक एक जगह से दूसरी जगह आना–जाना महिलाओं के लिए आमतौर पर कठिन होता है। इसलिए हम भली प्रकार यह कल्पना कर सकते हैं कि दिव्यांग महिलाओं की स्थिति क्या होती होगी। सार्वजनिक परिवहन की खराब स्थिति, सडकों का खराब होना या सड़कों का ही न होना, सड़कों पर सही ढंग की रोशनी का न होना और उचित सुरक्षा का अभाव इन सब कारणों से दिव्यांग महिलाओं का बिना किसी की सहायता के एक जगह से दूसरी जगह जाना अत्यधिक कठिन होता है। आपने सार्वजनिक स्थानों पर दिव्यांग महिलाओं को बहुत कठिनाई का सामना करते हुए देखा होगा क्योंकि जो आधारभूत संरचना निर्मित की गयी है (सड़कें भवन, शौचालय आदि) उसमें उनके लिए निर्वाह करना बहुत कठिन है।

सार्वजनिक परिवहन की बसों तथा रेलगाडियों में स्थितियाँ आमतौर पर सभी दिव्यागों और खास तौर पर महिला दिव्यागों के लिए बहुत प्रतिकूल हैं। अच्छी शौचालय सुविधाओं का अभाव एक मुख्य समस्या है। सार्वजनिक शौचालय गन्दे और बदबूदार होते हैं और अक्सर वे जमीन पर ही बिना किसी ऊँचाई के बने होते हैं (भारतीय शैली के शौचालय) जिससे चलने फिरने में असमर्थ दिव्यांगों के लिए इनका प्रयोग करना बहुत दुष्कर हो जाता है और उन्हें घुटनों के बल चलकर उसका उपयागे करना पड़ता है। बहुत सारी दिव्यांग महिलाओं ने अपना अनुभव बताया है कि जब वे घर से बाहर गयीं तो लम्बे समय तक उन्होंने न तो कुछ खाया, न पिया इस डर से कि कहीं उनको शौचालय न जाना पड़ जाए। इन सब चीजों का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आवागमन की इन कठिनाइयों के कारण दिव्यांग लड़िकयों के बारे में परिवार यह चाहता है कि वे घर की चारदीवारी में ही कैद रहें। ऐसी बहुत–सी लड़कियों को बाहरी दुनिया से जुड़ने, जैसे स्कूल जाने, मित्र बनाने या रिश्तेदारों या पड़ोसियों के यहाँ जाने का अवसर ही नहीं मिल पाता। इसके कारण उनके मन में हताशा, अजनबीपन तथा अयोग्य होने की भावना जन्म ले लेती है।

दिव्यांग महिलाओं के जीवन में शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार में बाधा–

अनेक दिव्यांग लड़कियाँ स्कूल नहीं जा पातीं। उनकी स्थिति के साथ बहुत सारे सामाजिक लांछन जुड़े होते हैं जिसके कारण उनके परिवार वाले लोग उनको दुनिया की नजरों से छिपाकर रखना चाहते हैं। परिवार वालों को यह भय होता है कि अगर यह दिव्यांग लड़की घर से बाहर जाएगी तो परिवार की बदनामी होगी और इसके कारण परिवार की अन्य लड़कियों का विवाह करना दुष्कर हो जाएगा। ऐसे विशेष विद्यालय या व्यावसायिक केन्द्र, जहाँ दिव्यांग लड़कियों के लिए उचित सुविधाएँ उपलब्ध हों, प्रायः शहरी इलाकों में होते हैं तथा लड़कियों का उन केन्द्रों तक रोज आना–जाना परिवार के लिए बोझ बन जाता है। छात्रावास की सुविधाओं का अभाव तथा यदि छात्रावास हों भी, तो वहाँ उचित देखभाल की समस्या से यह मामला और भी जटिल हो जाता है। बहुत से परिवार अपनी दिव्यागं बेटियों को पढ़ाने लायक नहीं समझते और वे इसके लिए कोई खर्च करना नहीं चाहते क्योंकि लड़कियों को तो वैसे ही बोझ माना जाता है। दिव्यांग महिलाओं के लिए रोजगार पाना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि उनको शिक्षा और प्रशिक्षण मिलता ही नहीं। इससे उनके भविष्य के लिए संकट हो जाता है खासतौर पर तब, जब उनके माता–पिता की मृत्यु उनकी स्वतंत्र देखभाल के लिए धनराशि छोड़े बिना हो जाती है।

दिव्यांग महिलाओं के जीवन में अनेक स्वास्थ्य समस्याएँ–

दिव्यांग लड़िकयों तथा महिलाओं को बहुत–सी स्वास्थ्य की समस्याएँ उठानी पड़ सकती हैं, जिनका सरोकार उनकी दिव्यांगता से होता है। इसके लिए लम्बे समय तक इलाज, पुनर्वास तथा व्यावसायिक चिकित्सा, फिजियोथेरेपी, विशेष पोषण आदि की आवश्यकता होती हैं जो बहुत खर्चीले होते हैं। दिव्यांगों को

सहायक उपकरणय जैसे श्रवण–यन्त्र, व्हील–चेयर या चलने–फिरने के लिए कृत्रिम अंग उपलब्ध कराने में निर्धन परिवारों को बहुत अधिक कठिनाई होती है। महिलाएँ तब स्वास्थ्य केन्द्रों पर जाना बहुत लज्जाजनक मानती हैं, जब उनको लगता है कि स्वास्थ्यकर्मी उनके साथ असंवेदनशीलता और निर्दयता से व्यवहार करते हैं। बहुत–सी महिलाएँ अपने स्वास्थ्य पर इसलिए उचित ध्यान नहीं देती कि वे अपने परिवार पर कोई बोझ नहीं डालना चाहतीं और अपने को बेकार (अयोग्य) समझती हैं। स्वास्थ्य सीधे तौर पर पोषण और जीवन की गुणवत्ता से जुड़ा होता है। अनेक दिव्यांग महिलाएँ निर्धनता और उपेक्षा के कारण पर्याप्त आहार नहीं ले पातीं, न ही उनको खुली हवा, व्यायाम और स्वस्थ रहने का एक समग्र वातावरण मिलता है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, दिव्यांग लड़कियाँ और महिलाएँ प्रायः लांछन (कलंक), शर्म और व्यावहारिक कठिनाइयों जैसे आवागमन की कठिनाइयों के चक्रव्यूह में घिरकर घर में ही कैद बनी रहती हैं। इससे उनको अपने साथियों के साथ जुड़ने, मित्र बनाने, समाजीकृत होने, पारिवारिक आयोजनों और धार्मिक समारोहों में शामिल होने आदि के अवसर बहुत कम ही मिल पाते हैं। इससे वे अलग–थलग पड़ जाती हैं तथा उनका जीवन नीरस और उबाऊ हो जाता है। जैसा कि पहले कहा गया है, हमारे सार्वजनिक स्थान दिव्यांग व्यक्तियों के लिए सुविधाजनक नहीं हैं। फुरसत की गतिविधियों जैसे भोजन करने या फिल्म देखने के लिए बाहर जाना उनके लिए लज्जाजनक और पीड़ादायक अनुभव बन जाता है। दिव्यांग महिला को एक तरह से उठाकर ही ले जाना पड़ सकता है क्योंकि लिफ्ट या रैम्प उपलब्ध नहीं होता है या फिर उनको अपने साथियों से दूर बैठा दिया जाता है क्योंकि उसकी व्हील–चेयर के लिए पर्याप्त जगह मौजूद नहीं हुआ करती। इस प्रकार हम देखते हैं कि दिव्यांग महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन हर स्तर पर होता है। उनका परिवार उनको आर्थिक रूप से एक बोझ और सामाजिक रूप से एक दायित्व मानता हैय घर से बाहर निकलने और शिक्षा प्राप्त करने के उनके अवसरों को नकार दिया जाता हैय उन्हें यौनिक रूप से उदासीन, असहाय और पराश्रित व्यक्ति के रूप में देखा जाताहै। शारीरिक, भावनात्मक और यौन उत्पीड़न के प्रति उनकी सुभेद्यता बहुत अधिक होती है। प्रायः उनको विवाह तथा मातृत्व का सुख प्राप्त करने से वंचित कर दिया जाता हैय वे एक ऐसे वातावरण में बडी होती हैं जहाँ उन्हें घर की चारदीवारी या विशिष्ट सस्थानों में लगातार इस तरह अलग–थलग और उपेक्षित रहना पड़ता है, जहाँ सामान्य जीवन की कोई आशा ही न शेष रह गयी हो। यद्यपि दिव्यांगता के अधिकारों के आन्दोलनों में अधिकार की माँग पर आधारित दृष्टिकोण काफी आगे बढ़ा है किन्तु दिव्यांग महिलाओं से जुड़े विशेष सरोकारों पर अभी भी न तो सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों में और न ही स्वयंसेवी संस्थाओं के स्तर पर कोई ध्यान दिया गया है। इसे विडम्बना कहें या अपेक्षानुरूप ही कहें कि दिव्यांग अधिकार आन्दोलन दुनिया भर में और भारत में भी पुरुष वर्चस्ववादी रहा है। यह पूरी तरह से लैंगिक रूप से भेदभावपूर्ण भी हो सकता है। महिलाओं के आन्दोलनों में, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी, दिव्यांग महिलाओं की शायद ही एक समूह के रूप में कोई मौजूदगी हो। फिर भी, 1995 की बीजिंग घोषणा 'कार्यवाही के लिए मंच' में दिव्यांग महिलाओं को विशिष्ट रूप से सुभेद्य वर्ग के रूप में रखा गया है, जिनकी अपने मौलिक अधिकारों की सूचना तक पहुँच बहुत ही कम है। यह गम्भीर कमी है जिसको विभिन्न स्तरों पर सुधारने की आवश्यकता है। दिव्यांग महिलाओं की उपस्थिति 2006 में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा (सामान्य परिषद) द्वारा पारित 'दिव्यांगों के अधिकार हेतु संयुक्त राष्ट्र अधिवेशन' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है चूँकि भारत इस अभिसमय पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में शामिल है, इसलिए इसका यह कर्तव्य है कि वह दिव्यांगता से जुड़ी अपनी सभी नीतियों और कार्यक्रमों में जेंडर के परिप्रेक्ष्य को भी उसमें शामिल करे। दिव्यांगता के सम्बन्ध में नवीन अधिनियम महिलाओं की यौनिक और प्रजननमूलक स्वास्थ्य देखभाल तक

पहुँच से विशिष्ट रूप से सन्दर्भित है। हालाँकि, इस विषय में अभी भी बहुत कुछ किया जाना शेष है कि दिव्यांग महिलाएँ किस प्रकार अपने सभी अधिकार हासिल कर सकें।

निष्कर्ष– दिव्यांगता एक सार्वभौमिक मानवीय दशा है और हम सभी केवल 'अस्थाई रूप से सक्षम' लोग हैं। दिव्यांगता की धारणा को एक त्रासदी या चिकित्सकीय विसंगति के रुप में मानने की अवधारणा को विचारकों ने चुनौती दी है और इसे एक सामाजिक एवं जैविक स्थिति माना है। भेदभावपूर्ण सामाजिक अभिवृत्तियों के कारण तथा दिव्यांगजनों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करने के कारण उनको सदैव ही अशक्त, शक्तिहीन तथा अलग–थलग मान लिया गया है। दिव्यांग महिलाओं की दशा खासतौर से मुश्किल भरी हो गई है क्योंकि उन्होंने जीवन के सभी हिस्सों में भेदभावों और हाशियाकरण को झेला है। दिव्यांग महिलाओं ने विवाह, पारिवारिक जीवन से लेकर आवागमन, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य की देखभाल और फुरसत (खालीपन) के मौकों सहित हर किसी पहलू पर बहुत कुछ झेला है। हालाँकि, नए अधिकार सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा पिछले कुछ वर्षों में प्रस्तावित की गयी अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों ने दिव्यांग महिलाओं को उनकी स्थिति के बारे में अधिक जागरूक बनाया है। दिव्यांग महिलाओं के गहन शोध तथा उनके अपने जीवनानुभवों को लिखने के कारण हमारेज्ञान और समझ को समृद्धि मिली है। दिव्यांगता अब लोकप्रिय सिनेमा में भी रोचक विषय बन गया है। इन सभी विकसनशील कार्यों से यह विश्वास जगता है कि स्थिति को बेहतर ढंग से समझा जा सकेगा तथा जमीनी स्तर पर ठोस उपाय किए जा सकेंगे। ये उपाय यह सुनिश्चित करेंगे कि सभी दिव्यांग व्यक्तियों को जीवन की जरूरतें पूरी करने के अवसर नीतिय एवं कानूनों के माध्यम से लागू किए जा सकें।

सन्दर्भ–

Action Aid. 2003. *Just People–Nothing Special, Nothing Unusual.* Bangalore:Books for Change.

- Additional title in Useful Readings:Addlakha, Renu (2013) Disability Studies in India. Delhi: Routledge
- Bacquer, A.& Sharma, A. (1997). *Disability: Challenges vs Responses.* New Delhi: Concerned Action Now.
- Begum, Nasa (1992). Disabled Women and the Feminist Agenda. *Feminist Review*, 40(1), 70-84.
- Chib,Malini (2012) *One Little Finger* New Delhi: Sage Publications.
- Fine, M. & Asch Adrienne (1988). Introduction: Beyond Pedestals. In M. Fine and A. Asch (Eds). *Women with Disabilities: Essays in Psychology, Culture and Politics* (pp. 1-37). Philadelphia; Temple University Press.
- Gupta, Shivani (2014*) No Looking Back* New Delhi: Rupa Publications Census of India,2011
- Data on Disability downloaded from http://
- www.languageinindia.com/jan2014/disabilityinindia2011data.pdf
- Ghai,Anita (2015) *Rethinking Disability in India* Routledge.

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

साध्वी महिलाओं की ऐतिहासिक यात्राः समाजशास्त्रीय मूल्यांकन, पहचान और संघर्ष

कृतिका सिंह
शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग
जगतपुर पी.जी. कॉलेज, जगतपुर, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रो. अशोक कुमार सिंह
प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग,
जगतपुर पीजी कॉलेज, जगतपुर, वाराणसी (उ.प्र.)

सारांश

साध्वी महिलाएँ भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और सामाजिक भूमिका निभाती हैं, जिनका जीवन परंपरा, संस्कृति, और आध्यात्मिक सिद्धांतों से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। यह शोध पत्र साध्वी महिलाओं के जीवन की ऐतिहासिक यात्रा का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन प्रस्तुत करता है, जिसमें उनकी पहचान, भूमिका और संघर्षों का विश्लेषण किया गया है। साध्वी महिलाओं का जीवन केवल एक धार्मिक यात्रा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों में प्रभावी रूप से प्रभावित होता है। साध्वी महिलाओं ने धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक संरचनाओं को चुनौती दी है, जिससे वे एक विशेष पहचान प्राप्त करती हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में साध्वी महिलाओं का संघर्ष कैसे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक बाधाओं के बावजूद आकार लेता है, और उनके संघर्षों के परिणामस्वरूप उनकी पहचान किस प्रकार उभरकर सामने आती है। भारतीय समाज में संतों और साधकों की भूमिका ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण रही है, और यह दृष्टिकोण विशेष रूप से महिलाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। पुरुष संतों की तुलना में महिला संतों की संख्या कम दिखाई देती है, यह असल में उनकी गुप्त संतत्व और समाज में मौन, लेकिन प्रभावी भूमिका को दर्शाता है। संतत्व केवल प्रसिद्धि, चमत्कारों या प्रसिद्धि से नहीं जुड़ा होता, बल्कि यह आत्मबलिदान, करुणा, और उच्चतम नैतिक गुणों के प्रदर्शन से संबंधित होता है। महिला संतों की भूमिका पर चर्चा करते हुए यह देखा जाता है कि साध्वी महिलाएँ घर, परिवार और समाज में धर्म और आध्यात्मिकता के प्रमुख स्तंभ के रूप में कार्य करती हैं। भारतीय संस्कृति में यह महिलाएँ बच्चों को आध्यात्मिक शिक्षा देती हैं, धार्मिक अनुष्ठान करती हैं, और समाज को नैतिक और धार्मिक मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। उदाहरण स्वरूप, प्राचीन वैदिक काल में गार्गी, मैत्रेयी, और लोपामुद्रा जैसी महान महिला संतों ने धर्म, तपस्या, और ज्ञान में अभूतपूर्व योगदान दिया था। भारत में महिलाओं का धर्म से गहरा संबंध है, और वे पिछले 4000 वर्षों से आध्यात्मिक परंपराओं की निरंतरता बनाए रखने के लिए जिम्मेदार रही हैं। संतत्व का वास्तविक माप इन महिलाओं के जीवन में दिखाए गए गुणों – जैसे करुणा, आत्मबलिदान, और धार्मिक समर्पण – में निहित है, न कि प्रसिद्धि या बाहरी आडंबर में। यह शोध पत्र भारतीय समाज में महिला संतों की अदृश्य, लेकिन महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानने और सराहने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

परिचयः

शताब्दियों से देशों के सनातन दर्शन के साधकों और संतों के पास अपने समाज की समस्याओं से निपटने और उन्हें हल करने में मदद करने का एक बिल्कुल अलग तरीका है। अधिकत्तर जब आप

किसी महान गुरु से कोई प्रश्न पूछते हैं, तो वे ऐसा उत्तर देते हैं जिसका पूछे गए प्रश्न से कोई संबंध नहीं होता। यह आपके मन के कुछ क्षेत्रों को छूएगा कुछ समय के लिए, शायद कई महीनों, वर्षों, दशकों या यहाँ तक कि कई जन्मों के लिए, कुछ मस्तिष्क तरंगों को जन्म देगा। यह उस समस्या के अचेतन मूल को हल करने में मदद करेगा जिससे सचेत प्रश्न उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार एक संत समकालीन समाज में एक बीज डालता है जिसका उस समय समाज से कोई सीधा संबंध नहीं लगता है। लेकिन एक सदी में इस बीज से कुछ और अंकुरित होता है और पूरा समाज अनजाने में ही बदल जाता है। दुनिया की सभी संस्कृतियों में सभी संतों और गुरुओं की यही पद्धति है। यहाँ एक और बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि संत जरूरी नहीं कि कोई प्रसिद्ध व्यक्ति ही हो। ऐसे बहुत से महान संत हैं जो कभी बड़ी संख्या में लोगों के बीच नहीं जाने जाते। अगर ऐसा लगता है कि प्रसिद्ध होने से उनका मिशन पूरा हो जाएगा, तो वे खुद को प्रसिद्ध होने देंगे। वे संत हैं, यही उनकी सफलता है। इसके अलावा, कोई और क्या सफलता चाह सकता है या आप क्या हासिल करना चाहते हैं? इतिहास में उनकी प्रसिद्धि के संदर्भ में एक संत की सफलता, या कितने लोगों को उनके द्वारा किए गए चमत्कारों के बारे में पता चला, या पॉलिस्ट प्रेस ने उनके लेख प्रकाशित किए, या यहाँ तक कि पोप ने व्यक्ति को संत घोषित किया या नहीं, ये सभी मामले संतत्व के तथ्य से पूरी तरह अप्रासंगिक हैं।

बहुत से लोग पूछते हैं, ''इतिहास में महिला संतों की तुलना में पुरुष संतों की संख्या इतनी ज्यादा क्यों है?'' मानो उन्होंने सभी संतों, पुरुष और महिलाओं की पूरी सूची बना ली हो और सही संख्या की जाँच कर ली हो। इसके बजाय आप यह सवाल पूछ सकते हैंः ''ऐसा क्यों है कि महिला संत इतनी प्रसिद्ध नहीं हुई हैं?'' हमारा यह शोध पत्र इस धारणा के साथ हैं कि, संतत्व के कुछ गुण विनम्रता, शालीनता, आत्म–विनाश, आत्म–छिपाव हैं व्यक्तिगत दावा नहीं, प्रसिद्धि या धन या आराम या मान्यता की चाह नहीं। मुझे यह कहने में बिलकुल संकोच नहीं है कि पुरुष संतों की तुलना में महिला संत अधिक नहीं हैं तो कम भी नहीं हैं। महिला संत पुरुष संतों की तुलना में गुप्त रहकर अपने संतत्व में अधिक सफल होती हैं। और मैं यह दोहराना चाहती हूँ कि इस धरती पर अभी ऐसे कई संत हैं, जिनके नाम बड़े पैमाने पर लोगों को ज्ञात नहीं हुए हैं और कभी ज्ञात नहीं होंगे, लेकिन वे अपने आस–पास के जीवन के विशेष क्षेत्रों में अपने तरीके से अपना प्रभाव डालते हैं। जहाँ तक संतत्व के बुनियादी परीक्षणों का सवाल है, संतत्व के लिए आवश्यक कुछ गुण हमेशा उन कार्यों और भूमिकाओं में अंतर्निहित रहे हैं जो महिलाओं ने समग्र समाज में निभाई हैंः परिवार के भीतर संचार की सुविधा प्रदान करना, मातृत्व के लिए आवश्यक महान करुणा, और इसी तरह। यह मान लेना कि संत कहलाने के लिए आपको घर छोड़ना होगा, आपको गुफा में रहना होगा, आपको बहुत सारे चमत्कार करने होंगे, आपको प्रसिद्ध होना होगा, आपको संत घोषित किया जाना होगा, ये सब कहीं से भी संतत्व की परिभाषा के करीब नहीं आते। हमें जो देखना है वो है संत के जीवन में प्रदर्शित होने वाले सबसे गहरे गुणः आत्म–बलिदान, करुणा, दयालु शब्द, कोमल आवाज, किसी दावे में अंतिम होना। और जब हम कई अलग–अलग समाजों को देखते हैं तो पाते हैं कि कई पुरुषों की तुलना में कई ज्यादा महिलाएँ इन गुणों को प्रदर्शित करती हैं।

वैदिक कालीन भारतीय समाज में साध्वी महिलाएँ धार्मिक, सांस्कृतिक, और सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्थापित थीं। वे समाज में आध्यात्मिक मार्गदर्शन देने, धार्मिक अनुष्ठान करने, और नैतिक सिद्धांतों का पालन करने में प्रमुख भूमिका निभाती थीं। वैदिक काल में महिलाओं को समाज में कई सम्मानजनक स्थान प्राप्त थे, और साध्वी महिलाएँ इनमें से एक प्रमुख श्रेणी थीं। प्राचीन भारत में

साध्वी महिलाएँ धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों, पूजा–अर्चना, और तपस्या में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। वे साधना के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती थीं और समाज को धार्मिक दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती थीं। उनके जीवन का उद्देश्य आत्म–निर्माण और मोक्ष की प्राप्ति था, और यह उद्देश्य धार्मिक प्रथाओं और कर्मकांडों के माध्यम से प्राप्त किया जाता था। भारतीय धार्मिक ग्रंथों, जैसे वेदों और उपनिषदों में महिलाओं के आध्यात्मिकता और तपस्विता की तारीफ की गई है। कई महिला संत और तपस्विनियाँ, जैसे गार्गी, मैत्रेयी, और लोपामुद्रा, ने विद्वता, तपस्या और ज्ञान में अद्वितीय योगदान दिया था (Sharma 2014, 95)।

सामाजिक और पारिवारिक भूमिकाः

साध्वी महिलाओं का जीवन पारंपरिक रूप से संयमित और तपस्वी होता था, और वे परिवार और समाज में एक आदर्श प्रस्तुत करती थीं। उनका उद्देश्य न केवल धार्मिक उन्नति था, बल्कि वे अपने परिवार के सदस्यों के लिए एक नैतिक और संस्कारी जीवन की मिसाल प्रस्तुत करती थीं। साध्वी महिलाएँ अपनी धार्मिक तपस्या के द्वारा समाज को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करने का कार्य करती थीं। उनके जीवन से यह संदेश मिलता था कि कैसे एक साध्वी महिला संयमित और तपस्वी जीवन जीकर समाज में सुधार ला सकती है (Singh 2016, 119)। बौद्ध धर्म से पहले भारतीय समाज में भिक्षुणियाँ कम संख्या में थी। धीरे–धीरे तप की भावना अधिक से अधिक मूल्यवान होती गई और सामान्य विवाहित जीवन और आत्मा का जीवन असंगत माना जाने लगा। यह समानता का ऐसा माहौल था जिसमें प्राचीन भारत में महिलाओं ने ज्ञान और आध्यात्मिकता का परिचय दिया। पुरुषों और महिलाओं दोनों के बीच संतों, ऋषियों और द्रष्टाओं का उदय काफी हद तक हिंदू विवाहित जीवन के उच्च मानकों के कारण हुआ था। वे वेद, उपनिषद, और अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करती थीं और उनका प्रचार करती थीं। खॉसकर वे उपनिषदों के अध्ययन और वेदों के गहरे अर्थों को समझने में रुचि रखती थीं। कई साध्वी महिलाएँ प्रमुख धार्मिक शास्त्रों की लेखनी में भागीदार थीं, और इस प्रकार उन्होंने धार्मिक दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। एक उदाहरण के रूप में, उपनिषदों की स्त्री विद्वान गार्गी और मैत्रेयी को देखा जा सकता है, जिन्होंने धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर अपने गहरे विचार प्रस्तुत किए (Sharma 2014, 102)। धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ वे महिलाओं को समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए शिक्षा देने का कार्य करती थीं। यह साध्वी महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान था कि उन्होंने महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए शिक्षा के माध्यम से जागरूक किया और समाज में उनके स्थान को मजबूती से स्थापित किया।

प्राचीन भारत में साध्वी महिलाएँ धार्मिक और शास्त्रों के अध्ययन में शामिल थीं। आलयान गीता–सूत्र, 3.4, 4.2 हिंदू महिलाओं के बीच आध्यात्मिक परंपरा युगल आध्यात्मिक साथी हैं, जिनमें से प्रत्येक एक दूसरे का पूरक है, और दोनों एक आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। विवाह अनुशासन और सेवा में पूरा होता है, न कि आनंद में। सभी व्यक्ति, युवा और बूढ़े, ऐसे परिवारों और ग्रामीण समुदायों में पले–बढ़े हैं, जहाँ जीवन की सभी गतिविधियों, यहाँ तक कि सबसे विनम्र गतिविधियों को आध्यात्मिक दिशा दी गई थी। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सदियों से और इतने विशाल देश में पुरुषों और महिलाओं को आध्यात्मिक दिशा दी गई है। बड़ी संख्या में ऐसी स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं जो आध्यात्मिक विकास के अंतिम चरण – त्याग के जीवन – के लिए उपयुक्त थीं और संत बन गईं। ऋग्वेद में हमें ऐसी बहुत सी स्त्रियों के नाम मिलते हैं जिन्होंने उच्चतम आध्यात्मिक सत्यों को प्राप्त किया। उन्हें सत्य की द्रष्टा, आध्यात्मिक शिक्षिका, दिव्य वक्ता और प्रकटकर्ता के रूप में पहचाना जाता

है। अकेले ऋग्वेद में ही बड़ी संख्या में प्रेरक स्तोत्र हैं जिन्हें सुकिया कहा जाता है और जो सत्ताईस स्त्रियों द्रष्टाओं या ऋषियों या ब्रह्मवद्मों को दिए गए हैं। ऋग्वेद की पहली पुस्तक का एक सौ छब्बीसवाँ स्तोत्र हिंदू महिला कोमाशा द्वारा प्रकट किया गया था और उसी पुस्तक का एक सौ उनहत्तरवाँ स्तोत्र लोपामुद्रा द्वारा प्रकट किया गया था।

वैदिक ज्ञान की अन्य महिलाएँ प्रकट हुईं, जैसे कि विवर, शाश्वत, अपाला, घोषा और अदिति, जिनमें से प्रत्येक ने इस दुनिया की चीजों से अछूते रहते हुए आध्यात्मिकता का आदर्श जीवन जिया। उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों को श्रद्धापूर्वक किया, पवित्र भजन गाए और महान दार्शनिकों के साथ जीवन और मृत्यु, आत्मा और ईश्वर की सूक्ष्म और कठिन समस्याओं पर चर्चा की और कभी–कभी सबसे उन्नत समकालीन विचारकों को हरा दिया। आरंभिक वैदिक काल में हिंदू महिलाओं के बीच आध्यात्मिक परंपरा अच्छी तरह से स्थापित थी। इस परंपरा की कार्यप्रणाली को कुंवारी दार्शनिक गर्ग के समय में देखें, जिन्होंने खुले दरबार में महान ऋषि याज्ञवल्क्य को गूढ़ दार्शनिक तर्कों के साथ चुनौती दी थी। उत्तर–वैदिक काल में कुछ महिला शिक्षकों को इपध्य्युया या उपध्यायी या द्चर्द्यद कहा जाता था, ताकि उन्हें शिक्षकों की पत्नियों से अलग किया जा सके, जिन्हें उपध्यायिद्म या इलचर्द्यद्म कहा जाता था। पुराणों और महाकाव्यों के लिखे जाने के समय तक आते–आते, हम महिलाओं में महान संतों, तपस्वियों और योगियों को पाते हैं। ऋद्धि–सिद्धांत में महिला तपस्वी श्रमणी और तबरी की बात की गई है। बाद में माताहगा नामक एक महान ऋषि की शिष्या ने उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त की थीं। वह कठोर तपस्या में लीन थी और पेड़ों की छाल और जटाएँ पहनती थी। महाभारत में हम सुलभा का वर्णन पढ़ते हैं, जो एक घुमक्कड़ भिक्षुणी और महान योगी (एक महिला योगी) थी। वह राजा जनक के दरबार में गई और उसने योग के अभ्यास से जो महान शक्तियाँ और ज्ञान अर्जित किया था, उसका प्रदर्शन किया। एक अन्य महिला तपस्वी, जिसे शिवा के नाम से जाना जाता है, वेदों में पारंगत थी और उसने आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त की। सांडिल्य की पुत्री ने ब्रह्मचर्य का जीवन अपनाया और एक सिद्ध आत्मा बन गई। कभी–कभी, विवाहित महिलाएँ तपस्वी बन जाती थीं। प्रभास की पत्नी ब्रह्म–वदीम बन गई और उसने घुमक्कड़ भिक्षुणी का जीवन अपनाया और योग का अभ्यास किया। आज भारत में कई योगिनियाँ रहती हैं, जो अत्यधिक उन्नत आत्माएँ हैं। उनमें से कई पुरुषों और महिलाओं की आध्यात्मिक शिक्षिका बन गईं। श्री रामकृष्ण की एक ऐसी योगिनी थी। उनकी कई महिला शिष्याएँ थीं, जो भिक्षुणी का जीवन जीती थीं और जो स्वयं शिक्षिकाएँ गुरु बन गईं।

भारतीय इतिहास के स्मृति–पुर्दना काल (500 ई.पू. से 600 ई.) को अंधकार युग कहा जा सकता है, जिसमें लड़कियों के लिए शिक्षा के अवसरों की कमी थी। कम उम्र में विवाह एक प्रथा बन गई और लड़कियों का विवाह अनिवार्य हो गया। उनके पूर्ण मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए पर्याप्त सुविधाएँ नहीं दी जाती थीं। इस अवधि के दौरान लड़कियों का उपनयन संस्कार औपचारिक हो गया और उसके बाद वेदों का अध्ययन नहीं किया जाता था, यहाँ तक कि यह कहा गया कि लड़कियों का उपनयन संस्कार वेदों के मंत्रों के उच्चारण के बिना किया जा सकता है। सामाजिक नेताओं ने धीरे–धीरे महसूस किया कि चूंकि यह एक औपचारिकता मात्र बन गई है, इसलिए इसे समाप्त किया जा सकता है। इसलिए याज्ञवल्क्य ने लड़कियों के लिए उपनयन संस्कार की अनुमति नहीं दी, न ही बाद के स्मृति लेखकों ने। यद्यपि हिंदुओं में कुछ भिक्षुणियाँ थीं, लेकिन वे हिंदू धार्मिक जीवन में प्रमुख नहीं थीं। एक संन्यासी अपनी पत्नी के साथ जंगल में जाकर अपना जीवन पूरी तरह से आध्यात्मिक अनुशासन के लिए समर्पित कर सकता था, लेकिन ऐसे मामले बहुत कम थे। हिंदू धर्म ने पत्नी के लिए संन्यास की यह

अनुमति वापस ले ली और घोषणा की कि, लौह युग में पुरुषों के लिए मठवासी जीवन अनुमेय नहीं था। जब बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के संप्रदाय में भ्रष्टाचार घुस गया, तो अनुमति वापस लेना और सख्त हो गया।

600–1800 ई. के बीच महाकाव्यों और पुराणों का धर्म लोकप्रिय हो गया, ('शास्त्रीय संस्कृत, जिसमें पुराण और स्मृतियाँ लिखी गई थीं, लगभग ग्यारहवीं शताब्दी ई. तक आम लोगों के लिए समझ में आने लायक नहीं रही। महिलाओं को वैदिक विशेषाधिकारों से पूरी तरह वंचित कर दिया गया था। यह इस अवधि में था कि भक्ति का पंथ उभरा, और महिलाएँ इसकी कट्टर अनुयायी बन गईं। सभी हिंदू महिला संत भक्ति के पंथ के एक या दूसरे स्कूल की अनुयायी थीं। ऐसे संत भारत के सभी प्रांतों में पैदा हुए थे। व्रत (जागरण के साथ या बिना उपवास), पूजा, पवित्र भजनों का पाठ, पवित्र पुस्तकों का पाठ सुनना और अन्य आध्यात्मिक अनुशासन, उनके द्वारा अभ्यास किए गए थे। इस अवधि की कई प्रमुख महिला संतों को इस खंड में शामिल किया गया है। देश राष्ट्रीय पतन और सामाजिक विघटन के दौर से गुजर रहा था, जो हिंदू धर्म में विघटन की आंतरिक शक्तियों और मुस्लिम शासन से उत्पन्न बाधाओं के कारण हुआ था। दूसरे, हिंदू धर्म में एक ऐसा व्यक्तित्व नहीं था जो आम जनता और बुद्धिजीवियों को आकर्षित कर सके, श्री शंकराचार्य ने अपनी गहन शिक्षा और उच्च आध्यात्मिकता के कारण समाज के बौद्धिक और आध्यात्मिक भाग पर अपना दबदबा बनाए रखा। तीसरे, उस काल की महिला संत विभिन्न पंथों में से किसी एक की अनुयायी थीं – शिव की, या शक्ति (दिव्य माँ) की, या विष्णु की या उनके किसी अवतार जैसे राम और कृष्ण, गणेश या सूर्य की – और इसलिए भिक्षुणियों के आदेश की स्थापना के लिए आवश्यक एकजुट शक्ति का स्पष्ट अभाव था। चौथा, परिवार और समाज में महिला की स्थिति आर्थिक रूप से पुरुष पर पूरी तरह निर्भर थी और उसे काम करने की स्वतंत्रता नहीं थी, जो मानसिक या आध्यात्मिक विकास की पहली शर्त है। पांचवां, विभिन्न प्रांतों की आध्यात्मिक महिलाओं के पास संपर्क के अवसर नहीं थे, न ही संभोग के लिए कोई आम भाषा थी। इस प्रकार, मुख्यतः इन कारणों से, बौद्ध भिक्षुणियों के संप्रदाय के विलुप्त होने के बाद, भारत की महिलाओं में हिंदू भिक्षुणियों के संप्रदाय की स्थापना करने की इतनी प्रबल इच्छा नहीं थी, जो उस समय हिंदू धर्म के नेताओं से मान्यता मांग सके और प्राप्त कर सके। केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक उपलब्धियों पर जोर दिया गया, न कि किसी औपचारिक संप्रदाय की स्थापना पर।

जब भारत में भक्ति आंदोलन आकार ले रहा था, तब नारीवाद एक बहुत लोकप्रिय अवधारणा नहीं थी। लेकिन आध्यात्मिकता के माध्यम से व्यक्तिवाद और शक्ति की उनकी विशुद्ध भावना ने भक्ति परंपरा में महिलाओं की आवाज को प्रमुख बना दिया। हम उनके गीतों, कविताओं और जीवन के तरीकों के माध्यम से नारीवाद के तत्वों का पता लगा सकते हैं। यह शायद भारतीय नारीवाद की शुरुआत का मार्ग प्रशस्त करता है। भक्ति के माध्यम से, इन महिलाओं ने समाज, राजनीति, रिश्तों और धर्मों को बेहतर बनाने के लिए अपनी सच्चाई को परिभाषित करने की कोशिश की। यहाँ इस विकास को उस अवधि के संदर्भ में रखना बहुत महत्वपूर्ण है जब अधिकांश क्षेत्र महिलाओं के लिए सीमित थे। उन्होंने सभी पारंपरिक मानदंडों और पूर्वधारणाओं को चुनौती दी, अपने जीवन को वैसे ही जिया जैसा उन्होंने उचित समझा। ''भक्ति आंदोलनों में महिलाएँ वे गुण अपनाती हैं जो ऐतिहासिक रूप से पुरुषों के पास रहे हैं। वे मनु के उन नियमों को तोड़ती हैं जो उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। एक सम्मानित महिला को अकेले या खुली हवा में रहने या अपने पति के साथ आलिंगन करने से मना करने की अनुमति नहीं है, लेकिन महिला संत अपने पति, बच्चों और परिवारों को छोड़कर अकेले घूमती और यात्रा करती हैं

(Ramanujan, 1992) ।'' यहाँ जो सवाल उठता है वह यह है कि क्या भक्ति का संदेश सामाजिक विरोध का संदेश है। क्या यह जिस समानता का जश्न मनाता है। वह मूल रूप से एक सामाजिक वास्तविकता है – और इसलिए अपने भारतीय संदर्भ में कुछ क्रांतिकारी है – या यह केवल आध्यात्मिक है, जिस स्थिति में यह ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म के साथ सह–अस्तित्व में रह सकता है, भले ही वह इसका समर्थन न करे? (Oja, 2020) ।

पौराणिक कथाएँ, मिथक पहचान और पवित्र जीवनीः

हम महिला संतों को मुख्य रूप से मौखिक परंपरा और उन पर लिखी गई पवित्र कथाओं के माध्यम से याद करते हैं। पौराणिक कथाओं, मिथकों और सामग्री के विशाल भंडार की तुलना में इन महिलाओं का जीवन आश्चर्यजनक रूप से समान है। वे सभी युवा महिलाएँ थीं जिन्होंने कम उम्र में ईश्वर के प्रति अपने प्रेम की खोज की और खुद को इसके लिए समर्पित कर दिया। जब आप करीब से देखेंगे, तो आप देखेंगे कि ये कहानियाँ अधिकत्तर मनगढ़ंत होती हैं, कल्पना और विशिष्टताओं से भरी होती हैं कि वे खुद को, दुनिया को और सबसे महत्वपूर्ण रूप से ईश्वर को कैसे देखती हैं। भक्ति अधिकत्तर अपने स्वामी से शादी करने के लिए तैयार एक युवा महिला को आकर्षित करती है, सब कुछ, यहाँ तक कि पोशाक बौद्धिक रहस्यवादी के लिए एक बाधा है। जबकि इन आत्मकथाओं ने उनके कार्यों को बनाए रखा और उनके प्रभाव को मूर्त रूप दिया, उनका वर्णन आमतौर पर पौराणिक होने के बिंदु तक बढ़ा–चढ़ाकर किया गया था। नतीजतन, इन महिलाओं की अधिकांश कहानियों में ईश्वर, उनके गुरु या खुद के चमत्कार करने के कई उदाहरण हैं, जिन्हें लोककथाओं के लेंस के माध्यम से चित्रित किया गया है।

आज हम इन महिला संतों की कुछ लोकप्रिय रचनाओं को उनके भजनों, अभंगों और लोक कथाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। संरक्षित भाग अनुपलब्ध भाग की तुलना में बहुत कम है क्योंकि उनके योगदान को उनके समय और उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद कभी साहित्यिक या धार्मिक या दैवीय नहीं माना गया। कई गीत, अभंग, भजन और कीर्तन कभी सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत नहीं किए गए।

वहीं दूसरी ओर अर्थात इसके विपरीत्त हिंदू धर्म की सबसे गहरी विशेषताओं में से एक ईश्वर को स्त्री के रूप में मान्यता देना और उसकी पूजा करना है। वास्तव में, हिंदू धर्म एकमात्र ऐसा प्रमुख धर्म है जिसने हमेशा ईश्वर की पूजा स्त्री रूप में की है और आज ऐसा करना जारी रखता है। कई हिंदू देवी में इसके व्यक्तित्व के माध्यम से ईश्वर की ऊर्जा या शक्ति का सम्मान करते हैं। वसंत पंचमी, नवरात्रि और दशहरा जैसे कई त्यौहार पूरी तरह से देवी को समर्पित हैं। जबकि सामाजिक प्रथाएँ लैंगिक समानता और आपसी सम्मान के हिंदू आदर्श के अनुरूप नहीं रही हैं, हिंदू धर्म उन कुछ प्रमुख धर्मों में से एक है जिसमें महिलाओं ने आध्यात्मिक नेतृत्व में सबसे सम्मानित पदों पर कब्जा किया है और अभी कब्जा कर रही हैं।

त्याग और संघर्ष के माध्यम से आदर्श प्रस्तुत करनाः

संतों का कहना है कि ऐसे समय में जब महिलाएं दुनिया में हर मोर्चे पर आगे बढ़ रही हैं, वे सनातन धर्म की ध्वजवाहक बनकर ऐसा कर रही हैं। कुंभ और महाकुंभ के दौरान अखाड़े महामंडलेश्वर और अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति करते हैं। साध्वी महिलाएँ परंपराओं और मान्यताओं को चुनौती देती हैं, खासकर उन सामाजिक संरचनाओं को जो महिलाओं के अधिकार और स्वतंत्रता को दबाती हैं। जहाँ महिला और पुरुष भिक्षुओं के लिए दीक्षा की विधि एक ही है। जो इस संसार से विदा होकर ईश्वर को

प्राप्त करना चाहता है, उसे गुरु महाराज के पास जाना पड़ता है। उसके बाद उस शिष्य को अखाड़े में भर्ती किया जाता है। उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और बाकी सब कुछ सिखाया जाता है।'' वे समाज में जागरूकता और बदलाव की दिशा में काम करती हैं। उदाहरण के लिए, साध्वी भगवती सरस्वती और साध्वी ऋतंभरा जैसी महिलाएँ भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इन साध्वी महिलाओं के कार्य और शब्द समाज में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और सुधार की दिशा में एक जागरूकता पैदा करते हैं (Chaudhary 2017, 32)।

तदनुसार, पहले पांच संस्कार किये जाते हैं। इसमें पांच गुरु – मंत्र गुरु, विभूति गुरु, लंगोटी गुरु, रुद्राक्ष गुरु और जनेऊ गुरु – प्रत्येक प्रक्रिया को संपन्न कराते हैं। इसमें शेविंग की जाती है। इस प्रक्रिया में महिला साध्वियों को लंगोटी के स्थान पर बाघम्बरी वस्त्र पहनाया जाता है। दीक्षा के इन दिनों में कठोर उपवास रखा जाता है। ''अंत में, आपको अपने माता–पिता के साथ–साथ स्वयं का बलिदान करना होगा।'' अंतरराष्ट्रीय श्री महंत माता प्रेमगिरि ने कहा, ''साधुओं में अपनी कामवासना पर नियंत्रण करने के लिए, ध्यान के माध्यम से अपनी कामवासना और तृष्णा को मारना पड़ता है। वे जितना अधिक तप करेंगे, उतना ही उन्हें लाभ होगा। वे जितना अधिक साधना करेंगे, उतना ही वे सांसारिक जीवन से खुद को दूर कर पाएंगे।'' कोई साध्वी जाने–अनजाने में संन्यास या ब्रह्मचर्य की दीक्षा तोड़ती है तो है, श्री महंत आराधना गिरि ने कहा, ''अखाड़े की ओर से उनके खिलाफ कार्रवाई की जाती है और उन्हें अखाड़े से बर्खास्त किया जा सकता है। कुछ साध्वियां ऐसी होती हैं जो संन्यास जीवन छोड़कर अपने सामान्य जीवन में वापस लौट जाती हैं। ऐसे लोगों को दोबारा संन्यास नहीं दिया जाता।'' ''महिलाओं को अभी तक श्रीमहंत के पद तक जाने की अनुमति दी गई है। उन्हें महामंडलेश्वर, मंडलेश्वर या आचार्य जैसे उच्च पदों तक जाने की अनुमति दी गई है। पुराने अखाड़े में ही महिलाओं को कम से कम 'श्रीमहंत' के पद तक का पद दिया गया है। किसी अन्य अखाड़े ने महिलाओं को यह पद नहीं दिया है।'' अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष, चेयरमैन या सचिव जैसे सभी पद प्रशासनिक पद हैं. महंत, श्री महंत, अष्टकौशल महंत, मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर जैसे पद तपस्वी या आध्यात्मिक पद हैं. इनका महत्व ज्यादा है। श्री महंत का पद कुछ अधिकार रखता हैं। यह सही है कि महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में पुरुषों जितना स्थान नहीं मिलता। परन्तु अब यह सुधार हो रहा हैं।

निष्कर्ष:

इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया कि साध्वी महिलाओं की ऐतिहासिक यात्रा और उनके समाजशास्त्रीय मूल्यांकन में कई महत्वपूर्ण पहलू सामने आते हैं। हिंदू धर्म में महिलाओं की भूमिका, विशेष रूप से साध्वी संतों के रूप में, प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक लगातार विकसित होती रही है। जबकि भारतीय समाज में महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, और धार्मिक दृष्टिकोण से कई बाधाओं का सामना करना पड़ा है, साध्वी महिलाएँ अपने जीवन के माध्यम से न केवल आध्यात्मिक विकास में योगदान देती हैं, बल्कि समाज में परिवर्तन और जागरूकता फैलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इतिहास में भक्ति आंदोलन के दौरान, महिला संतों ने अपने आध्यात्मिक विचारों और संघर्षों के माध्यम से भारतीय नारीवाद की नींव रखी। उनके गीतों, कविताओं, और जीवन के तरीके ने पारंपरिक मानदंडों को चुनौती दी, और समाज के भीतर महिलाओं की स्थिति को पुनः परिभाषित किया। यह देखा गया कि महिला संतों की भूमिका मुख्य रूप से मौखिक परंपरा और पवित्र कथाओं के माध्यम से ही संरक्षित की गई, जो कभी साहित्यिक या धार्मिक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर पाईं। फिर भी, उनका प्रभाव समाज पर बहुत गहरा था और वे धार्मिक और सामाजिक संरचनाओं में बदलाव

की दिशा में एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती रहीं। वर्तमान में भी, साध्वी महिलाएँ पारंपरिक सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए, अपने आध्यात्मिक अभ्यास और जीवन से समाज में बदलाव ला रही हैं। वे न केवल आध्यात्मिक नेतृत्व में भाग ले रही हैं, बल्कि महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। यद्यपि महिलाओं को अभी तक उच्चतम आध्यात्मिक पदों तक पहुंचने की अनुमति नहीं दी गई है, फिर भी वे समाज में बदलाव की दिशा में एक नई दिशा की ओर अग्रसर हो रही हैं।

अंततः, यह शोध पत्र यह दर्शाता है कि साध्वी महिलाएँ केवल धार्मिक रूप से ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभरी हैं। वे अपने तपस्वी जीवन, ज्ञान और नैतिक उपदेशों से समाज को दिशा देने का कार्य करती हैं। उनका योगदान भारतीय समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक सुधार के लिए अनमोल हैं। वे समाज में बदलाव की प्रेरणा देने वाली शक्तियाँ हैं, और उनके कार्यों ने भारतीय समाज को एक उच्च नैतिक और आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचाने में मदद की। उनकी पहचान, संघर्ष, और योगदान को सही तरीके से समझने और सराहने की आवश्यकता है, ताकि हम समाज में महिलाओं की भूमिका को बेहतर तरीके से पहचान सकें और उन्हें और अधिक सम्मानित स्थान प्रदान कर सकें।

References:

- Chaudhary, R. 2017. *The Role of Women in Indian Religious Societies*. Delhi: Indian Publishing House.
- Ghurye, G. S. (1953). *Indian Sadhus*. Popular Book Depot, Bombay.
- Kane, P. V. (1930). *History of Dharma Shastra* (Selected Volumes). Bhandarkar Oriental Research Institute.
- Oja, P. (2020). *The Bhakti Movement and its Social Implications*. Journal of Indian Philosophy and Religion, 12(2), 45-60.
- Patel, M. 2016. *Women in Indian Society: Role and Contribution in the Medieval Period*. Jaipur: Academic Press.
- Sharma, A. 2014. *Women and Religion in India: A Historical Perspective*. New Delhi: Sage Publications.
- Singh, K. 2014. *The Role of Women in Indian Society: A Social and Cultural Study*. Pune: Modern Press.
- Ramanujan, A.K. (1992). *The Collected Essays of A.K. Ramanujan*. Oxford University Press.
- Tripathi, B. D. (1978). *Sadhus of India: The Sociological View*. Popular Prakashan, Bombay.
- उपाध्याय, बलदेव (1979). *भारतीय दर्शन*. चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी।
- कविराज, म. म. प. गोपीनाथ. *पूजा तत्त्व*. ओंकारनाथ भट्ट, 52/46, लक्ष्मीकुण्ड, वाराणसी।

Nav Jyoti, Vol. 12, No. 24, Jan-June 2024 **ISSN : 2249-7331**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor *6.0* (IIFS)

डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से आत्मनिर्भर गाँवों की ओर

श्याम बहादुर
शोध छात्र
डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या
ईमेल –shyampgdm@gmail.com
Mobile No–9621323111

सारांश
सारांशः 'ग्रामीण ई–कॉमर्स' की अवधारणा मुख्यधारा के ई–कॉमर्स से भिन्न है क्योंकि यह ग्रामीण उत्पादों को इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म प्रदान करती है और ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी बाजारों से जोड़ने का कार्य करती है। इसका उद्देश्य आय में वृद्धि और ग्रामीण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को सशक्त करना है। भारत सरकार की 'मेक इन इंडिया', 'डिजिटल इंडिया' और 'स्किल इंडिया' जैसी पहलें इस दिशा में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

मुख्य शब्द प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता , इंटरनेट , डिजिटल कौशल, तकनीकी, ई–गवर्नेंस , आईसीटी, आत्मनिर्भर, स्मार्ट विलेज

भूमिका

भारत की दो–तिहाई जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और उन्हें जीवन की गुणवत्ता से जुड़ी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'स्मार्ट विलेज' अवधारणा डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से ग्रामीण विकास सुनिश्चित करने का एक प्रभावी माध्यम बन रही है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, 2050 तक 9 अरब जनसंख्या का भरण–पोषण एक बड़ी चुनौती है। ऐसे में डिजिटलीकरण कृषि संसाधन दक्षता सुधारने और सेवाओं को समृद्ध करने का समाधान प्रस्तुत करता है। यह सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप गरीबी, खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों का समाधान करता है। औद्योगिक क्रांति 4.0 और कृषि 4.0 डिजिटल, स्वचालित एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर आधारित हैं। ये परिवर्तन कृषि उत्पादन, पशुपालन, कटाई, कीट नियंत्रण आदि में सहायता करते हैं। स्मार्ट गाँवों में ई–स्वास्थ्य, ई–शिक्षा, ई–गवर्नेंस, इंटरनेट, सीसीटीवी निगरानी, उच्च तकनीक सेवाएं और बुनियादी ढांचा उपलब्ध होता है। इससे ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार और उद्यमिता को बढ़ावा मिलता है। बुनियादी ढाँचा, आईसीटी शिक्षा, डिजिटल रणनीति, कनेक्टिविटी, सामर्थ्य, डिजिटल संस्कृति, कौशल विकास आदि आवश्यक हैं। डिजिटल परिवर्तन से रोजगार की प्रकृति और श्रम मांग में परिवर्तन संभव है।

औद्योगिक क्रांतियां और कृषि क्रांतियां

डिजिटल प्रौद्योगिकियों के समावेशन से उत्पन्न औद्योगिक क्रांति 4.0, ऐतिहासिक संस्थाओं की तुलना में कहीं अधिक परिवर्तनकारी क्षमता रखती है। जैसे बिजली और स्वचालन ने पूर्व में क्रांति लाई थी, वैसे ही यह डिजिटल युग भी परिवर्तन का वादा करता है। परंतु इसके मार्ग में अनेक चुनौतियाँ हैं –विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ सीमित पहुँच, अपर्याप्त डिजिटल कौशल और सामर्थ्य की कमी के कारण शहरी–ग्रामीण डिजिटल विभाजन और अधिक गहरा हो गया है। **लिउटास और अन्य (2021)** ने डिजिटलीकरण के महत्वपूर्ण सामाजिक प्रभाव पर बल देते हुए डिजिटल कृषि के विकास में विज्ञान–आधारित दृष्टिकोण की आवश्यकता बताई है। इसी क्रम में, कृषि क्षेत्र में भी एक नई क्रांति उभर

रही है जिसे 'कृषि 4.0' कहा जाता है। यह परिवर्तनकारी अवधारणा डिजिटलीकरण, स्वचालन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एकीकृत करते हुए फसल और पशुधन उत्पादन, निराई, कीट नियंत्रण और कटाई जैसी अनेक कृषि एवं पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान प्रस्तुत करती है। कृषि में तकनीकी विकास की यात्रा को 'कृषि 1.0' से 'कृषि 4.0' तक एक टाइमलाइन के रूप में देखा जा सकता है, जो दर्शाता है कि किस प्रकार ये महत्वपूर्ण परिवर्तन कृषि परिदृश्य को नया आकार दे रहे हैं। डिजिटल रूप से आत्मनिर्भर गाँव वह है जहाँ महत्वपूर्ण ग्रामीण सेवाएँ डिजिटल स्वरूप में सुलभ होती हैं। यह अवधारणा उच्च तकनीकी सुविधाओं के साथ–साथ आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भी एकीकृत करती है, जैसे — इंटरनेट एक्सेस, ई–सामग्री, शैक्षिक ऐप्स, स्मार्ट क्लासरूम और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, जो उन्नत शिक्षण के अवसर प्रदान करती हैं। साथ ही, ई–हेल्थ सेवाओं के अंतर्गत विशेषज्ञ डॉक्टरों से ऑनलाइन परामर्श की सुविधा उपलब्ध होती है। ई–गवर्नेंस के माध्यम से सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएँ और सामाजिक कल्याण योजनाएँ भी सुलभ होती हैं। गाँवों को बुद्धिमत्तापूर्ण ICT (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी) अवसंरचना और पर्यावरण–अनुकूल सुविधाओं से सुसज्जित किया जाता है, जिनमें हर मौसम में उपयोगी सड़कें, सुगम परिवहन, स्वास्थ्य केंद्र, सुव्यवस्थित विद्यालय, उन्नत आंगनबाड़ी केंद्र, बैंक, और जल आपूर्ति जैसी मजबूत आधारभूत सुविधाएँ शामिल हैं। सीसीटीवी कैमरों द्वारा निगरानी से गाँवों की सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है। स्मार्ट सेवाओं और बुनियादी ढाँचे का समावेशन न केवल जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाता है, बल्कि इससे नए आर्थिक अवसरों का भी सृजन होता है। यह उद्यमिता को बढ़ावा देता है और तकनीकी रूप से सशक्त गाँवों को नवाचार और विकास के केंद्रों में परिवर्तित करता है। इस दिशा में, डिजिटल हब एक प्रभावी रणनीति के रूप में कार्य करते हैं, जिन्हें नीति–निर्माता ग्रामीण समुदायों और व्यवसायों के बीच डिजिटल क्रियाकलापों को बढ़ावा देने के लिए लागू कर सकते हैं। डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ कृषि में क्रांति ला रही हैं, जिससे छोटे किसान भी तकनीक–संचालित कृषि–खाद्य प्रणाली को अपनाने लगे हैं। यह डिजिटलीकरण कृषि–खाद्य शृंखला के हर चरण को बदल रहा है, जहाँ व्यक्तिगत, बुद्धिमत्तापूर्ण एवं वास्तविक समय आधारित समाधान संसाधनों के प्रबंधन को अधिक कुशल बनाते हैं। डेटा–संचालित और हाइपर–कनेक्टेड मूल्य शृंखलाएँ, फसलों, खेतों और पशुओं के सटीक प्रबंधन को संभव बनाती हैं। डिजिटल कृषि, उच्च उत्पादकता, जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलनशीलता और पूर्वानुमान क्षमताओं को सुनिश्चित करती है, जो भविष्य के लिए खाद्य सुरक्षा, लाभप्रदता और स्थिरता की संभावनाओं को सशक्त करती हैं।

शोध समस्या (Research Problem):

हालांकि भारत सरकार द्वारा 'डिजिटल इंडिया', 'ई–कृषि', 'डिजिटल साक्षरता मिशन' जैसी कई पहलें शुरू की गई हैं, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल प्रौद्योगिकी का समुचित लाभ नहीं पहुँच पा रहा है। सीमित डिजिटल अवसंरचना, डिजिटल साक्षरता की कमी, भाषा संबंधी बाधाएँ, ई–कॉमर्स, ई–स्वास्थ्य और ई–शिक्षा सेवाओं की न्यून पहुँच जैसे कई कारण गाँवों को आत्मनिर्भर बनने से रोकते हैं।

''वर्तमान डिजिटल प्रौद्योगिकियों का उपयोग ग्रामीण भारत में आत्मनिर्भरता को बढ़ाने के लिए किस सीमा तक प्रभावी है, और इसके विस्तार में निम्न सामाजिक, तकनीकी एवं नीतिगत चुनौतियाँ सामने आती हैं''–

1. डिजिटल तकनीकों का ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित प्रसार और उपयोग।
2. आवश्यक डिजिटल अवसंरचना की अनुपलब्धता और निवेश की कमी।
3. डिजिटल साक्षरता की कमी और स्थानीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री का अभाव।
4. कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, और बाजार से जुड़ी सेवाओं में तकनीकी पहुँच की बाधाएँ।

5. नीति और क्रियान्वयन स्तर पर असंगतियाँ।
6. डिजिटल तकनीकों का ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित प्रसार और उपयोग।
7. आवश्यक डिजिटल अवसंरचना की अनुपलब्धता और निवेश की कमी।
8. डिजिटल साक्षरता की कमी और स्थानीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री का अभाव।
9. कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, और बाजार से जुड़ी सेवाओं में तकनीकी पहुँच की बाधाएँ।
10.नीति और क्रियान्वयन स्तर पर असंगतियाँ।

डिजिटल परिवर्तन के लिए आवश्यक शर्तें

कृषि क्षेत्र का डिजिटल परिवर्तन विभिन्न सामाजिक, तकनीकी और नीतिगत संदर्भों में कुछ विशेष स्थितियों पर निर्भर करता है। इन शर्तों को तीन प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता हैः

(क) मूलभूत आवश्यकताएँ डिजिटल रणनीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए कुछ बुनियादी शर्तों की पूर्ति आवश्यक है, जैसेः डिजिटल अवसंरचना की उपलब्धता कनेक्टिविटी – जिसमें मोबाइल सब्सक्रिप्शन, नेटवर्क कवरेज और इंटरनेट एक्सेस शामिल हैं डिजिटल सेवाओं की सामर्थ्य (Affordability) आईसीटी शिक्षा एवं प्रशिक्षण सहायक नीतियाँ – विशेष रूप से ई–गवर्नेंस से जुड़ी सरकारी पहलकदमियाँ

(ख) सुगमता प्रदान करने वाली स्थितियाँ डिजिटल रूपांतरण को गति देने के लिए कुछ सक्षमकारी स्थितियाँ भी आवश्यक होती हैं, जैसेः इंटरनेट, मोबाइल फोन और सोशल मीडिया का व्यापक उपयोग डिजिटल कौशल का विकास कृषि उद्यमिता और नवाचार को बढ़ावा देने वाली संस्कृति – जिसमें प्रतिभा विकास, हैकथॉन, इनक्यूबेटर और एक्सेलेरेटर कार्यक्रम शामिल हैं

(ग) श्रम बाजार की बदलती माँगें कृषि क्षेत्र में डिजिटलीकरण कार्य की पारंपरिक प्रकृति को बदल देगा। इससेः श्रम की आवश्यकताओं में बदलाव आएगा,नई प्रकार की कुशलताओं (skill) की माँग उत्पन्न होगी, काम की गतिशीलता (work dynamics) को नया आकार मिलेगा, डिजिटल सशक्तिकरण के लिए सरकारी पहल भारत सरकार द्वारा डिजिटल सशक्तिकरण हेतु अनेक योजनाएँ शुरू की गई हैं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए। 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम (2015): यह पहल देश के कोने–कोने तक हाई–स्पीड इंटरनेट के माध्यम से सरकारी सेवाओं को पहुँचाने का प्रयास कर रही है। भारत नेट प्रोजेक्टः यह योजना सभी ग्राम पंचायतों को 100 एमबीपीएस कनेक्टिविटी से जोड़ने का लक्ष्य रखती है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में ई–बैंकिंग, ई–गवर्नेंस, ई–शिक्षा और इंटरनेट सेवाओं को बढ़ावा मिल रहा है। प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY): इस योजना ने देश के डिजिटल समावेशन को सशक्त किया है। रुपे डेबिट कार्ड के माध्यम से ऑनलाइन लेन–देन को सरल बनाकर यह योजना ग्रामीण भारत में वित्तीय सशक्तिकरण और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देती है।

अन्य शर्तें

(क) सभी के लिए एआईः कृषि डिजिटलीकरण के लिए नीति आयोग की पहल

भारत के कृषि क्षेत्र में डिजिटल परिवर्तन हेतु बहुआयामी तकनीकी समावेशन और सहयोग की आवश्यकता है। केवल निजी क्षेत्र पर निर्भर रहना लागत प्रभावी या कुशल नहीं हो सकता। अतः इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप अत्यंत आवश्यक है। नीति आयोग ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के

कार्यान्वयन के लिए पाँच प्रमुख क्षेत्रों को लक्षित किया हैः स्वास्थ्य सेवाः गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल की पहुँच और वहनीयता में वृद्धि,कृषिः किसानों की आय और उत्पादकता में वृद्धि, साथ ही कृषि अपव्यय में कमी,शिक्षाः शिक्षा की पहुँच और गुणवत्ता में सुधार, स्मार्ट शहर और बुनियादी ढाँचाः शहरी आबादी के लिए दक्षता और कनेक्टिविटी में वृद्धि, स्मार्ट गतिशीलता और परिवहनः स्मार्ट, सुरक्षित और कुशल यातायात समाधान

(ख) आत्मनिर्भर भारत : एमएसएमई को सशक्त बनाने की पहल

एसआरआई निधि (Self & Reliant India Fund) आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) को सशक्त बनाने की एक प्रमुख पहल है। यह निधि व्यवहार्य MSMEs को आवश्यक विकास पूंजी प्रदान करने के लिए निजी क्षेत्र की क्षमताओं का लाभ उठाती है। इस निधि में मदर फंड–डॉटर फंड संरचना अपनाई गई है, जिससे डैडम्े को निरंतर विकास पूंजी प्राप्त हो सके। यह सहायता विभिन्न वित्तीय साधनों कृ जैसे इक्विटी, अर्ध–इक्विटी और इक्विटी जैसी संरचनाओं के माध्यम से दी जाती है, जिससे भारत के लघु एवं मध्यम उद्यमों में वित्तीय लचीलापन और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन मिलता है।

(ग) डिजिटल सशक्तीकरण में फिनटेक कंपनियों की भूमिका

फिनटेक कंपनियाँ ग्रामीण भारत में डिजिटल पहुँच को बढ़ाने में तेजी से उभरती हुई प्रमुख शक्तियाँ बन गई हैं। सरकार के साथ मिलकर ये कंपनियाँ भारत को नकद–आधारित अर्थव्यवस्था से डिजिटल सशक्त राष्ट्र की ओर ले गई हैं, जहाँ डिजिटल भुगतान प्रणाली व्यापक रूप से अपनाई जा रही है। फिनटेक कंपनियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना स्थापित करने हेतु कर्मठ प्रयास कर रही हैं। वे दूरदराज के गाँवों मेंः कियोस्क, पीओएस डिवाइसेस और मोबाइल वैन की सहायता से बिल भुगतान (मोबाइल, बिजली, डीटीएच, पानी) की सुविधा प्रदान कर रही हैं UPI, नेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, डेबिट/क्रेडिट कार्ड, और कैश जैसे भुगतान विकल्प उपलब्ध करा रही हैं, जो सुरक्षित ब्लॉकचेन आधारित गेटवे के माध्यम से संचालित होते हैं साथ ही, वे जरूरत–आधारित वित्तीय उत्पाद, वित्तीय साक्षरता, और सामाजिक एवं भौतिक अवसंरचना में निवेश पर भी ध्यान केंद्रित कर रही हैं। नाबार्ड सहित सरकारी निकाय, लघु और दीर्घकालिक ऋण तथा प्रत्यक्ष वित्त के माध्यम से ग्रामीण वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दे रहे हैं। सरकार यह भी सुनिश्चित कर रही है कि जोखिम प्रबंधन, ऑडिट, और एजेंट कदाचार की रोकथाम की मजबूत व्यवस्था हो, जिससे डिजिटल वित्तीय सेवाओं का प्रभावी कार्यान्वयन हो सके।

(घ) आत्मनिर्भर स्मार्ट ग्राम अर्थव्यवस्था हेतु स्मार्ट उद्यमिता

प्राकृतिक संसाधनों और कुशल कार्यबल से संपन्न ग्रामीण क्षेत्रों में अपार उद्यमशीलता क्षमता मौजूद है। यदि इस क्षमता का प्रभावी दोहन किया जाए, तो यह ग्रामीण आर्थिक विकास को गति प्रदान कर सकता है, शहरी–ग्रामीण आय के अंतर को कम कर सकता है, और रोजगार के नए अवसर उत्पन्न कर सकता है। सरकार ने इस दिशा में कई योजनाएँ शुरू की हैं। इन्हीं प्रयासों के अंतर्गत एक शोध दल द्वारा ''आंत्रप्रेन्योरियल प्रक्रिया फ्रेमवर्क'' विकसित किया गया है, जो NIFTEM ग्राम कार्यक्रम से प्रेरित एक नवाचार प्रक्रिया है। यह ढाँचा उन संभावित उद्यमियों की पहचान की प्रक्रिया प्रस्तुत करता है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन ला सकते हैं। इसमें परस्पर जुड़ी हुई गतिविधियाँ शामिल हैं, जो एक स्पष्ट, चरणबद्ध मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। इस प्रक्रिया के अनुसारः भागीदारी दर प्रत्येक चरण के साथ घटती जाती है अंततः लगभग 5–8ः प्रतिभागी ऐसे होते हैं जो सभी चरणों को सफलतापूर्वक पूर्ण कर, अपने उद्यम को प्रारंभ करने के लिए तैयार हो जाते हैं

युवा कृषि उद्यमियों की भूमिका कृषि डिजिटलीकरण को बढ़ावा देने में युवा कृषि उद्यमी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पीढ़ीगत अंतर्दृष्टि और तकनीकी समझ से प्रेरित होकर, वे ऐसे केंद्रित स्टार्टअप विकसित करते हैं जो कृषक समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित करते हैं और अक्सर ये प्रयास उनकी अपनी ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ाव पर आधारित होते हैं। इन युवा नवप्रवर्तकों की सफलता के लिए आवश्यक है कि उन्हें स्प्रिंट कार्यक्रमों (त्वरित नवाचार प्रशिक्षण) और वित्तीय सहायता का समर्थन प्राप्त हो, जिससेः निवेशकों का ध्यान आकर्षित किया जा सके स्टार्टअप और निवेशकों के बीच सहयोग की संस्कृति विकसित हो कृषि आधारित नवाचारों को बाजार में प्रभावी रूप से स्थापित किया जा सके डिजिटल कृषि उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिए कंपनियों को एक ऐसे डिजिटल रूप से सक्षम कार्यबल का निर्माण करना होगा जो तकनीक–प्रेरित समाधानों को प्रभावशाली रूप से लागू कर सके। इसके लिए आवश्यक है कि कंपनियाँः डिजिटल कौशल से युक्त योग्य व्यक्तियों की पहचान करें उन्हें आकर्षित करें और संरक्षित रखें, मौजूदा कार्यबल की प्रतिभा को पोषित करें वर्तमान भूमिकाओं में डिजिटल दक्षता बढ़ाने में सतत निवेश करें इस प्रकार, युवा कृषि उद्यमी न केवल कृषि क्षेत्र में नवाचार ला रहे हैं, बल्कि वे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल बदलाव के वाहक भी बनते जा रहे हैं।

ग्रामीण उत्पादों के लिए ई–कॉमर्स 'ग्रामीण ई–कॉमर्स' की अवधारणा मुख्यधारा के ई–कॉमर्स से भिन्न है, क्योंकि इसका उद्देश्य विशेष रूप से ग्रामीण उत्पादों को डिजिटल माध्यम से बाजार उपलब्ध कराना है। यह मॉडल ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी बाजारों से जोड़ने और ग्रामीण आय के स्तर को बढ़ाने की दिशा में एक सशक्त माध्यम के रूप में उभर रहा है भारत सरकार की प्रमुख पहलें - जैसे 'मेक इन इंडिया', 'डिजिटल इंडिया' और 'स्किल इंडिया' कृ सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) के विकास को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें ई–कॉमर्स क्षेत्र में प्रवेश के लिए सक्षम बनाने की दिशा में काम कर रही हैं। जिस प्रकार यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) ने खुदरा भुगतान प्रणाली में क्रांति लाई, उसी प्रकार ओपन नेटवर्क फॉर डिजिटल कॉमर्स (ONDC) की पहल भी ई–कॉमर्स पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्परिभाषित करने के लिए तैयार है। यह पहलः प्रवेश बाधाओं को कम करती है नवाचार के नए अवसर उत्पन्न करती है एक ऐसी तकनीकी अवसंरचना का निर्माण करती है जहाँ भारत का प्रत्येक नागरिक, स्थान की परवाह किए बिना, डिजिटल उद्यमिता में भागीदारी कर सकता है आईटीसी लिमिटेड की ई–चौपाल पहल एक उल्लेखनीय उदाहरण है, जिसने ग्रामीण किसानों कोः खेती के आधुनिक तौर–तरीकों मौसम की जानकारी फसल की कीमतों और खरीददार चुनने की स्वतंत्रता जैसी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान कर बिचौलियों पर निर्भरता कम की है और ग्रामीण खरीद दक्षता को बेहतर बनाया है।

सामने आने वाले मुद्दे और चुनौतियाँः

- **भुगतान से जुड़ी समस्याएँः** ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय प्रणालियों पर विश्वास की कमी के साथ–साथ ऑनलाइन भुगतान समाधान और बैंकिंग सेवाओं की सीमित पहुंच एक बड़ी चुनौती है।
- **डिजिटल अवसंरचना की कमीः** फाइबर ऑप्टिक लाइनें, सेल टॉवर, इंटरनेट राउटर और वायरलेस स्पेक्ट्रम जैसे डिजिटल प्लेटफार्मों से जुड़ाव की कमी और इंटरनेट की ऊँची लागत ग्रामीण आबादी के डिजिटल समावेशन में बाधा उत्पन्न करती है।
- **लॉजिस्टिक्स संबंधी बाधाएँः** ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल डाक सेवाएँ, सीमित लॉजिस्टिक्स प्रदाता, उच्च लागत, खराब सड़क बुनियादी ढाँचा और अपर्याप्त लॉजिस्टिक्स समाधान आम समस्याएँ हैं।

- **ई–कॉमर्स के प्रति जागरूकता की कमी:** ग्रामीण उपभोक्ताओं, किसानों और उद्यमियों में ई–कॉमर्स की जानकारी का अभाव है, जिससे मोबाइल फोन के प्रयोग, मोबाइल बैंकिंग और ई–कॉमर्स प्लेटफार्मों पर प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
- **व्यावसायिक क्षमताओं की कमी:** ग्रामीण उत्पादकों को व्यवसाय योजनाएँ तैयार करने, उत्पादों की ब्रांडिंग, पैकेजिंग, विपणन और नई उत्पाद तकनीकों के ज्ञान तथा उनके उपयोग में कठिनाई होती है।
- **उत्पाद की गुणवत्ता संबंधी समस्याएँ:** ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादों की पैकेजिंग और गुणवत्ता अक्सर आयातित अथवा शहरी उत्पादों की तुलना में कमजोर होती है, जिससे प्रतिस्पर्धा में पिछड़ने की आशंका रहती है।
- **भाषा संबंधी बाधाएँ:** अधिकांश ई–कॉमर्स वेबसाइटें अंग्रेजी में उपलब्ध होती हैं, जिससे गैर–अंग्रेजी भाषी ग्रामीण उपभोक्ताओं को उपयोग में कठिनाई होती है।
- **मुद्रा संबंधी चुनौतियाँ:** भारत में संचालित ई–कॉमर्स व्यवसायों के लिए अंतरराष्ट्रीय मुद्राओं का प्रबंधन एक जटिल और तकनीकी चुनौती हो सकता है।

प्रभाव

(क) मोबाइल ऐप्स : केन्या में एम–फार्म जैसे मोबाइल ऐप्स ने किसानों को वास्तविक समय की कीमत की जानकारी, सूचित निर्णय लेने और फसल पैटर्न में बदलाव करने में सक्षम बनाया है। एफएओ का ईएमए–आई ऐप प्रारंभिक पशुधन रोग रिपोर्टिंग मेंसहयोग करता है जिससे कई अफ्रीकी देशों में खाद्य सुरक्षा बढ़ी है।

(ख) एग्रोबॉट्स और एआई स्टार्टअप नवाचार (एगटेक): ये रोबोट जल प्रबंधन और सिंचाई अनुकूलन जैसे कार्यों में सहायता करके खेती में क्रांति ला रहे हैं। डिनो एग्रोबोट जैसे एग्रोबोट मिट्टी के स्वास्थ्य को संरक्षित करने, कीटनाशकों के बारे में चिंताओं को दूर करने और श्रम की कमी को कम करने में योगदान देते हैं।

- **भारतीय स्टार्टअप** (एगटेक) कृषि में बदलाव के लिए डिजिटल नवाचारों का उपयोग कर रहे हैं। इंटेलो लैब्स जैसे स्टार्टअप फसल की निगरानी के लिए चित्र पहचान का उपयोग करते हैं जबकि एबोनो फसल की पैदावार को स्थिर करने के लिए कृषि डाटा विज्ञान और एआई का उपयोग करता है। ट्रिथी रोबोटिक्स जैसी कंपनियों के ड्रोन वास्तविक समय में फसल की निगरानी प्रदान करते हैं जिससे प्रिसिजन खेती में वृद्धि होती है। सैटश्योर खेत के चित्रों का आकलन करने और भविष्य की उपज मूल्य की भविष्यवाणी करने के लिए मशीन लर्निंग का उपयोग करता है।
- **एआई**–संचालित समाधान, जैसे सुअर फार्मों के लिए अलीबाबा का स्मार्ट ब्रेन चेहरे और आवाज की पहचान को नियोजित करता है, श्रम लागत को कम करता है और दक्षता में सुधार करता है। एआई के उपयोग से, सुअर फार्मों से सुअर पालकों की श्रम लागत 30% से 50% तक कम हो जाएगी और फीड की आवश्यकता कम होगी।

(ग) प्रिसिजन कृषि में इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) : IoT–आधारित प्रिसिजन कृषि में मार्गदर्शन प्रणाली, वेरिएबल रेट टेक्नोलॉजीज (VRT), और ड्रोन शामिल हैं। ये प्रौद्योगिकियां रोपण, उर्वरक और सिंचाई पर सटीक डेटा प्रदान करके संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करती हैं, लागत कम करती हैं और उत्पादकता बढ़ाती हैं।

(घ) ब्लॉकचेन प्रौद्योगिकी : ईआरपी सॉफ्टवेयर, जिसे माइक्रॉप द्वारा उदाहरण देकर समझाया गया है, प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करता है, खेतों को पर्यावरणीय चुनौतियों के अनुकूल बनाने, दक्षता बढ़ाने और डाटा–संचालित निर्णय लेने की सुविधा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, ब्लॉकचेन खाद्य ट्रैसेबिलिटी सुनिश्चित करता है, पारदर्शिता बढ़ाता है और उपभोक्ता विश्वास को मजबूत करता है। वॉलमार्ट द्वारा ब्लॉकचेन को अपनाना उसके गुणवत्ता के मुद्दों का पता लगाने, त्वरित प्रतिक्रिया सक्षम करने और उपभोक्ताओं की सुरक्षा करने की इसकी क्षमता का उदाहरण है।

शोध सुझाव (Research Suggestions):

1.डिजिटल अवसंरचना का सुदृढ़ीकरणः ग्रामीण क्षेत्रों में फाइबर ऑप्टिक नेटवर्क, मोबाइल टावर, हाई–स्पीड इंटरनेट और सोलर–आधारित डिजिटल कियोस्क जैसी आधारभूत सुविधाओं का विस्तार किया जाए।

2. स्थानीय भाषा में डिजिटल सामग्रीः डिजिटल प्लेटफॉर्म और एप्लिकेशन को क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाए ताकि तकनीक का लाभ अधिक लोगों तक पहुँचे।

3. डिजिटल साक्षरता अभियानः ग्राम पंचायत स्तर पर नियमित डिजिटल साक्षरता प्रशिक्षण, विशेष रूप से महिलाओं, किसानों और युवाओं के लिए चलाया जाए ताकि वे ई–गवर्नेंस, ई–कॉमर्स, मोबाइल बैंकिंग आदि का प्रभावी उपयोग कर सकें।

4. ई–कृषि और ई–स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तारः कृषि सलाह, मौसम पूर्वानुमान, बीज खाद की जानकारी, और ऑनलाइन स्वास्थ्य परामर्श सेवाओं को मोबाइल ऐप्स के माध्यम से किसानों व ग्रामीण जनता तक पहुँचाया जाए।

5. ग्रामीण ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म का विकासः ग्रामीण उत्पादों के विपणन हेतु विशेष ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म विकसित किए जाएँ जो स्थानीय शिल्प, जैविक उत्पाद और लघु उद्योगों को राष्ट्रीय बाजार से जोड़ सकें।

6. पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप (PPP) को प्रोत्साहनः डिजिटल सेवाओं के प्रसार के लिए निजी कंपनियों, स्टार्टअप्स और गैर–सरकारी संगठनों की भागीदारी को बढ़ावा दिया जाए।

7.सुरक्षा और डेटा संरक्षणः ग्रामीण डिजिटल उपयोगकर्ताओं के डेटा की गोपनीयता और साइबर सुरक्षा के लिए जागरूकता के साथ–साथ नीति–स्तरीय संरक्षण उपाय किए जाएँ।

8.स्मार्ट विलेज मॉडल का क्रियान्वयनः 'स्मार्ट सिटी' की तर्ज पर 'स्मार्ट विलेज' की अवधारणा को लागू करते हुए प्रत्येक गाँव को डिजिटल, सामाजिक और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाए।

9. डिजिटल समाधान आधारित नीति निर्माणः नीति निर्धारण में डेटा आधारित निर्णय लिए जाएँ और ग्रामीण क्षेत्रों की डिजिटल आवश्यकताओं के अनुसार योजनाओं को डिजाइन किया जाए।

10.निरंतर मूल्यांकन और निगरानी प्रणालीः सरकारी योजनाओं और डिजिटल पहलों के प्रभाव का मूल्यांकन करने हेतु ग्राम स्तरीय निगरानी समितियाँ बनाई जाएँ जो पारदर्शिता और प्रभावशीलता सुनिश्चित करें।

शोध निष्कर्ष (Conclusion):

वर्तमान समय में डिजिटल प्रौद्योगिकी ग्रामीण भारत के विकास और आत्मनिर्भरता की दिशा में एक शक्तिशाली साधन बनकर उभरी है। यह न केवल सूचना, सेवाओं और संसाधनों तक पहुँच को सरल बनाती है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, व्यापार और शासन में पारदर्शिता व दक्षता भी लाती है। शोध से यह स्पष्ट हुआ कि जहाँ एक ओर डिजिटल तकनीक के प्रयोग से ग्रामीण जीवन में सकारात्मक परिवर्तन आ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर इसके प्रभावी क्रियान्वयन में कई गंभीर चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं-जैसे डिजिटल अवसंरचना की कमी, सीमित डिजिटल साक्षरता, भाषा अवरोध, ई–सेवाओं की न्यून पहुँच और नीति–कार्यान्वयन में खामियाँ। इस शोध में यह भी देखा गया कि यदि सरकार, निजी क्षेत्र और समुदाय मिलकर काम करें, तो डिजिटल साधनों के माध्यम से गाँवों को आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक रूप से सशक्त किया जा सकता है। डिजिटल तकनीक ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर खोल सकती है, किसानों को बाजार से जोड़ सकती है, और ग्राम पंचायतों को पारदर्शी एवं उत्तरदायी बना सकती है।इसलिए, डिजिटल प्रौद्योगिकी न केवल सुविधा का साधन है, बल्कि ग्रामीण भारत के लिए आत्मनिर्भरता की कुंजी भी है बशर्ते इसकी पहुँच, उपयोग और जागरूकता को समुचित रणनीतियों के साथ ग्रामीण समाज तक पहुँचाया जाए।

सन्दर्भ (References):

- भारत सरकार, इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY).
- डिजिटल इंडिया कार्यक्रमः एक समावेशी डिजिटल समाज की ओर, 2022
- https://www-digitalindia-gov-in
- https://www . niti . gov . in
- नीति आयोग (NITI Aayog).
- सतत विकास लक्ष्य और ग्रामीण भारत में डिजिटल परिवर्तन, नीति आयोग रिपोर्ट, 2021।
- https://www-niti-gov-in
- FAO (Food and Agriculture Organization).
- Digital technologies in agriculture and rural areas – Briefing paper] 2020-
- https://www-fao-org
- World Bank- e &Transform Africa: The Transformational Use of ICTs in Africa, 2012
- https://documents-worldbank-org
- Kenya*s M &Farm Case Study
- Empowering farmers through mobile technology, 2018-
- https://www-gsma -com/mobilefordevelopment
- Indian Journal of Rural Development
- Volume 40] Issue 2] 2021: Role of ICT in Empowering Rural Communities in India
- UNESCO- Leveraging ICT for Sustainable Rural Development, 2019-
- https://unesdoc-unesco-org
- https://www-niti-gov-in

- Ministry of Rural Development] Government of India- E & Governance and Digital Initiatives in Rural Development, वार्षिक रिपोर्ट 2023–24।
- https://rural-nic-in
- कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास को समर्पित मासिक पत्रिका, नई दिल्ली, विभिन्न अंक.
- भारत सरकार, डिजिटल इंडिया मिशन – https://www-digitalindia-gov-in/
- कृषि व किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार – https://agricoop-gov-in/
- NITI Aayog- (2020)- Strategy for New India @75- Government of India-Meera, S- N-, Jhamtani] A-, & Rao, D- U- M- (2004)- Information and Communication Technology in Agricultural Development: A Comparative Analysis of Three Projects from India- Agricultural Research and EÛ tension Network Paper No- 135-
- भारत सरकार, ई–पशुहाट पोर्टल – https://epashuhaat-gov-in/
- भारतीय मौसम विज्ञान विभाग – https://mausam-imd-gov-in/
- Prasad, R-, & Gill] M- S- (2018)- Digital Technologies for Agricultural and Rural Transformation in India- Indian Journal of Agricultural Sciences, 88(5), 645–653-
- कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) पोर्टल – https://kvk-icar-gov-in/
- National Informatics Centre (NIC)- mKisan Portal – https://mkisan-gov-in/
- Singh, S-, & Kumar, R- (2021)- Role of ICT in Empowering Rural India: A Case Study of e–Krishi and mKisan- International Journal of Rural Development and Management Studies, Vol- 15] Issue 1-